ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

प्रसिद्ध गजलकार 'प्रो. वशिष्ठ अनूप' पर केन्द्रित विशेषांक

वर्ष : 09	अंक : 38	अक्टूबर-दिसम्बर, 2024
Year - 09	Volume - 38	October-December, 2024

प्रधान-संपादक

डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ० सुधीर कुमार तिवारी

सम्मान और पुरस्कार

विद्याश्री न्यास, वाराणसी द्वारा 'आचार्य विद्यानिवास मिश्र लोक कवि सम्मान-2019'

'पं. लक्ष्मीकांत झा' की स्मृति में 'मैथिल समाज उत्तर प्रदेश' द्वारा 'हिन्दी रत्न सम्मान-2023'

संगम सृजन सम्मान-2014

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

प्रसिद्ध गजलकार 'प्रो. वशिष्ठ अनूप' पर केन्द्रित विशेषांक

वर्ष - 09	अंक - 38	अक्टूबर-दिसम्बर, 2024
Year - 09	**Volume - 38**	**October-December, 2024**

प्रधान-संपादक

डॉ. सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ. योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ. सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**

संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–

सृजनश्री न्यास,

आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर, उ0प्र0–212635

ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन, आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	500	1800	16,000
संस्थागत	600	2000	18,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- ❖ **प्रो. गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा (महाराष्ट्र)।
- ❖ **प्रो. कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- ❖ **प्रो. माधवेन्द्र पाण्डेय,** पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय।
- ❖ **प्रो. अरविंद कुमार झा,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- ❖ **प्रो. सच्चिदानंद मिश्र,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- ❖ **प्रो. दयाशंकर त्रिपाठी,** बी–17, नीलकंठ बंग्लोज, वल्लभ विद्यानगर, आनंद।
- ❖ **प्रो. एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- ❖ **प्रो. सुमन जैन,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।
- ❖ **प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल,** इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
- ❖ **प्रो. अनूप शुक्ल,** रामजानकीपुरम्, सिविल लाइन, फतेहपुर।
- ❖ **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- ❖ **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- ➢ **डॉ. उदयन मिश्र,** लाल बहाकुर शास्त्री पी. जी. कॉलेज, पं. दीनदयाल उपाध्याय नगर, चंदौली (उ. प्र.)।
- ➢ **डॉ. बलराम शुक्ल,** दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- ➢ **डॉ. ऋषभ कुमार मिश्र**, डॉ. बी. आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- ➢ **डॉ. योगेश कुमार करसनभाई चाडसणिया,** उच्च शिक्षा विभाग, गुजरात सरकार।
- ➢ **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** चंद्रधारी मिथिला कॉलेज, दरभंगा (बिहार)।
- ➢ **डॉ. हरीश पाण्डेय,** महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदू विश्वविद्यालय, वर्धा–महाराष्ट्र।
- ➢ **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनात्तूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- ➢ **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, वाराणसी।
- ➢ **डॉ. आनंद कुमार,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर, (उ. प्र.)।
- ➢ **श्रीमती आकांक्षा अग्निहोत्री,** सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, आनंद–गुजरात।
- ➢ **डॉ. वर्षा तिवारी,** पं. शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय, शहडोल–(म. प्र.)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जवाबदेही नहीं होगी। किसी भी प्रकार के विवाद–संवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में ही होगा।

संपादकीय

'आलोचक दृष्टि' शोध पत्रिका अपने उद्देश्यों के प्रति आज भी उतनी ही सजग है, जितनी वह अपने पहले अंक के दौरान थी। अपनी इसी सजगता के साथ, वह वैचारिक यात्रा के पड़ाव–दर–पड़ाव पार करते हुए आगे बढ़ने के लिए नित्य प्रति प्रतिबद्ध है। इसी प्रतिबद्धता के आधार पर, जनवरी 2017 में 'डॉ. नगेंद्र पर केंद्रित विशेषांक' और 2019 में 'भारत और भारतीयता' तथा 'भारतीय चिंतन के विविध आयाम' पर केंद्रित विशेषांकों का संपादन किया जा चुका है। इसी क्रम में, यह अंक 'प्रो. वशिष्ठ अनूप पर केंद्रित विशेषांक' के रूप में संपादित एवं प्रकाशित हो रहा है।

प्रो. वशिष्ठ की विशेष पहचान– हिंदी ग़ज़ल के क्षेत्र में उनके योगदान और एक सहृदय प्राध्यापक के रूप में होती है। वे न केवल एक उत्कृष्ट ग़ज़लकार हैं, और न केवल एक सहृदय प्राध्यापक, बल्कि एक विशिष्ट आलोचक भी हैं। हिंदी साहित्य में उनका योगदान– उन्हें एक संवेदनशील और बहुआयामी व्यक्तित्व का धनी बनाता है। उनके लेखन में जितनी वैचारिक गहराई है, उतना ही जन–जीवन से उनका जुड़ाव भी है। साथ ही, वे अपने विचारों को– जीने वाले भी हैं।

एक बड़े आलोचक ने कहा है, "बड़ा और सच्चा रचनाकार वही होता है, जो अपने लिखे और पढ़े को– अपने जीवन में उतारे।" इस आधार पर, वशिष्ठ अनूप अपनी रचनाओं और आलोचनाओं के माध्यम से अपने व्यक्तित्व को संजीदा रखते हैं। उनके संदर्भ में यह कहना कठिन है कि उनकी रचना ने उन्हें एक बेहतर प्राध्यापक बनाया या उनके व्यक्तित्व ने उन्हें एक उत्कृष्ट रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित किया।

प्रो. वशिष्ठ के रचनात्मक व्यक्तित्व पर यदि चर्चा की जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि वे भारतीय चिंतनधारा की ज्ञानात्मक संपदा से बहुत प्रभावित हैं। उनका यह प्रभाव इस पंक्ति में बखूबी देखा जा सकता है– **"तुलसी के, जायसी के, रसखान के वारिस हैं,/कविता में हम कबीर के ऐलान के वारिस हैं।"** इन पंक्तियों में स्पष्ट है कि तुलसीदास, जायसी और कबीर आदि का साहित्यिक प्रभाव उन पर परिलक्षित होता है। तुलसीदास, जिनकी रचनाएँ मानवीय संवेदनाओं और प्राणी मात्र के हित के लिए समर्पित हैं, को वशिष्ठ अनूप, पहला स्थान देते हैं। जायसी, जो धार्मिक उन्माद के चलते– अपने समय के इतिहास से टकराते हुए भी स्वयं की पहचान के मोहताज हो जाते हैं, अस्तु उन्हें अपनी प्रामाणिकता को स्वयं लिपिबद्ध करना पड़ता है– को वे दूसरे स्थान पर रखते हैं।

इसके बाद वे कबीर के ऐलान की ओर बढ़ते हैं। कबीर, जो सत्ता और व्यवस्था को चुनौती देने के प्रतीक बन गये हैं– वशिष्ठ अनूप की प्रेरणा का एक मुख्य स्रोत हैं। कबीर का वह जज्बा, जो सत्य और बर्बरता के विरोध में बड़ी निर्भयता के साथ खड़ा होता है, वशिष्ठ अनूप के लेखन और विचारधारा में स्पष्ट झलकता है। इस तरह से भारतीय चिंतनधारा में उन तमाम बड़े रचनाकारों, या कहूँ कि उन्हीं के रास्ते पर चलते हुए समसामयिक मानवीय विचारधारा का विस्तार करते हैं।

बड़ा हो जाना और जनजीवन से कट जाना– यह वर्तमान में अकादमिक व्यक्तित्व की सबसे बड़ी सच्चाई बन गई है जबकि जो व्यक्तित्व प्रो. वशिष्ठ का उभरकर सामने आया है– वह जनजीवन से जुड़ने वाला है, और यह जो उनका जनजीवन से जुड़ाव है, लोक की प्रतिष्ठा है, वह उनके व्यक्तित्व में निखार लाता है। आज के संदर्भ में देखें तो अधिकतर लोग राजनीतिक मानसिकता की विचारधारा से प्रभावित होकर अकादमिक जगत में काम कर रहे हैं, उनके लिए प्रो. वशिष्ठ एक पैमाने हैं कि उन्हें कैसा होना चाहिए।

प्रो. वशिष्ठ मानवीयता के आधार पर सामुदायिक एकता के पक्षपाती हैं। वह मिलकर आगे बढ़ने–बढ़ाने की बात करते हैं। जाति–धर्म में बाँटने वालों के विषय में वह लिखते हैं:

"जाति–धर्मों में इसको न बाँटे कोई, /प्रेम की पाठशाला हमारा वतन।"

अपनी परंपरा और संस्कृति से जुड़ने के साथ–साथ, प्रों. वशिष्ठ ने तमाम पश्चिमी रचनाकारों से भी बहुत कुछ सीखते हैं। यदि देखा जाए तो अरस्तू की विचारधारा के वह काफी करीब दिखाई देते हैं। अरस्तू के अनुसार, "रचनाकार प्रकृति का केवल अनुकरण ही नहीं करता है बल्कि प्रकृति का अनुपूरक होता है।" प्रों. वशिष्ठ की रचनायें– इसकी प्रमाण हैं। विलियम वड्र्सवर्थ का प्रभाव उन्हें लोक जीवन से जोड़ता है। उनकी सभी रचनाओं में सामान्य लोकजीवन की भावभूमि का चित्रण हैं। ग्रामीण शब्द, जनजीवन की सरलता, सहजता और ग्रामीण जीवन का भावबोध– स्पष्ट रूप से उनमें परिलक्षित होता है। उनके भीतर कॉलरिज की गहरी कल्पनाशीलता है, जिसके तहत वे हर चीज में नए आयाम खोज लेते हैं। खासतौर पर उनके प्रेम गीतों में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

उनकी आलोचना में ए. ए. रिचड्र्स की 'सृजनात्मक एवं वैज्ञानिक भाषा', टी. एस. इलियट की 'निर्वैयक्तिकता एवं वस्तुनिष्ठ–सहसंबंध' जान डाईड्रेन की 'आलोचनात्मक दृष्टि' का प्रभाव बड़ी गहराई से उद्धृत है, जिसमें परंपरा की मान्यता, संस्कृति के प्रति लगाव और निर्वैयक्तिक होने के भाव– निहित हैं, जो सभी को संचेतित भी करते हैं। इस तरह से वह भारतीय चिंतनधारा के साथ पाश्चात्य की मानवीय एवं जन–हित की अवधारणा से भी सीखते और सिखाते– भविष्य को मार्गदर्शित भी करते हैं।

प्रो. वशिष्ठ अनूप से मेरी पहली मुलाकात और पहचान 2010 में (पीएच.डी. कोर्स के व्याख्यान के दौरान, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय) हुई थी। जिसमें उन्होंने हिंदी ग़ज़ल की परंपरा को बेहतर तरीके से समझाया था। हालाँकि, इससे पहले मैं ग़ज़ल से अपरिचित नहीं था। दुष्यंत कुमार, गोपालदास नीरज, ग़ालिब, मीर, अकबर इलाहाबादी और फ़िराक जैसे बड़े ग़ज़लकारों को पढ़ चुका था, परंतु ग़ज़ल को अच्छे तरीके से समझने का– यह मेरा पहला अनुभव था। उस कक्षा में प्रो. वशिष्ठ अनूप केवल ग़ज़ल नहीं पढ़ा रहे थे, बल्कि ग़ज़ल से संवाद करवा रहे थे। उन्होंने हिंदी ग़ज़ल की परंपरा को अमीर खुसरो, कबीर आदि से लेकर भारतेंदु युग तक और फिर द्विवेदी युग से समकालीन ग़ज़लकारों तक की ग़ज़लों से परिचित कराया। इसके साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि ग़ज़ल और गीत में क्या अंतर होता है, उनके बीच के तमाम सह–संबंध और अंतर्विरोध क्या होते हैं? आदि को समझाया। यहीं से मैं वशिष्ठ अनूप का मुरीद बन गया। आज लगभग 15 वर्ष हो गए हैं, लेकिन वह व्याख्यान आज भी मेरी स्मृतियों में तर–ओ–ताजा है। तब से अब तक लगातार उनके लेखन को पढ़ता, सुनता, सीखता रहा हूँ।

यह सौभाग्य की बात है कि पत्रिका का यह अंक उनके विशेषांक के रूप में निकल रहा है। इस विशेषांक को पूरी निष्ठा, आदर एवं सम्मान हेतु– प्रस्तुत किया जा रहा है। अंत में, मैं यही कहना चाहूँगा कि गुरुजनों के आशीर्वाद और मार्गदर्शन से ही– यह अंक बड़ी ही सहजता के साथ पूरा हो रहा है, जिसमें डॉ. दयानिधि मिश्र, प्रो. गिरीश्वर मिश्र सहित सभी पत्रिका के संरक्षक एवं सलाहकार मंडल का– विशेष रूप से मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। उपरोक्त पत्रिका के इस अंक में कुल 33 आलेख एवं शोध–लेख प्रकाशित हो रहे हैं, जिसमें हिंदी–भाषा के 30 (तीस) संस्कृत–भाषा के– 2 (दो) और अंग्रेजी–भाषा का 1 (एक) शोध–पत्र संग्रहित हैं। सभी शोध–पत्र या लेख अपने–अपने क्षेत्र के विद्वानों की महनीय अभिव्यक्तियाँ हैं। मैं सभी लेखकों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। अंत में, इस अंक के संपादन हेतु 'आलोचन–दृष्टि के संपादक–मंडल को आभार ज्ञापित करता हूँ, जिनके सहयोग और सहकार से ही– पत्रिका का यह अंक अपना अंतिम कलेवर ग्रहण कर रहा है। साथ ही, पाठकों– के स्नेह एवं लगाव के प्रति भी, मैं कृतज्ञ हूँ, आपसे निवेदन है कि इस अंक के विषय में आप अपने महनीय विचारों से हमें अवगत करायें, और अंत में–

आने वाली नस्लें तुमसे रश्क करेंगी हम अशरों,
जब उन्हें मालूम होगा तुमने फ़िराक़ को देखा है।

31, दिसम्बर, 2024।

विषयानुक्रमणिका

- संपादकीय iii-iv
- विषयानुक्रमणिका v-vi
- कुछ महत्त्वपूर्ण एवं स्मरणीय चित्र vii-viii

1. जीवन-यथार्थ के साक्षात्कार के ग़ज़लकार : वशिष्ठ अनूप 1-4
प्रो. चित्तरंजन मिश्र

2. मुखर प्रतिवाद है कविता 5-13
पंकज गौतम

3. इक नई वर्णमाला बनाने की जुगत में : वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें 14-17
डॉ. रामसुधार सिंह

4. समय का सच और डॉ. वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें 18-23
ओम प्रकाश मिश्र

5. ये मेरे शब्द तेरा हौसला बढ़ाएँगे : वशिष्ठ अनूप की गज़लगोई 24-34
प्रकाश उदय

6. जन-मन की अन्विति और ये गज़लें 35-38
प्रो. अनिल कुमार राय

7. वशिष्ठ अनूप के गीत-ग़ज़ल 39-45
डॉ. बलभद्र

8. वक्त के रुबरु खड़ी वशिष्ठ अनूप की गज़लों में किसान-मजदूर और गाँव 46-51
डॉ. सतीश पांडेय

9. अनूप की ग़जलें : सादगी का सौन्दर्य (मशालें फिर जलाने का समय है) 52-53
प्रो. रामदरश मिश्र

10. तेरी आँखें बहुत बोलती हैं- गहन जीवन बोध की महत्वपूर्ण ग़ज़लें 54-58
श्रीधर मिश्र

11. प्रेम-सौन्दर्य और संघर्ष-प्रतिरोध की आवाज बनती कविताएँ (संदर्भ—'इसलिए'...) 59-65
ओम धीरज

12. उम्मीद जगाती वशिष्ठ अनूप की ग़जलें 66-69
प्रो. अमरनाथ

13. 'गर्म रोटी के ऊपर नमक-तेल था' में प्रेम और सौन्दर्य 70-72
डॉ. सुधाकर मिश्र

14. जनगीत के प्रमुख हस्ताक्षर : प्रो. वशिष्ठ अनूप 73-76
डॉ. विनम्र सेन सिंह

15. जीवन-राग और जीवन की लय-छन्द के ग़जलकार 77-82
राजदेव सिन्हा

16. गाँव किसान की ग़ज़ल : छंद तेरी हँसी का 83-85
प्रो. चंद्रभान सिंह यादव

17.	व्यापक जीवन-बोध के ग़ज़लकार : प्रो. वशिष्ठ अनूप *डॉ. कमलेश राय*	86-89
18.	सामाजिक परिवर्तन की लौ को जिलाए रखती वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें *डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट*	90-95
19.	हिन्दी ग़ज़ल और वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें (बंजारे नयन) *डॉ. देवेन्द्र उपाध्याय*	96-99
20.	वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें : जनवादी चेतना का मुकम्मल बयान *डॉ. दिनेश पाठक*	100-105
21.	मेरी कविता बगावत-बिगुल है *डॉ. मीनाक्षी दुबे*	106-113
22.	स्त्री-जीवन के सत्य का संधान करती वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें *डॉ. सत्यवती चौबे*	114-119
23	निष्कलुष प्यार की भीनी-भीनी महक : वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें *डॉ. कुमारी अश्विनी*	120-123
24.	हिन्दी ग़ज़ल का स्वरूप और महत्वपूर्ण हस्ताक्षर *प्रो. रामचन्द्र तिवारी*	124-127
25.	हिन्दी के किरीटी गीत-ग़ज़लकार और कवि आलोचक प्रो0 वशिष्ठ अनूप *डॉ. जगदम्बाप्रसाद दुबे*	128-131
28.	जनवादी कविता की चिंतन भूमि *डॉ. प्रभात कुमार मिश्र*	132-136
27.	गीत का आकाश : साहित्य के विस्तार की एक कोशिश *डॉ. किंगसन सिंह पटेल*	137-142
28.	हर तरह के जज़्बात का एलान हैं आँखें *डॉ. मुंकेश कुमार शुक्ल*	143-147
29.	समकालीन समय में साहित्य एवं ग़ज़ल की महनीयता *प्रो. वशिष्ठ अनूप से उपेन्द्र कुमार मिश्र की बातचीत*	148-151
30.	वरीवर्ति लोके वशिष्ठो द्विवेदी *प्रो. शरदिन्दुकुमारः त्रिपाठी*	152-153
31.	कविवशिष्ठाभ्युदयम् *राजेशसरकारः*	154-154
32.	**Ghazal Writer Prof. Vashisht Anoop's Social, and Political Sensitivity...** *Dr. Sunil Kumar Manas*	155-157
33.	प्रो. वशिष्ठ अनूप : एक संक्षिप्त परिचय ***डॉ. सुधीर कुमार तिवारी***	158-161
34.	लेखक-परिचय	162-162

ꕤ★ꕤ

उ.प्र. हिन्दी संस्थान
2015

2006

CENTRE
SOUND

10वें विश्व हिन्दी सम्मेलन, के अवसर पर भोपाल में (10-12 सितम्बर, 2015)

10वें विश्व हिन्दी सम्मेलन, भोपाल

अमृत कलश सम्मान-1999

म.म. आ. विष्णुकांत शास्त्री से डी. लिट् की उपाधि प्राप्त करते हुए

पत्नी श्रीमती 'नीलम द्विवेदी' एवं पुत्र 'सूरज' के साथ

जीवन-यथार्थ के साक्षात्कार के ग़ज़लकार : वशिष्ठ अनूप

प्रो. चित्तरंजन मिश्र

वशिष्ठ अनूप समकालीन साहित्यिक परिदृश्य में अपनी बहुविध सक्रियता के कारण एक सुपरिचित नाम और महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में स्थापित हैं। वशिष्ठ जी ने अपनी व्यवहारिक समीक्षाओं से, सुविचारित इतिहास दृष्टि से और प्रांजल साहित्यिक विवेक से अपनी एक विशिष्ट पहचान कायम की है। इन सबके बावजूद उनका मानना है, और यह मानना सहज स्वाभाविक ईमानदारी का मानना है कि उनकी सर्जनात्मक मेधा का स्वाभाविक प्रस्फुटन ग़ज़लों की रचना में ही संभव हुआ है। वे स्वयं को ग़ज़लकार के रूप में ही देखा जाना पसंद करते हैं। यों दूसरी विधा खासतौर से आलोचना में और वह भी ग़ज़ल के सिद्धस्त विद्वानों में भी उनका नाम चलता है। वे ग़ज़ल की परंपरा के पारखी हैं। उसके इतिहास के अध्येता और रचना प्रक्रिया के एक विश्वसनीय व्याख्याकार भी हैं। लेकिन उनका मन रमता है ग़ज़ल कहने में ही। शेर जैसे उनका मुंह जोहते रहते हैं। अपने अनुभव को जब भी वे अभिव्यक्त करना चाहते हैं तो वह उनकी जबान से उतरकर श्रोता के कानों, इंद्रियों तक और कलम से कागज पर उतरने के लिए उतावले हो जाते हैं। विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि इस उतावलेपन में भी भाषा की रवानी, शब्दों की मितव्ययिता और भावों की ठीक–ठीक अभिव्यक्ति का संयम और विवेक उनकी मुट्ठी में बंधा रहता है, और इस बंधी हुई मुट्ठी में वे बहुत करीने से प्रेम, करुणा और अपने परिवेश तथा प्रकृति को साधे रहते हैं। वशिष्ठ जी के आठ ग़ज़ल संग्रह और उनकी ग़ज़लों का एक प्रतिनिधि संकलन भी प्रकाशित हो चुका है। अपने इन संकलनों में संकलित ग़ज़लों के अंतर्निहित वस्तु संसार और विषय विन्यास के कारण वे दुष्यंत कुमार की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले उल्लेखनीय ग़ज़लकार साबित हुए हैं।

दुष्यंत कुमार ने ग़ज़ल विधा को अंतर्वस्तु के स्तर पर विस्तार दिया और उसे मात्र आंतरिक मनोभावों के आलोड़न–विलोड़न से ऊपर उठाते हुए, समय से मुठभेड़ करते हुए सामान्य आदमी की ज़िल्लत, ज़लालत, सपनों, संघर्षों, आशाओं, आकांक्षाओं से जोड़ने का अपूर्व रचनात्मक उद्यम किया। अपने इसी रचनात्मक वैभव के कारण वे ग़ज़ल परंपरा के एक 'माइल स्टोन' बन गए और उनके बाद के ग़ज़लकारों ने परंपरा के इस नायाब ब्रेक के साथ अपने को भी इसी जोड़ के सिलसिले को एक नया रंग दिया। दुष्यंत कुमार और अदम गोंडवी की ग़ज़लों के अशआर नुक्कड़ की सभाओं से लेकर संसद की बहसों तक में उद्धृत किए गए। इसी रचनात्मक वैभव को वशिष्ठ जी अपनी ग़ज़लों में आगे बढ़ाते हुए दिखाई पड़ते हैं। वे दुष्यंत और अदम गोंडवी की साझी विरासत को संभालने वाले सफल और जिम्मेदार गज़लकार के रूप में सामने आते हैं। वशिष्ठ अनूप 'राज महलों में पलने वाली' इस विधा को 'झोपड़ी की दुलारी' बनाने में लगे हुए हैं। वशिष्ठ जी की ग़ज़लों के केंद्र में शहराती शिक्षित सुविधाजीवी सुखासीन तथाकथित उच्च वर्ग या यथास्थितिवादी झपट्टेमार मध्यवर्ग की फितरत में बसी हुई हुस्न और इश्क की अदाएं और उस पर जान न्योछावर करने वाली तात्कालिक क्षणिक भावुकता नहीं है, बल्कि पारिवारिक जीवन के निर्वाह के लिए जिंदगी जुटाने वाले श्रमजीवी समुदाय का कठिन जीवन संघर्ष है, जीवन मूल्यों की रक्षा के लिए अपने को दाँव पर लगाते रहने वाला समुदाय है, उसकी दुर्वह जीवन स्थितियों के बावजूद अपराजेय जिजीविषा है, उसकी विसंगतियाँ हैं, उसकी विडंबनाएं हैं। अनूप जी उस जीवन संघर्ष को प्रत्यक्ष करने वाले रचनाकार हैं, जहां पर खुशी की कोंपलें ही सूख जाती हैं और जहां घर परिवार बाल–बच्चों, खेती गिरस्ती, इज़्ज़त–आबरू चलाते रहने के लिए एक आदमी रात के अंधेरे में मुंह छिपा कर अकथ वेदना का ताप सहता रहता है।

'कुंदन जड़ी गुड़िया को देखकर' अगर एक संवेदनशील रचनाकार को अपने आसपास पढ़ती, घूमती, खेलती और इतराती हुई 'लड़कियों के कान की पीतल वाली बाली' याद आती है तो वो इसलिए कि उनकी चिंता के केंद्र में इस लोकतंत्र की अव्यवस्था और गरीब विरोधी योजनाओं को झेलने वाला वह आम आदमी है। जो इस व्यवस्था का नरम चारा है जो अधिकार संपन्न नागरिक नहीं बल्कि सिर्फ मतदाता,

लाभार्थी और उपभोक्ता बनकर जीने के लिए अभिशप्त हैं। अपने इसी कमिटमेंट से बने भावबोध के कारण अट्टालिकाओं पर अब बाहर लटकती रहने वाली झालरों को देखकर वशिष्ठ जी को घर के बने मिट्टी के दियों वाली दिवाली याद आती है। यही एक आम भारतीय की असली दिवाली है, इसी अपनी पावन दिवाली की मीठी मद्धिम रोशनी में अपने परिवार की 'भोली बालिका की सहज मुस्कान भोर की किरण की तरह लगती है, तो पाठक का मन उम्मीद के उजाले के सुनहले सपनों से विभोर हो जाता है।

प्रेम जो साहित्य मात्र का केंद्रीय सरोवर है उसकी रवायत तो उसी के हसीन लफ्जों और सपनों से सजती रही है, उस प्रेम की स्मृतियों में भी डूबते उतरते अनूप जी उसी में डूब नहीं जाते हैं। उन स्मृतियों को समेटते और सहेजते हुए बहन–बेटियों की इज़्ज़त की चिंता तक जाते और ले जाते हैं। जेंडर विमर्श की सनसनी पूर्ण उत्तेजना से भरे इस भयावह समय में भी बहनें बेटियां अपने घरों से लेकर राजधानी की सड़कों तक भी सुरक्षित नहीं हैं, और उनका पूर्ण जीवन उसके सलाह सागर में विलीन होता रहता है, वशिष्ठ जी की ग़ज़लों में इस आशय के सूक्ष्म संकेत भर नहीं हैं, बल्कि इस भयावह दौर का एक प्रतिरोधी स्वर भी वहाँ साफ–साफ सुना जा सकता है। राजनीति से लेकर समाज में अपनी चमक–दमक और धमक रखने वाले गिरोह बंद लोगों की जो कुटिल चालें हैं, उनका समाज पर, व्यक्ति चेतना पर, मूल्य विमर्श पर– जो घातक प्रभाव पड़ता है, वशिष्ठ जी ग़ज़लें उस तीखे श्लिष्ट और जटिल यथार्थ तक जाती है, तभी वे खीझकर कह पाते हैं कि हम उस सामाजिक साजिश में जीने को अभिशप्त हैं, यहाँ हर बदचलन अब आचरण की बात करता है। वशिष्ठ जी की ग़ज़लें भावों को विचार तक ले जाकर इस यथार्थ को प्रगट करती हैं कि विवश भोली जनता की गाढ़ी कमाई का रक्त सिर्फ व्यवसायी पूंजीपति को या राजनीतिक पी रहे हैं, सोने चांदी के सिंहासन पर विराजमान धर्मध्वजी साधु वेशधारी भी पी रहे है और वे ही मोहक भाषा में इस संसार को माया का हिरन बताने में लगे हुए हैं, वे ही जनकपुर में सीताहरण की बात करते हैं, वशिष्ठ जी की ग़ज़लें इस भयानक त्रासदी की तह तक ले जाने की हिकमत भी साधती हैं। ये इस तीखे जीवनानुभव से वाकिफ है कि बेरोजगारी का दंश सिर्फ आर्थिक तंगहाली को भोगता हुआ निजी दंश नहीं है बल्कि समाज में बेरोजगार की कोई इज्ज़त नही रह जाती है। यह समाज इतना कठोर हो गया है कि बेरोजगारी का दंश झेलते हुए नौजवान को थोड़ी सहानुभूति भी नहीं दे पाता है। वे इस स्थिति से भी रूबरू कराने की चेष्टा करते हैं कि यदि वे शिक्षित बेरोजगार हैं तो इसमें उसका कोई दोष नहीं है, दर असल नौकरियाँ ही थोड़ी–सी हैं। यह हमारी व्यवस्था है कि–

करोड़ों नौजवॉ हैं, और नौकरियाँ है थोड़ी– सी
फिर उसके बाद होती जग हँसायी मार देती है।

व्यवस्था की क्रूर चक्की में पिसते हुए आदमी या यों कह सकते हैं कि व्यवस्था की क्रूर चक्की में पिसता आदमी इतना विवश, लाचार है कि वह घर, सामाज, बाजार हर जगह मार खाता रहता है। पिटना और पिटते जाना, मार खाना और मार खाते जाना ऐसी अमानवीय स्थिति है आम भारतीय नागरिक की जो उसे जीवन भर कदम कदम पर सताती रहती है। वशिष्ठ जी की एक ग़ज़ल के कुछ शेर इस हालात का ज़ायजा लेते हैं –

कभी यह चार पैसे की कमाई मार देती है,
कभी स्कूल की महॅगी पढ़ाई मार देती है।
किसी भी मोरचे पर हममें लड़ने की है कूबत पर,
हमें दिन– रात रोटी की लड़ाई मार देती है।
निगाहें भीड़ में अपनों के चेहरे ढूँढ़ती रहती,
हमें मॉ– बाप – बीबी की जुदाई मार देती है।
इनायत देवताओं की है धनवानों के हिस्से में,
हमें जग के खुदाओं की खुदाई मार देती है।

पूरे विश्व समुदाय में जो मेहनत कश मध्यवर्ग या निम्न वर्ग हैं उसे मुक्त बाजार व्यवस्था जीवन के प्रत्येक मोर्चे पर पीटती रहती हैं, और वह मन मसोसकर इस पिटाई की मार झेलता रहता है। गैर जिम्मेदार पूॅजी के अजस्र प्रवाह ने बाजार से लेकर सरकार तक को अपने शोषण तंत्र का पुर्जा बना लिया है फिर

रोटी, स्कूल नौकरी और जीवन निर्वाह के लिए माँ– बाप, बीबी, बच्चों की जुदाई की जो मानसिक यंत्रणा निम्न मध्य वर्ग झेल रहा है उसे उपर्युक्त ग़ज़ल के शेरो में देखा जा सकता है, हद तो यह है कि जिन देवी देवताओं को हम दिन–रात पूजते रहते हैं, पखारते रहते हैं जिनके लिए अपने पड़ोसी में उलझते रहते हैं, कलह जीते रहते हैं वे देवता भी हमारे पक्ष में नहीं होते हैं, वे भी धनवानों पर ही अपनी कृपा बरसाते रहते हैं। उन्हीं धनवानों ने इस सृष्टि को अपने अधीन कर लिया है, उनकी हैसियत इंसानी जज्बात को रौंदती रहती है। वशिष्ठ जी इस क्रूर व्यवस्था की जिसने प्रकृति के संसाधनों पर भी अपना वर्चस्व कायम कर लिया है, मनुष्य विरोधी प्रकृति और प्रवृत्ति की ओर अपने पाठकों का ध्यान खीचना चाहते हैं और कह उठते हैं 'हमें जग के खुदाओं की खुदाई मार देती है'। पूँजीवादी व्यवस्था सिर्फ सत्ता और बाजार के बल पर ही मनुष्य की चेतना को गुलाम नहीं बनाती है, बल्कि संचार माध्यम के द्वारा आदमी के दिमाग में लगातार यह भाव भी उड़ेल रहती है कि ये जो भी हो रहा है वही अच्छा है और इससे ज्यादा अच्छा अभी संभव नहीं है इस तरह उसकी गुलामी की मार दोहरी होती रहती है। वशिष्ठ जी की अनेक ग़ज़लें इन संकेत सूत्रों से भरी हुई हैं। यह कौन सी व्यवस्था है, जहाँ–

खुद्दारी के दीवाने जा बैठे हैं बाज़ारों में,
अग्निऋचा लिखने वाले नतमस्तक हैं दरबारों में।
राजा जी के हर भाषण में जगजग चाँद सितारे हैं,
प्रगति कर रहा देश हमारा, विज्ञापन में, नारों में।
सच का छूटा साथ, अर्थ धुँधलाये सारे शब्दों के,
चौथे पाये के रखवाले, बिके चंद उपहारों में।

यह ग़ज़ल वशिष्ठ जी के सातवें संग्रह 'गर्म रोटी के ऊपर नमक तेल था' में संकलित है। कब लिखी गई थी हमको सूचना तो वहाँ नहीं है,पर हमारे देश समाज का हाल फिलहाल इसमें बहुत खुले ढंग से व्यक्त हुआ है। क्या गज़ब ज़माना आ गया है कि लोग अपना सहज विवेक खो बैठे हैं जिन्हें रोशनी की फरियाद करते हुए इसके लिये संघर्ष छेड़ना था वे सब अपने निजी लोभ–लाभ के चक्कर में रोशनी के साथ जानबूझकर छल कर रहे हैं–

लोग अब करने लगे हैं यूँ अँधेरों को नमन,
चाँदनी सहमी हुई है रोशनी ख़तरे में है।
दिन–ब–दिन रंगीन होता जा रहा संसार यूँ
इन दिनों सदियों सराही सादगी ख़तरे में है।

सब जानते हैं कि ग़ज़ल अरबी–फारसी–उर्दू से होते हुए हिंदी में आई एक लोकप्रिय विधा है, जो प्रेम से लेकर जंग के जज्बों को भी बहुत संभालकर करीने से आकार ग्रहण करती है। तो यह सहज स्वाभाविक है कि जब हिंदी का कोई गीतकार, अध्येता, स्कॉलर ग़ज़ल की रचना में प्रवृत्त होगा तो वह हिंदी–उर्दू–फारसी की एक साझी विरासत का हक़दार भी होगा और उसे संभालने की जिम्मेदारी भी उसके अपनी होगी। वशिष्ठ जी इस गहरे उत्तरदायित्व को न सिर्फ़ समझते और निभाते हैं बल्कि उसे खुले तौर पर घोषित भी करते हैं –

तुलसी से मुझे प्यार है और इश्क मीर से,
कायम है सदा से मेरा रिश्ता कबीर से।
प्रतिपक्ष में हरदम हुई अन्याय के खड़ी,
वाबस्तगी क़लम की हमेशा है पीर से।

वशिष्ठ जी मानते हैं, शायद ठीक ही मानते हैं कि कविता हमेशा ही अन्याय का प्रतिपक्ष रचती है। पीड़ा और कराह के साथ उसकी सहानुभूति होती है। किसी भी भाषा की जेनुइन कविता का इतिहास भी यही है कि वह धर्म और समाज की वैचारिक कट्टरता से टकराती है और मनुष्य की स्वाधीन चेतना को हर समय पुनराविष्कार करती है। वह राजा के स्वेच्छाचारी कानून के समानांतर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत पर सीमित होते मनुष्य के स्वाभाविक विवेक के पक्ष में वातावरण बनाती है। इसलिए वशिष्ठ जी की ग़ज़लों में ऐसे बहुत से शेर हैं जो सत्ता की गलियों में स्वार्थ लाभ के लिए नाक रगड़ने वालों की भर्त्सना से निकले

हुए हैं जैसे कि– खुद्दारी के दीवाने जा बैठे हैं बाज़ारों में / अग्नि ऋचा लिखने वाले नतमस्तक हैं दरबारों में।

ऐसे ही लोगों के शब्दों से अर्थ ग़ायब हो जाते हैं उनके शब्द निरा शब्द बनकर रह जाते हैं – 'सच का छूटा साथ अर्थ धुँधलाये सारे शब्दों के।' जैसी अर्थपूर्ण पंक्तियों के साथ कुछ और शेर देखे जा सकते हैं–

जो मुजरिम हैं वही अब बनके पहरेदार बैठे हैं,
वहाँ दिल्ली में कितने देश के गद्दार बैठे हैं।

यथार्थ इतना ही नहीं है इसके आगे भी है कि जो साधु संत हमारे देश की जनता और सभ्यता संस्कृति की आस्था के केंद्र हैं वह भी अब हथियारों से लैस हैं, किसी संघर्ष के लिए नहीं बल्कि अपनी सत्ता–महंथी और पूँजी की रक्षा के लिए–

नदी के घाट से पूजाघरों तक भेड़ियों के दल,
ये साधु–संत भी हाथों में ले हथियार बैठे हैं।

सभ्यता और संस्कृति का यह संकट कितना गहरा है कि जिन्हें समाज में शांति, समरसता, प्रेम, करुणा, दया, परदुःख कातरता की भावना का प्रसार करना है, वे खुद बाज़ार और सत्ता के दबाव में हिंसक हथियारों से लैस होकर भय और दहशत के वातावरण बना रहे हैं। गंगा के सपूत कहलाने वाले ढोंगियों की भी ख़बर लेने में अनूप जी संकोच नहीं करते–

ऐ गंगा माँ, बड़ी बेशर्म संतानें तुम्हारी हैं,
तुम्हारे नाम पर अरबों का भ्रष्टाचार देखा है।

बताने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए कि पिछले दस–पंद्रह वर्षों से गंगा की सफाई के नाम पर क्या कुछ और कितना हड़प लिया गया है। अभी आज के अखबार में छपा है कि गंगाजल से पार्किंसन और डिमेंशिया जैसे बीमारी फैलने का ख़तरा है। इस तरह की विसंगतियों और विडंबनाओं पर भी वे खुलकर बोलते हैं–

मसीहा शांति का कहिए या उसको देवता कहिए,
इन्हीं आंखों ने उस ज़ालिम का अत्याचार देखा है।
रहा ताउम्र घर–परिवार की खुशियाँ जुटाता जो,
बुढ़ापे में उसे हमने बहुत लाचार देखा है।

वशिष्ठ जी की नज़र जीवन–स्थिति के प्रत्येक हिस्से पर है और वे दबे–कुचले, उपेक्षित किसानों की पीड़ा, बेटियों की पीड़ा, सभ्यता की पीड़ा, संवैधानिक पदों पर बैठे हुए लोगों के आचरण में ऊपर–ऊपर दिखाई देने वाली ईमानदारी भीतर–भीतर चलने वाली नीयत की बेईमानी के दुराचार को साफ–साफ कहने वाले रचनाकार हैं। उनकी रचनाएँ मुख्य रूप से वैकल्पिक राजनीति और समाज की वकालत करने वाली हैं। गहरे अर्थों में वे एक राजनीतिक चेतना से संपन्न रचनाकार हैं पर वे लगभग प्रेमविहीन होते जा रहे समय में प्रेम की पीर के भी गायक हैं। उनकी अनेक ग़ज़लों में ऐसे उम्दा शेर हैं जो उनके दिल में बसी हुई एक मधुमय पीड़ा को भी सामने लाते हैं। उनके यहाँ स्मृतियों की गहरी थाती है ये स्मृतियाँ सौंदर्य के आकर्षण व उपादानों की हैं। यह सौंदर्य मानवीय सौंदर्य है और ज़्यादातर श्रमपूर्ण जीवन से छलकता हुआ सौंदर्य है। मानवीय सौंदर्य के प्रति सहज आकर्षण भी कविता का प्रिय विषय रहा है। वशिष्ठ जी ने वहीं से रचना की शुरुआत की है– इसलिए वे अभी भी उस सौंदर्य की भूख–प्यास की तड़प महसूस करते हैं।

कहना चाहिए कि वशिष्ठ अनूप हमारे समय के एक सशक्त, विश्वसनीय रचनाकार हैं जो अपनी रचनाओं में कबीर, सूर, तुलसी, मीर, ग़ालिब, पाश, भगत सिंह, आजाद, गाँधी सबको याद करते हैं और सबके सपनों में पलने वाले समाज की रचना में अपने को भी झोंकना चाहते हैं। उनकी ग़ज़लें मानवीय गरिमा की स्थापना करना चाहती हैं। एक अपनी पसंद की समानांतर दुनिया बनना चाहती हैं। ये ग़ज़लें बेहतर दुनिया के निर्माण की सभी बाधाओं को धिक्कारती हुई ग़ज़लें हैं।

★

मुखर प्रतिवाद है कविता

पंकज गौतम

समकालीन हिन्दी कविता में विधात्मक स्तर पर सर्वाधिक बहस और विवाद ग़ज़ल की वस्तु और रूप–शिल्प से सन्दर्भित है। इसका कारण ग़ज़लकार के निजी संस्कारों, आग्रहों और सरोकारों से तो है ही, भाषा और भंगिमा के साथ माध्यम के उपयोग की पद्धति की भिन्नता से भी है। कविता के आलोचकों ने ग़ज़ल को भिन्न–भिन्न स्तर से देखने का प्रयास किया है, जबकि ग़ज़ल कविता की एक विधा है, जो हिन्दी में अरबी, फारसी और उर्दू से होते हुए आयी और अन्य काव्य रूपों की बोधगम्यता और लोकप्रियता को पछाड़ती चली गयी। यद्यपि ग़ज़ल–लेखन के नाम पर अराजकता और लोकप्रियतावाद भी उसी प्रभाव में बढ़ता गया। फलतः जीवन–यथार्थ को अभिव्यक्त करने वाले ग़ज़ल कार भी आलोचकीय 'जड़ीभूत सौन्दर्याभिरुचि' के शिकार होते चले गए, जिसे क्रियाशीलता और सर्जनात्मकता से सम्पन्न करने के लिए अच्छे और सच्चे ग़ज़लकारों को रचनात्मक और आलोचनात्मक दोनों स्तरों पर सीधे मैदान में वैचारिकी और सैद्धान्तिकी दोनों पृष्ठभूमि पर संघर्ष के लिए उतरना पड़ा। इन ग़ज़लकारों में प्रो. वशिष्ठ अनूप इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि वे मात्रात्मकता और गुणात्मकता दोनों ही भूमियों पर अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा के साथ सक्रिय और गतिशील हैं। हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में उन्होंने बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में ही अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी थी, किन्तु इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में वे अपनी विशिष्ट पहचान लेकर उपस्थित हुए। वे हिन्दी भाषा में संस्कारित हैं। भारतीय काव्यशास्त्र के ज्ञाता हैं, किन्तु ग़ज़ल उर्दू की रवायत और उसके इतिहास से पूर्णतः वाकिफ हैं। भाषाओं की आवाजाही और बिगड़ने–बिगड़ने की प्रक्रिया से न केवल परिचित हैं, बल्कि अपने कथ्य की जरूरत के अनुसार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से शब्द उधार लेकर कहें तो 'दरेरा देकर' ग़ज़ल की भाषा–भंगिमा को नया आयाम प्रदान करते हैं। उनकी ग़ज़ल–रचना–प्रक्रिया के सन्दर्भ में कहना गलत न होगा कि वह ग़ज़ल के किसी स्कूल अथवा परम्परा से सम्बद्ध नहीं हैं। उन्होंने 'शेरियत', 'तहजीब' और 'रवायत' को अपनी खांटी देशज जमीन पर स्वीकार–अस्वीकार किया है। वे जानते हैं कि वस्तु और रूप की 'जल वीचिवत' एकता से ही क्लासिकल साहित्य की सृष्टि संभव होती है, इसीलिए वे अपनी काव्य–परम्परा में निहित प्रगतिशील जनवादी तत्वों को बड़े सलीके और सहज ढंग से आत्मसात् करने में समर्थ होते हैं।

अब यह कहने की जरूरत नहीं रह गयी है कि दुष्यन्त कुमार ने हिन्दी ग़ज़ल को जो लोकप्रियता प्रदान की, उससे प्रभावित होकर अनेक रचनाकार इस क्षेत्र में सक्रिय हुए। दुष्यन्त ग़ज़ल–लेखन की दुनिया में क्यों आए–इसके विषय में उन्होंने स्वयं बता दिया था। जिन रचनाकारों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया, उनकी पृष्ठभूमि से इक्कसवीं सदी के ग़ज़लकारों से सम्बन्ध स्थापित करने का औचित्य भी उनके कथन में निहित है। परम्परा का अर्थ अन्धानुकरण और अनुसरण करना नहीं होता। परम्परा को अपने रचनात्मकबोध में आत्मसात् करना होता है और यह तभी संभव है, जब रचनाकार ने परम्परा के साथ अपने समय का तादात्म्य स्थापित करने की वैचारिकी की परिपक्वता को हासिल कर लिया हो। दुष्यन्त के सामने आपात्काल का 'काला अध्याय' था। शलभ श्रीराम सिंह भी उसी दौर में सक्रिय थे। अदम गोण्डवी के सामने लोकतंत्र की विकृतियों का खुला पन्ना था। इन तीनों के पास अपने समय की घटनाओं–परिघटनाओं को देखने की अपनी दृष्टि और उसे व्यक्त करने की अपनी अर्जित भंगिमा थी। उनका प्रतिपक्ष स्पष्ट था। उसे पहचानने की अर्न्दृष्टि और परिवर्तित परिघटनाओं के सन्दर्भ में अपने को अतिक्रमित करने की चुनौती उनके समक्ष नहीं थी। वशिष्ठ अनूप जिस दौर में ग़ज़लें लिख रहे हैं, उस दौर में 'पल पल परिवर्तित' तथा विकृति होती जाती परिस्थितियां हैं। अदृश्य रूप से 'काला अध्याय' भी है और लोकतांत्रिक विकृतियों के खुले पन्नों के शब्द हवा में तैर रहे हैं और अपने प्रभाव का विस्तार कर रहे हैं। इसलिए उनके समक्ष कविता लिखने की चुनौती ज्यादा जटिल है। आज सत्ता और प्रतिपक्ष के चेहरे रोज बदल रहे हैं, अपने बीच के लोग भी आवरण बदलते जा रहे हैं। सत्ता तथा सेठों का गंठजोड़ और पुख्ता होता जा रहा है। वशिष्ठ अनूप के

समक्ष अपनी ही रूढ़ि को तोड़ने और अपनी ही बनायी गयी रचनात्मक दुनिया को अतिक्रमित करने की चुनौती है, जिससे ग़ज़ल की एक संघर्षशील, प्रतिबद्ध और जनचेतनासम्पन्न परम्परा का निर्माण हो सके। वशिष्ठ अनूप को यह पता है कि जनवादीकरण की यह प्रक्रिया सम्पन्न होने पर ही समाजवादी समाज व्यवस्था की स्थापना हो सकती है। कविता की लगभग सभी विधाओं में कार्य करते हुए उन्होंने साहित्य और विचारधारा के प्रश्न को जिस तरह हल किया है, वह उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता और पक्षधरता की गवाही देने के लिए काफी है।

इस प्रसंग में ध्यातव्य यह भी है कि ग़ज़ल को सरलीकरण की प्रक्रिया में देखा जाने लगा है और कुछ आलोचकों ने इसे कविता से अलगाने का अतार्किक प्रयास भी शुरू किया है। प्रश्न यह है कि ग़ज़ल कविता है कि नहीं? और यदि कविता है तो वह किसके लिए लिखी जा रही है? और जिसके लिए लिखी जा रही है, उससे उसका जुड़ाव कितना हो पा रहा है? मुक्तिबोध को जटिल काव्य–शिल्प का कवि कहा गया है, किन्तु सम्प्रेषण की समस्या से वे भी बराबर जूझते हैं। अशोक वाजपेयी ने लिखा है कि ''मुक्तिबोध कठिन समय के कठिन कवि हैं। मुक्तिबोध की कविता का स्थापत्य स्थिर और सुपरिभाषित नहीं है। एक अर्थ में उनकी कविता का कोई पूर्वज नहीं है। उन्हें उस समय हिन्दी में जो मॉडल सुलभ थे, उनसे उनका काम नहीं चल सकता था। इसलिए उन्होंने कष्टपूर्वक एक बिल्कुल नया स्थापत्य अपने लिए गढ़ा। उनकी कविताएं सोचती–विचारती कविताएं हैं। अक्सर विचारवान कवि भी अपनी कविता में नहीं, उससे बाहर सोचता है। यों मुक्तिबोध एक प्रखर बुद्धिजीवी थे, लेकिन महत्वपूर्ण यह है कि उन्होंने अपनी दार्शनिक चिन्ताओं को सृजन की चिन्ताओं में अन्तर्गुम्फित किया।'' ग़ज़ल का स्थापत्य सुपरिभाषित है। दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों का भी कोई सही अर्थ में पूर्वज नहीं था। निराला, शमशेर और त्रिलोचन ही नहीं, मीर, गालिब और अन्य समकालीन प्रगतिशील जनवादी उर्दू के ग़ज़लकारों के मॉडल का उन्होंने अपने ढंग से उपयोग किया। दुष्यन्त की कविताएं केवल सोचती और विचारती नहीं हैं, हमें जागरण का सन्देश देती हैं और संघर्ष की चुनौती भी उछालती हैं। मुक्तिबोध की कविताओं का उत्तराधिकारी भी कोई नहीं है, किन्तु दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों के अनेक उत्तराधिकारी अपनी सीमाओं और संभावनाओं के साथ सामने आए। मुक्तिबोध ने जिन मुहावरों और लोकोक्तियों के साथ रूपकों को माध्यम बनाया, उनसे अलग दुष्यन्त कुमार ने मुहावरों तथा लोकोक्तियों को समय की विडम्बनाओं से सहज ढंग से सम्बद्ध किया। भ्रम मुक्तिबोध को भी होता है और भ्रम दुष्यन्त कुमार को भी होता है, किन्तु दुष्यन्त कुमार उस भ्रम की पृष्ठभूमि को भी समझते हैं और उसके निवारण के लिए सीधे तौर पर रचनात्मक विवेक प्रस्तुत करते हैं। जटिल, संश्लिष्ट और सर्वत्र बिखरी विसंगतियों के विपरीत वशिष्ठ अनूप को भी भ्रम का सामना करना पड़ता है और उसके निवारण के लिए वे बुद्धि–विवेक विचारधारा का सहारा लेकर रचनात्मकता को लगातार को प्रमाणित करते हैं।

हिन्दी ग़ज़ल पर काम करने वालों में अधिकांश ने वज्न और मात्रा की अनिवार्यता को अतिरिक्त महत्व दिया है, जिससे उसकी वास्तविक शक्ति और क्षमता के मूल्यांकन में कई उलझनें आती रही हैं। कुछ आलोचकों ने ग़ज़ल को कविता से अलग मूल्यांकित करने का प्रयास किया है तो कुछ ने उसके बड़बोलेपन को ही उसका मूल्य मान लिया है। वशिष्ठ अनूप इन सारी अतियों से स्वयं को बचाने की कोशिश करते हैं और ग़ज़ल की सामान्य 'रवायत' का भरसक निर्वाह करते हुए समकालीन विमर्शों को कलात्मक ढंग से उसमें संग्रथित करते हैं। उन्होंने 'गर्जन–तर्जन' की अतिरेकी मुद्रा अपनाए बिना भारतीय लोकतंत्र और सामाजिक संरचना की असंगतियों पर कलात्मक प्रहार किया है। इस प्रक्रिया में वे अपने समानधर्माओं से संवाद करते हैं और फिर उन्हें साथ लेकर आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं।

समकालीन ग़ज़ल और समकालीन कविता का उपजीव्य अलग–अलग नहीं है, भावबोध भी अलग–अलग नहीं है। वैचारिकी से जुड़े हुए प्रश्न भी एक ही हैं, किन्तु दोनों को अलग–अलग करके देखने और आलोचना के प्रतिमानों को स्थापित करने का प्रयत्न कविता की अपेक्षा विधा अथवा माध्यम को ही प्रमुख मान लेना है। सीताकान्त महापात्र ने कविता को माध्यम तक सीमित रखने वालों पर सीधे–सीधे प्रहार किया है। ग़ज़ल कहां से आयी, कब आयी–यह महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण यह है कि वह जनजीवन को किस तरह व्यक्त करती है? श्रमजीवी समाज के साथ किस तरह कदम मिलाकर चलती है? कभी–कभी

रचनाकार पारम्परिक रूप को भी सहसा नया कर देता है। जैसे त्रिलोचन ने अंग्रेजी–काव्यरूप सॉनेट को हिन्दी में लाकर नया कर दिया। ए. अरविन्दाक्षन ने लिखा है कि ''कविता की यह अनिवार्य प्रवृत्ति है कि वह काल की तात्कालिकता को तोड़े, अपनी कला–चेतना को मानवीय इतिहास और संवेदों के साथ जोड़े और उस सरोकार को विभिन्न सन्दर्भों में पहचाने। इस पहचान के लिए कला–चेतना की गहरी समझ की भी आवश्यकता है। यह कविता को कविता बनाने वाली सरल प्रक्रिया नहीं है। कला–चेतना भी आखिरकार काल–चेतना के समान कविता को देशज अस्मिता के साथ जोड़ने वाली कड़ी है। ऐसी कलाचेतना अन्ततः जनचेतना का संवेदनात्मक रूप ही है। समकालीनता की इस दोहरी पहचान में, अर्थात कालचेतना और कलाचेतना की पहचान में–जनचेतना का सही परिदृश्य ही हमें मिलता है। अपनी देशज अस्मिता की खोज में अनवरत यात्रा में कविता ने इस दौर में अपनी समकालीन दृष्टि के कारण जनोन्मुखता का सही परिचय दिया है। अतः समकालीन कविता की अनुभूति जनोन्मुख रही। जनोन्मुखता को आज की कविता के सन्दर्भ में कविता की लोकदृष्टि कह सकते हैं, जो कविता की वास्तविक भूमि है।'' उल्लेखनीय है कि ए. अरविन्दाक्षन की जिस पुस्तक से यह उद्धरण लिया गया है, उसका नाम है, 'समकालीन कविता'। उसमें उन्होंने कविता की विधाओं को अलगाया नहीं है, बल्कि लोकदृष्टि पर कविता को केन्द्रित किया है। देशज अस्मिता, कलाचेतना, कालचेतना और जनचेतना का प्रश्न उठाकर ए. अरविन्दाक्षन ने सम्पूर्ण समकालीन हिन्दी कविता के मूल्यांकन का औजार प्रस्तुत किया है। इस प्रसंग में वशिष्ठ अनूप की एक ग़ज़ल को सामने रख सकते हैं, 'तुलसी के, जायसी के, रसखान के वारिस हैं/कविता में हम कबीर के ऐलान के वारिस हैं/हम सीकरी के आगे माथा नहीं झुकाते/कुम्भन की फकीरी के, अभिमान के वारिस हैं/एकलव्य का अंगूठा कुछ पूछता है हरदम/हम तीर–कमानों के संधान के वारिस हैं/हम शब्द–सारथी हैं, हर वक्त इस समर में/हम पाश व सफदर के अरमान के वारिस हैं/सीने में दिल हमारे आजाद का धड़कता है/हम वीर भगत सिंह के वलिदान के वारिस हैं/हमने समर में पीठ दिखायी नहीं कभी भी/आल्हा के हम सहोदर मलखान के वारिस हैं।' क्या अब भी यह बताने की जरूरत रह गयी है कि वशिष्ठ अनूप हिन्दी ग़ज़ल को कहां तक ले आए हैं और कहां तक ले जाने की संभावनाओं की ओर संकेत किया है। उन्होंने अपनी परम्परा से क्या ग्रहण किया–मुख्य प्रश्न यह है। साहित्य में त्याग और ग्रहण की प्रक्रिया चलती है–यह मान्य तथ्य है। संघर्ष, जागरण, वलिदान, कलात्मकता, दर्शन, राजाश्रय के विरोध के सारे बिन्दु इस एक ग़ज़ल में विद्यमान हैं।

वशिष्ठ अनूप ने लोकदृष्टि और लोकचेतना के सामाजिक आधारों को भी पहचानने की कोशिश की है। लोकसम्बद्धता कविता का कर्मबोध है। सामाजिक आधार जीवन की लोकप्रियता हमारी तमाम सहजताएं कविता के स्वीकृत पक्ष हैं–ए. अरविन्दाक्षन की इन स्थापनओं पर वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें खरी उतरती हैं। मलयज के आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के काव्य–सम्बन्धी विचारों को इस सन्दर्भ में प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा : ''कविता वास्तविकता से रसवत्ता और गुणवत्ता ग्रहण करती है। धरती शुक्लजी के सामान्य मनुष्य का संस्कार है, आकाश इसका कर्म है। अपने संस्कारों से वह धरती की ही तरह ठोस हैं, अपनी संवेदना में मूर्त्त और वस्तून्मुखी, अपने कर्म से वह उड़ता है, आदर्श के पक्ष में हाथ उठाता है। उसके कर्म की उड़ान उसे धरती के गोचर रूपाकारों से परे नहीं ले जाती, बल्कि उसकी सूक्ष्म रसवत्ता से बांधे रहती है। उसकी धरती का संस्कार उसे जड़, अतीतोन्मुख, गतिहीन नहीं बनाता, बल्कि भाव–क्षेत्र में चीजों को मजबूती से पकड़ने और उन्हें उनके सही नामों से पुकारने की ऊर्जा देता है। धरती के सन्दर्भ में जो कुछ ज्ञानातीत और आलौकिक है, उसे वह शक की दृष्टि से देखता है। प्रत्यक्ष यथार्थ से अलग अध्यात्म उसके लिए फरेब है, जैसे दूर कहीं धरती और आकाश का मिलन, जो जब नजर आता है, तब धुंधलके में ही।'' रचनाकार की लोकदृष्टि इस धुंधलके को अपनी कालचेतना और कलाचेतना के माध्यम से साफ करती है। कविता की असलियत मात्र उसकी रूपवादी चेतना से सम्बद्ध नहीं है।

इस भूमि पर वशिष्ठ अनूप की एक ग़ज़ल को देखा जा सकता है, 'तुलसी से मुझे प्यार है और इश्क मीर से/कायम है सदा से मेरा रिश्ता कबीर से/प्रतिपक्ष में हरदम हुई अन्याय के खड़ी/ वाबस्तगी कलम की हमेशा है पी से/मुझको कभी लुभा नहीं पायीं बुलन्दियां/शुरुआत मैं करता हूं हमेशा अखीर

से/रोएं हैं फूट–फूटकर धरती व आसमां/मारा गया है, जब भी कोई निर्दोष तीर से/बढ़ती है खुशी बांटने से और ज्यादा/ये बात सुनी थी, किसी पहुंचे फकीर से/संन्यासियों की बात तो मुझको नहीं पता/मैं प्यार को अलगा नहीं पाया शरीर से।' यहां तुलसी, मीर और कबीर ही नहीं हैं, वाल्मीकि और सूफी फकीर भी हैं। मलयज ने शुक्लजी के सन्दर्भ में जो बात कही थी, उससे इस ग़ज़ल का एक रिश्ता बनता है। विभिन्न विधाओं में पैंतीस पुस्तकों की रचना करने के बावजूद वशिष्ठ अनूप की खासियत यह है कि वे अपने को दुहराते नहीं। 2006 में प्रकाशित 'रोशनी खतरे में है' में उन्होंने लिखा है कि, 'एक मां की पुलक एक कृषक की खुशी/खेत में लहलहाती फसल है ग़ज़ल/कैसे जीवन से कविता जुड़ेगी पुनः/प्रश्न का एक सीधा–सा हल है–ग़ज़ल।' इन पंक्तियों में ग़ज़ल के प्रति उनका भरोसा कुछ अधिक ही प्रतीत होता है, किन्तु 2018 में 'घरों पर गिद्ध मंडराने लगे है' में वे वास्तविकताओं की जटिलता और सामाजिक–राजनीतिक अन्तर्विरोधों को समझते हुए लिखते हैं, 'अक्षर–अक्षर, तिनका–तिनका चुनना पड़ता है/भीतर–भीतर कितना कहना–सुनना पड़ता है/चिड़िया जैसे नीड़ बनाती है तन्मय होकर/कविता को भी बहुत डूबकर बुनना पड़ता है।' इस बीच के बारह वर्षों के जीवनानुभव, आत्मसंघर्ष, आत्मसाक्षात्कार और यथार्थबोध की सघनता के बाद ये शेर अस्तित्व ग्रहण करते हैं। यह प्रक्रिया अन्यन्त चिन्तनशील रचनाकार के भीतर ही घटित हो सकती है। हिन्दी ग़ज़ल के स्वास्थ्य और भविष्य दोनों के लिए यह आवश्यक है।

छन्द मुक्त कविता लिखने वाले या अन्य विधाओं में लिखने वाले जटिल सन्दर्भों को और जटिल जीवनद्रव्य को विषय बनाने वाले कवि भी आत्मसाक्षात्कार से गुजरते हुए सम्प्रेषणीयता पर विचार करते हैं, किन्तु ग़ज़ल पर दो तरह के आरोप लगते हैं। भर्ती की ग़ज़ल और प्रभावित ग़ज़ल। दोनों ही स्थितियों में आलोचक यह भूल जाते हैं कि श्रेष्ठ ग़ज़ल लिखने वालों के लिए जनजुड़ाव की समस्या पहले नम्बर पर होती है। इसलिए वे अक्षर–अक्षर, तिनका–तिनका चुनते हैं और तन्मय होकर, डूबकर कविता को बुनते हैं। वशिष्ठ अनूप यदि कविता की जगह ग़ज़ल रख देते तो भी कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता, किन्तु उनके समक्ष सम्पूर्ण समकालीन कविता थी, जिसमें ग़ज़ल की अग्रणी भूमिका को वे बार–बार स्वीकार करते हैं। नवम्बर 1994 में उन्होंने एक ग़ज़ल लिखी :

राज महलों में पाला गया था इसे, आज है झोपड़ी की दुलारी ग़ज़ल
मनचलों ने पिन्हाये थे घुंघरू इसे, आज है मां–बहन की–सी प्यारी ग़ज़ल
तीर चलते थे कल मदभरे नयन से, जाम होंठों से आकर छलक जाते थे
जुल्फ के खम से बाबस्ता थी कल मगर, जुल्म के रूबरू है हमारी ग़ज़ल
कल थिरकती थी तबलों की थापों पे यह, महफिलों में लगाती थी ठुमके सदा
हाथ मेंहदी रचाए खड़ी थी मगर, आज हॅ मुक्ति की एक कटारी ग़ज़ल
निष्कलुष प्यार की भीनी–भीनी महक, ताजगी जैसे बच्चों की निश्चल हंसी
इसमें शामिल है माटी का कुछ शोधापन, खूं–पसीने से हमने संवारी ग़ज़ल
प्यार मीरा घनानन्द रसखान का, पीर इसमें कबीरा निराला की है
आज है अपनी कुटिया की रानी, कल भिखारिन की–सी दसदुलारी ग़ज़ल
एक मजलूम के हाथ में ज्यों धनुष, हक की खातिर तनी मुट्ठियों की तरह
आक्रमण की है तैयारियां कर रही, दर्द के गांव में गम की मारी ग़ज़ल'

दुष्यन्त कुमार ने जो संकेत किया था कि 'अब हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए, उसकी ध्वनि इस ग़ज़ल में स्पष्ट सुनी जा सकती है। अदम गोण्डवी ने भी ग़ज़ल को मुफलिसों तक ले चलनेने की बात की थी। दुष्यन्त ने भी लिखा कि 'मैं जिसे ओढ़ता–बिछाता हूं, वह ग़ज़ल आपको सुनाता हूं।' अभिप्राय यह कि जो भी इस विधा के प्रति गम्भीर हैं उनके समक्ष समकालनी जीवन की तल्खियां हैं।

वशिष्ठ की ग़ज़लों में सांस्कृतिक अस्मिता के लिए संघर्ष और शोषण–तंत्र का विरोध है। ग़ज़ल को एक खास चश्मे से देखने से न हम कविता के साथ न्याय कर सकते हैं, न इस काव्य–रूप से। ए. अरविन्दाक्षन ने लिखा है : मानवीय आकांक्षाओं के बहुरंगी चित्रों से भरे कविता का 'जनचरित्री' रूप स्पष्ट होता है। समकालीन हिन्दी कविता को भारतीय सामाजिक सन्दर्भों से जोड़कर देखते समय मुख्यतः उसका

पूर्व अध्याय आधुनिक कविता का है या उसके पहले का छायावादी युग भी समाहित होता है। जिस त्वरित गति से भारतीय समाज में परिवर्तन लक्षित हुए हैं, जिनके साथ समकालीन कविता का जितना गाढ़ा रिश्ता है, जिनकी पृष्ठभूमि में संक्रमणशील सामाजिक स्थितियों का सन्निवेश ही आधुनिक कविता में हुआ है, उसे दिशा देने में पर्याप्त मात्रा में न सही, छायावादी कविता का भी योगदान रहा है।'' छायावाद काल में ही निराला ने ग़ज़लें लिखीं और उनके कवि–कर्म की आधारशिला उनकी यथार्थ–दृष्टि है। इस दृष्टि में 'भारतीय समाज की परिवर्तनशीलता लक्षित होती है।' उनकी ग़ज़लों में प्रगतिशीलता का आहट सुनी जा सकती है।

वशिष्ठ अनूप समकालीन कविता को मूल्यबोध और कालबोध दोनों अर्थों में ग्रहण करते हैं। इसीलिए वे लिखते हैं, 'आ पहुंचे हम ऐसे अजब जमाने में/फर्क हुआ मुश्किल गाने–चिल्लाने में/मुफलिस है कोई नेता या सन्त नहीं/डरता है वह झूठी कसमें खाने में/यह जो अब महिला समाज की मुखिया हैं/ये भी कल शामिल थीं बहू जलाने में/धन–औरत पर दृष्टि जमीं स्वामीजी की/लगे मगर सब कुछ मिथ्या बतलान में/भाषण रोटी–दाल नमक पर देते हैं/शाम को लेकिन दिखते हैं मयखाने में/राजनीति में कल का कहां ठिकाना है/जैसे–तैसे लगे माल हथियाने में/पढ़ी–लिखी वेश्या के नखड़े क्या कहने/छोड़ दिया सबको पीछे शरमाने में/हमदर्दी जतलाने वह पहले पहुंचा/सूत्रधार है जो हत्या करवाने में।' क्या यह हमारे समय का कड़वा यथार्थ नहीं है? गहरे यथार्थबोध का कवि ही इतने सरल शब्दों में इतनी महत्वपूर्ण बातें कह सकता है। ज्ञातव्य है कि दुष्यन्त कुमार ने लिखा था कि 'कैसे–कैसे मंजर सामने आने लगे हैं/गाते–गाते लोग चिल्लाने लगे हैं।' दुष्यन्त के लिए यह आश्चर्यजनक था। वशिष्ठ अनूप के लिए यह आश्चर्यजनक नहीं है, बल्कि इनकी समस्या यह है कि इन दोनों में फर्क कैसे किया जाए? समाज की मुखिया महिला जब बहू जलाने में शामिल हो, तब स्त्री–विमर्श पर बात कैसे हो सकती है? पढ़ी–लिखी वेश्या से वशिष्ठ अनूप का अभिप्राय वर्तमान राजनीति से है। राजनीतिज्ञों के कर्मों से जनता को शरमाना पड़ता है, लेकिन अब शरमाने वाले कितने बचे हैं? फिर शरमाने वालों की सुनता कौन है?

जैसे सम्प्रेषणीयता और दुर्बोधता का प्रश्न कविता के समक्ष है, वैसे ही ग़ज़ल ही ग़ज़ल के समक्ष भी है। दुष्यन्त ने बोलचाल की भाषा में लोगों से संवाद बनाने के लिए ही ग़ज़ल के क्षेत्र में प्रवेश किया। वस्तुतः जो वे कहना चाहते थे, ग़ज़ल के अतिरिक्त किसी अन्य काव्य–विधा में कह पाना कठिन था। विशिष्ट काव्य–शिल्प के अकेले कवि मुक्तिबोध भी सम्प्रेषण के प्रश्न से टकराते हैं। उन्होंने लिखा है कि ''जो कविताएं दुर्बोध हो जाती हैं, उन कविताओं में मन रस–मग्नता के साथ ही साथ पर्यालोचन पूर्ण तटस्थता का निर्वाह नहीं कर पाता। तटस्थता के पूर्ण निर्वाह के अभाव का प्रमुख कारण यह है कि वह अपनी वेदनाओं को जीवन–मूल्यों और जीवन–दृष्टियों के सन्दर्भ में नहीं देख रहा है। वह अभी भी व्यक्तिबद्ध है, आत्मग्रस्त है। वे दृष्टियां, वे मूल्य उसके सम्बन्धित तत्वों का अंग नहीं बनी हैं। उनका समाजीकरण नहीं हुआ है। फलतः कवि अपने आत्मलीन भाव को तो देख पाता है, किन्तु उनको पूर्वगत अनुभवों से प्रकाशित और जीवन–मूल्यों से समन्वित करने वाली जीवन–दृष्टि से एकात्म नहीं कर पा रहा है।'' मुक्तिबोध का यह कथन वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों के सन्दर्भ में इसलिए महत्वपूर्ण है कि वे लोकप्रियता के दबाव में भावों का सरलीकरण नहीं करते और न आत्मग्रस्तता के शिकार होते हैं। उनके जीवन–मूल्य वेदना, करुणा और विद्रोह से जुड़े हुए हैं। वशिष्ठ अनूप उर्दू ग़ज़ल की परम्परा की समझ रखने के बावजूद हिन्दी के ग़ज़लकार हैं। 'घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं' शीर्षक से ही स्पष्ट होता है कि वशिष्ठ अनूप अपने समय की वास्तविकता को किस अर्थ में पहचानते और ग्रहण करते हैं। साथ ही वे हिन्दी ग़ज़ल में आरोपित 'तीन मिथ' को खारिज करते हैं। पहला यह कि ग़ज़ल में 'भावान्मेष' की उतनी क्षमता नहीं होती, जितनी कविता में होती है। दूसरा यह कि एक खास किस्म के पाठक–आलोचक ही ग़ज़ल के प्रति आकर्षण रखते हैं। तीसरा यह कि विचारधारा के संग्रथन के लिए ग़ज़ल तंग विधा है। वशिष्ठ ने अपनी ग़ज़लों में जिस तरह बौद्धिकता, सर्जनात्मकता और प्रतिबद्धता का अन्तर्ग्रथन किया है, वह उन्हें संभावनाशील कवि की परिधि से निकालकर परिपक्व कवि की जमीन पर खड़ा करता है। उनकी प्रारम्भिक कुछ ग़ज़लों पर नक्सलवादी आन्दोलन का सीधा प्रभाव दृष्टिगत होता हे, किन्तु बाद की ग़ज़लों में वह प्रभाव रचनात्मक

क्रियाशीलता में पर्यवसित हो जाता है। जब वे कहते हैं कि 'अंधेरों में मशालों की तरह ही शब्द जलते हैं/कहीं भी जुल्म हो, उसका मुखर प्रतिवाद है कविता/मशीनी दौर ने बाजार में चाहा मिटाना पर/ दिलो में हर किसी के आज भी है कविता/मुनादी थी हुई अब अन्त कविता–गीत का होगा/मगर लय–छन्द से भरपूर जिन्दाबाद है कविता,' तब वे कई–कई सन्दर्भों को एक साथ समेट लेते हैं।

उल्लेखनीय है कि आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा था कि ''सभ्यता के विकास के साथ कवि कर्म कठिन होता जाएगा', और कवि शलभ श्रीराम सिंह ने कहा था कि 'चुनौतियों का मोरचा जितना कठिन होगा, सृजन के अवसर उतने ही अधिक होंगे।' जाहिर है कि वशिष्ठ अनूप यहां आलोचक के साथ नहीं है, कवि के साथ हैं। शलभ ने यह भी कहा था कि 'शब्दों से बचे हैं देश/शब्दों से बची हैं सभ्यताएं', मगर किन शब्दों से? इसका उत्तर देते हुए वशिष्ठ अनूप कहते हैं कि 'सागर के भीतर ज्यों शोला रहता है/मुझमें कोई बागी बैठा रहता है/संकल्पों में सृष्टि समाहित होती है/बूंद के भीतर जैसे दरिया रहता है/इसीलिए मैं हरदम ताजा दिखता हूं/मेरे मन में कोई बच्चा रहता है।' कहने की आवश्यकता नहीं बच्चा यहां भविष्य का संकेत है। जिस रचनाकार में भविष्योन्मुखी चैतन्यता जितनी गहरी और सघन होती है, वह विषमतापूर्ण व्यवस्था से बगावत के लिए उतना ही तैयार रहता है। लगता है कि वशिष्ठ अनूप त्रिलोचन से अपनी ग़ज़लों का सम्बन्ध बड़ी बारीकी से बनाते हैं। त्रिलोचन ने लिखा है, 'क्रान्ति उन्हीं लोगों के पास पला करती है/दुःख के गम में जीवन–ज्योति जला करती है।' वशिष्ठ अनूप के भीतर जो बागी बैठा है, उसका सम्बन्ध इस शेर से सामान्यतः जुड़ जाता है। विश्वम्भर 'मानव' ने लिखा है कि ''त्रिलोचन शास्त्री विचारधाराओं में जीवन की तलाश नहीं करते, बल्कि आम आदमी के बीच रहकर उनसे संवाद करते हुए उनकी समस्याओं, कठिनाइयों और संघर्षों को समीप से जांचते–परखते हुए यथासम्भव उनसे साझीदारी करते हुए जीवन का साक्षात्कार करते हैं। त्रिलोचन ध्वनिग्राहक कवि हैं। समाज में उठने वाली सूक्ष्म ध्वनियों को अपनी सूक्ष्मग्राही चेतना से वे ग्रहण कर लेते हैं। यदि कोठरी में अंधेरा है तो यह कैसे कहा जा सकता है कि वहां प्रकाश है। समाज की लड़ाई को नयी आशाओं और अभिलाषाओं को नये चित्रों और नयी भाषा में संजोने का संकल्प लेकर त्रिलोचन हमारे सामने आते हैं।'' इस कथन के आलोक में वशिष्ठ अनूप की एक ग़ज़ल को देखा जा सकता है, 'फजा में हर तरफ ही दर्द का इजहार लगता है/समूचा देश ही धृतराष्ट का दरबार लगता है/दिनोंदिन रावण की शक्ल कद्दावर हुई जाती/हमारे दौर का राघव बड़ा लाचार लगता है/बिना मतलब किसी को देख मुस्काता नहीं है वह/नयी तहजीब का बच्चा भी दुनियादार लगता है/हमारे घर की खुशियां कौन गुपचुप छीन लेता है/हर एक चेहरा गए दिन का कोई अखबार लगता है/बदलते जा रहे त्योहार भी व्यापार में अब तो/ जिधर भी देखिए अब हर तरफ बाजार लगता है।' बाजार का दायरा बढ़ता जा रहा है। वह हमारे घर पर लगभग कब्जा कर चुका है।

धृतराष्ट्र का 'मिथ' बहुत बड़ी बात कह जाता है। जिस दर्द और पीड़ा की बात त्रिलोचन करते हैं, वशिष्ठ अनूप के शेरों में वह दर्द और वेदना का पारावार लहराता है। वशिष्ठ अपने लोक से जुड़कर जब ग़ज़ल में बात करते हैं तो व्यंजना का अलग ठाट उभर आता है :

लोकगीतों की रवानी की तरह लगता है।
उसका लहजा मुझे पानी की तरह लगता है।।
कोई बच्चा उछाह भर के खिलखिलाता जब।
मुझको सचमुच किसी दानी की तरह लगता है।।
बिखरा–बिखरा यहां–वहां ये बरसता बादल।
किसी गरीब की छानी की तरह लगता है।।
अनेक झुग्गियों के बीच जगमगाता महल।
किसी बेवा की जवानी की तरह लगता है।।
तुझको पढ़ता हूं बार–बार, तुम्हारा चेहरा।
खूबसूरत सी कहानी की तरह लगता है'।।

अक्सर ग़ज़ल पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसमें कृत्रिम संवेदना की अभिव्यक्ति अधिक

होती है। प्यार जीवन का प्रमुख हिस्सा है। प्यार के बिना सृष्टि ही संभव नहीं है। सृष्टि की अन्यतम उपलब्धि प्रेम और करुणा है–इसे वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में यत्र–तत्र देखा जा सकता है।

प्रसंगात् उल्लेख कर देना आवश्यक है कि उर्दू ग़ज़ल और हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा की चर्चा भी बार–बार की जाती है, जबकि यह सन्दर्भ कहीं से भी अपना औचित्य साबित नहीं करता है। केदारनाथ सिंह ने लिखा है कि ''उर्दू साहित्य में ग़ज़ल की एक लम्बी परम्परा रही है और एक विस्मयजनक बात यह है कि आधुनिक युग में पूरे विश्व की कविता में होने वाले अत्यन्त क्षिप्र और अन्धाधुन्ध परिवर्तनों के बावजूद उर्दू कविता आज भी ग़ज़ल के रूप और मिजाज के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। इसके पीछे शायद ग़ज़ल का रूपगत लचीलापन सबसे बड़ा कारण है। ध्यान से देखें तो यह रूपगत लचीलापन भी केवल रूप तक ही सीमित नहीं दिखायी पड़ेगा। ग़ज़ल में ऊपर–ऊपर दिखायी पड़ने वाले कठोर अनुशासन के बावजूद एक विलक्षण आन्तरिक स्वतंत्रता होती है, जो विश्व की किसी अन्य गीत–विधा के अन्दर शायद ही मिले। इसी के चलते ग़ज़ल अपनी परिधि में प्रेम और राजनीति के दो विपरीत ध्रुवान्तों को बड़ी आसानी से एक ही समय और बिन्दु पर समेट लेती है।'' केदारनाथ सिंह छन्दमुक्त कविता के शीर्ष कवि हैं और महत्वपूर्ण आलोचक भी। ग़ज़ल की परम्परा और उसके लचीलेपन के सन्दर्भ में उनका कथन अत्यन्त सारगर्भित और महत्वपूर्ण है। इस कथन के आलोक में भी वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों को परखा जा सकता है।

वशिष्ठ अनूप देख रहे हैं कि लोकतांत्रिक संस्थाओं के विनाश, फासीवादी क्रूरताओं और धर्म की विकृतियों में फैलाव साथ–साथ होता जा रहा है। उनके पहले के श्रेष्ठ ग़ज़लकारों को इस तरह की जटिल और अदृश्य स्थितियों का सामना नहीं करना पड़ा था। पूंजीवादी भ्रष्टता का यह रूप भी पहले की अपेक्षा ज्यादा भयावह है। इसलिए वे कहते हैं :

अजब सी सनसनी है आसमां में
घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं
अचम्भित कर रहे हैं ये नजारे
बया को बाज दुलराने लगे हैं
निकल आए हैं सब विषधर बिलों से
फनों को खोल लहराने लगे हैं
वनों में अब न आदमखोर दिखते
सभाओं में वे गुर्राने लगे हैं।'

'घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं' का भाष्य करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु बया को बाज का दुलराना, विषधरों का फन लहराना और आदमखोरों का सभाओं में गुर्राना नयी अर्थ–भूमि से हमारा परिचय कराता है। वशिष्ठ अनूप राजनीतिक क्षरण से आहत भी हैं और चौकन्ने भी हैं :

फिर सियासत जंगलों की ओर बढ़ती जा रही है
एक नागिन दिल पे सबके बैठ कर लहरा रही है
कुछ पलों के बाद क्या होगा सिहरता सोचकर मैं
एक हिरन के मेमने को शेरनी दुलरा रही है
इस हुकूमत की जुबां पर हो भला क्यों कर यकीन
बात तो की थी गुलों की गोलियां बरसा रही है
क्या हुआ कि चांदनी में जिस्म अब जलने लगे हैं
यह अजब बारिश हमें तेजाब से नहला रही है
तीन चौथाई बदन है खोल रखा शौकिया ही
देखिए लोगों के आगे किस तरह शरमा रही है

यह भाषा और भंगिमा दोनों ही दृष्टियों से खाटी हिन्दी ग़ज़ल है। गौर से देखने पर इसमें कबीर की शैली की प्रतिछाया दिखायी देती है। यहां फैन्टेसी भी है, उलटबासी भी है, विशेषण–विपर्यय भी है और

वास्तव की अभिव्यक्ति भी है। अलग–अलग शेरों के बीच एक संहति और अन्यति का संयोग और निर्वाह वशिष्ठ की ग़ज़लों की निजी विशेषता है। इस ग़ज़ल को पढ़ते हुए यह प्रश्न अपने–आप हल हो जाता है कि क्यों वशिष्ठ अनूप बार–बार कबीर को याद करते हैं।

स्त्री–विमर्श और दलित विमर्श के साथ आदिवासी–विमर्श वशिष्ठ की पैनी नजर से ओझल नहीं है। अपने समय की वास्तविकता को पकड़ने का कौशल उन्होंने स्वयं अर्जित किया है और इस प्रक्रिया में वे इन्सानियत के खतरे को साफ–साफ देख रहे हैं :

फूल की खुशबू हवा की ताजगी खतरे में है
लोकगीतों की खनकती रागिनी खतरे में है
सभ्यता इस दौर की है, निर्वसन होने लगी
आदमीयत गुम हुई है आदमी खतरे में है
पानी–पानी को तरसती सोच में डूबी नदी
हो रही हर रोज दूषित जिन्दगी खतरे में है
पत्थरों के जंगलों में पल रहे विषधर तमाम
प्यार में डूबी हुई निश्चल हंसी खतरे में है
लोग अब करने लगे हैं यूं अंधेरे को नमन
चांदनी सहमी हुई है, रोशनी खतरे में है
दिन ब दिन रंगीन होता जा रहा संसार यूं
इन दिनों सदियों सराही सादगी खतरे में है।'

प्रश्न यह है कि इन खतरों का सामना कैसे किया जाय! वैचारिक जमीन से लेकर क्रियाशीलता की धरती पर समान सोच वाले लोगों को लेकर ही इस खतरे का मुकाबला किया जा सकता है।

समस्या यह है कि ग़ज़ल के आलोचकों ने अपने अन्तर्विरोधों पर ही बार–बार 'फोकस' करने की कोशिश की है–जाने–अनजाने। डॉ. शिवशंकर मिश्र ने लिखा है कि ''जिन्दगी, समाज और वक्त की परिस्थितियां आदमी के दुःखों की जितनी गहरी पकड़ और जितनी गहरी ग़ज़ल बना पाएगी, उतनी ही वह दीर्घजीवी होगी और इस स्तर पर आकर ग़ज़ल न तो विभिन्न भाषिक–छान्दसिक प्रयोगों में नयी होती है, न वक्ती जुमलों और नारों की कसाई–भराई से ही। ग़ज़ल न तो रोमान की कविता है, न अध्यात्म, वह जीवन की कविता है, जिसे हम सचमुच जीते हैं और जिसे हमारे बाद भी लोग जिएंगे। ग़ज़ल का असली संघर्ष स्वयं अपने आप से होता है। जब वे स्वयं को ही लांघकर आगे का कदम लेती है। रूप–शिल्प और भाव–विचार दोनों का सम्यक् सन्तुलन ही किसी ग़ज़ल को सर्वश्रेष्ठ बनाता है।'' कविता का मूल तत्व संवेदना है। भाव–विचार और इन्द्रियबोध संवेदना में समाहित होते हैं और संवेदना को गाढ़ा भी बनाते हैं। सामाजिक प्रासंगिकता हमारे समय की ग़ज़ल की सबसे बड़ी विशेषता है। यह संवेदना ही है, जो वशिष्ठ अनूप को यह लिखने के लिए विवश करती है :

चांद–सा यह रूप सलोना है / दमका–दमका–सा जैसे सोना है
जब से देखा है खुद को भूल गया / तेरी आंखों में जादू–टोना है
जानता हूं ये राह है मुश्किल / तुमको पाना है खुद को खोना है
प्यार लम्हों का दर्द जन्मों का / आओ हंस लें फिर तो रोना है
प्यार की उम्र ओस के मोती / टूट जाना है, फिर पिरोना है।

इन शेरों का लहजा सुफियाना है। तीसरे शेर में दर्शन की झलक भी है और चौथे शेर में वशिष्ठ अनूप ने 'विरह प्रेम की कसौटी है' के कथन में अपने स्वर को शामिल कर ग़ज़ल में एक शाश्वत मूल्यवत्ता को समाहित किया है। वशिष्ठ की ग़ज़लें जीवनबोध, जीवनद्रव्य, जीवनलय, प्रेम–सौन्दर्य और गहरे समयबोध के कारण हमारे समय को सही अर्थों में व्यक्त करती हैं।

ग़ज़ल के साथ एक समस्या उसकी संरचना को लेकर अभी भी बनी हुई है और यह समस्या ग़ज़ल

के आलोचकों द्वारा और भी घनी की जा रही है। डॉ. शिवशंकर मिश्र ने लिखा है कि ''ग़ज़ल की संरचना–कला एकदम अनूठी और कविता की अन्य सभी विधाओं से एकदम अलग है। ग़ज़ल में शब्द अपनी एकान्तिकता का विस्तार नहीं करते, बल्कि दूसरे शब्दों से जुड़ाव में ही अर्थ ग्रहण करते हैं। इसीलिए शब्द–प्रयोग की एकान्तिक और अन्तर्मुख सूक्ष्मता की बजाय शब्द–प्रयोग की सम्मिलित एकतान्नता बाह्य प्रक्षेप का महत्व यहां अधिक है। ग़ज़ल अपने में उतरने की कला नहीं, दूसरों में उतरने की कला है। इसीलिए उसमें समय और समाज के तत्व–द्रव्यों, अनुभव–उपजीव्यों के प्रति भी दृष्टिकोण का एक खास लचीलापन होता है। ग़ज़ल की रचना अमूमन एक दोहरी प्रक्रिया में पूरी होती है–अपने भीतर उतरना और सीढ़ियां बदलकर फिर ऊपर आना। सीढ़ियों के इसी परिवर्तन में संघटित होती है, उसकी लय, उसका संगीत, जैसे सन्नाटे की तह–दर–तह उतरकर लय के तारों से फिर वापस ऊपर आना। क्या कविता के लिए ये चीजें अनिवार्य नहीं हैं। यदि ग़ज़ल में 'मुहावरेदारी की स्फीति या चमक अथवा संकेतों में गहरी बेधकता होती है तो कविता की अन्य विधाओं में वह नहीं होती है। ग़ज़ल के संरचना–कला को जब विधा या माध्यम के स्तर पर देखेंगे, तब अनेक समस्याएं खड़ी होंगी। ग़ज़ल कविता का एक रूप है और अब वह हिन्दी कविता का एक रूप है, जो अपनी गत्वरता, लोकप्रियता और प्रभावशीलता के कारण अधिक धारदार बन गयी है। प्रेम हो या क्रान्ति, समझौता हो या बगावत–ग़ज़ल ने वस्तु और संरचना के एकात्म को एक नया आयाम दिया है। इस आयाम को समझे बिना हम अपने समय की ग़ज़ल की संरचना को व्याख्यित नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए वशिष्ठ अनूप की एक ग़ज़ल को देख सकते हैं :

कुछ सकुचाना कुछ घबराना अच्छा लगता है
तेरा हंसना फिर शरमाना अच्छा लगता है
शब्दों में सामर्थ्य कहां जो दिल की बात कहें
आंखों–आंखों में बतियाना अच्छा लगता है
मोटी–मोटी पोथी पढ़कर थक जाने के बाद
मन के पृष्ठों को दुहराना अच्छा लगता है
पकवानों की खुशबू में रंगों की मस्ती में
दुश्मन को भी गले लगाना अच्छा लगता है
फास्ट–फूड और चमक दमक वाले इस युग में भी
अम्मा के हाथों का खाना अच्छा लगता है
फूलों की घाटी में तितली के पीछे–पीछे
दूर देश तक उड़ते जाना अच्छा लगता है
अक्षत, चन्दन, मंत्र, पुष्प, नैवेद्य अग्नि, कुमकुम
ख्वाबों में भांवरे लगाना अच्छा लगता है।

यह पूरी ग़ज़ल संरचना के सवाल को किनारे लगा देती है और संवेदना को अत्यन्त सघन रूप में प्रस्तुत कर देती है। ध्यातव्य है कि इस ग़ज़ल के ठीक पहले वशिष्ठ अनूप ने लिखा है :

बिजलियों का जहां निशाना है/हां, वहीं मेरा आशियाना है
खूब पहचानता हूं मैं गम को/मेरे घर उसका आना–जाना है
आंधियां तेजतर हुई जातीं/द्वीप की लौ को टिमटिमाना है

वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों की अन्तर्वस्तु का आयाम व्यापक है और संरचना उनकी अपनी है। इसीलिए वे अपनी अन्तर्वस्तु को सहज और सघन रूप से व्यक्त करते हुए उसकी व्यंजनात्मकता में वृद्धि करने में सफल हुए हैं। ग़ज़ल को कविता से अलगाने की कोशिश, ग़ज़ल के हक में नहीं है।

इक नई वर्णमाला बनाने की जुगत में : वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें

डॉ. रामसुधार सिंह

वशिष्ठ अनूप की साफ–सुथरी, प्रभावशाली और सहज पठनीय ग़ज़लों से गुजरना ग़ज़ल की एक ऐसी दुनिया से साक्षात्कार करना है, जहाँ इस विधा का विस्तार अनन्त छोरों तक फैला हुआ है। ग़जल विधा के व्याकरण, उसकी बुनावट, व्यवस्था तथा काव्य–रचना में बहर और काफिये तक से अनजान मुझ जैसे सामान्य हिन्दी पाठक को वशिष्ठ अनूप जी की ग़जलों ने जिस गहराई से प्रभावित किया, वह सचमुच एक आश्चर्य है। ग़ज़ल की कोमलता और लयात्मकता को कायम रखते हुए शायर ने काव्य–रचना के वृहद् उद्देश्य को स्थापित किया है। अनूप जी की गज़लों की एक बड़ी खूबी मुझे यह लगी कि गज़लकार ने एक शेर की दोनों पंक्तियों में एक ही वजन के शब्दों का प्रयोग किया है और यह व्यवस्था ग़ज़ल के अन्तिम शेर तक बनी रहती है। यही कारण है कि ग़ज़ल शुरुवात से अन्त तक अपना प्रभाव कायम किये रखती है। गज़लकार ने फारसी और उर्दू के ग़ज़ल के ढांचे को बनाये रखते हुए भी हिन्दी में उसे एक नयी रवानगी से सजाया है।

वशिष्ठ अनूप के सन् 2000 से लेकर 2019 तक कुल आठ ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इन संग्रहों में प्रकाशन क्रम से ग़ज़ल की शिल्प–शैली का निरन्तर निखार होता गया है और आगे चलकर उसमें हिन्दी परम्परा, दुष्यन्त कुमार और उनके बाद के हिन्दी गज़लकारों की परम्परा, का प्रवाह स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है। अपने कवि–कर्म के प्रति कवि पूरी तरह सजग है। ग़ज़ल की इस विकास–यात्रा को शायर बखूबी समझता है। उसका मानना है कि जिस ग़ज़ल को राजमहलों में पाला गया था, जिसमें कल मद भरे नैनों से तीर चलते थे, जो तबले की थाप पर थिरकती थी, महफिलों में ठुमके लगाया करती थी, वह हमारी ग़ज़ल आज जुल्म के खिलाफ तनकर खड़ी है, मुक्ति की कटारी बन गई है और एक मजबूर के हाथों की धनुष बनकर अपने हक के खातिर तनी हुई मुठ्ठी बन गई है। (बंजारे नयन–1) शायर के लिए ग़ज़ल एक माँ की पुलक, एक कृषक की खुशी और खेत में लहलहाती फसल है। कविता जीवन से किस प्रकार जुड़े, इस प्रश्न का सीधा–सा हल यह ग़ज़ल है (रोशनी खतरे में है, पृ. 19)। इसीलिए कवि अपना रिश्ता तुलसी, मीर और कबीर सभी से जोड़ता है। क्योंकि उसकी कलम भी हमेशा अन्याय और जुल्म के खिलाफ खड़ी है और उसका लगाव पीड़ा के साथ है। (तेरी आँखें बहुत बोलती हैं)। लगभग अपने सभी संग्रहों में शायर ने ग़ज़ल के वर्तमान स्वरूप और गज़लकार के रूप में अपने कथ्य के उद्देश्य को स्पष्ट कर दिया है। वह साफ करता चलता है कि झनकार, रुनझुन मुझे भी लुभाती है, किन्तु अभी मेरी ग़ज़ल दहकता हुआ अंगार है–

मुक्ति का परचम लिए ललकार है मेरी गज़ल
हक की खातिर भर रही हुंकार है मेरी गज़ल
x x x
हाँ, खनक, झनकार, रुनझुन भी लुभाती है मुझे
पर अभी दहका हुआ अंगार है मेरी गज़ल।

वशिष्ठ अनूप की गज़लें विषयवस्तु की दृष्टि से अनेकमुखी हैं, किन्तु उनकी मुख्य धारायें दो हैं–पहली धारा प्रेम की और दूसरी धारा वर्तमान व्यवस्था, नैतिक पतन के प्रति आक्रोश की। इन्हीं दो धाराओं के साथ आपसी रिश्ते, पर्यावरण, गाँव और शहर, श्रम और ओज के दौर की तमाम विसंगतियाँ जुड़ती गई हैं।

प्रेम सृष्टि की सहज प्रवृत्ति है और ग़ज़ल तो अपनी परम्परा में प्रेमपरक रही भी है। वशिष्ठ अनूप की गज़लें इस दृष्टि से अपनी परम्परा की सहज खुशबू को धारण करने वाली गज़लें हैं। सभी संग्रहों में तमाम ऐसी गज़लें हैं जिनमें इश्क की गहराइयाँ और उसकी रस–गंध की ताजगी मौजूद है। समसामयिक

विसंगतियों के बीच प्रेम और सौन्दर्य की ये गज़लें नागार्जुन के शब्दों में कहा जाय तो 'बारूदी बदबू में ताजगी मलय गंध' की तरह हैं। यह शायर भी बारूद के विस्तर पर प्रेम की टेर लगाता है। इन गज़लों का एक प्रमुख स्वर प्रेम तथा सौन्दर्य है। यह सौन्दर्य इश्क मज़ाजी में डूबा सौन्दर्य है। शायर को प्रियतमा की आँखें कमल के फूल सी मालूम होती हैं, उसकी चितवन भोली है, अदाएँ भी भोली हैं, फिर भी ये आँखें शरारत करती हैं (बंजारे नयन)। वह प्रिय को ख्वाबों में देखना चाहता है। कवि का यह प्रेम मर्यादा की सीमा में बँधा हुआ है। प्रिय के होने से घर की सुन्दरता बढ़ जाती है–

खुशबू का बन्धन फूलों का पहरा लगता है।
तुम रहती हो तब यह घर भी अच्छा लगता है।....
बिखरी बिखरी हैं सब चीजें हर सूँ यहाँ–वहाँ
बिन घरनी यह घर भूतों का डेरा लगता है। – (रोशनी खतरे में है)

यह प्रेम कहीं अशरीरी होकर विस्तार पाता है तो कहीं नितांत दैहिक होने को मजबूर है। प्रिय का सौन्दर्य सहज ही आकर्षित करता है। उसकी हँसी फूल–सी है और बदन मरमरी है। वह किसी जादूगर की जादूगरी लगती है। यह आकर्षण आवारगी तक पहुँच जाता है। प्रिय को देखे बिना चैन आता नहीं है और उसके सामने होने पर आँखें चुराना पड़ता है। उसके होने भर से हवा में एक अजीब–सी खुशबू भरी होती है, फिजाँ में एक अजब नशा घुला होता है। यह प्रेम कहीं दैवीय प्रेम में बदल जाता है और प्रिय शिव, राम, कृष्ण, खुदा और रसूल लगने लगता है–

इक दूसरे से जुदा हैं हम यह सोचना बड़ी भूल है;
मैं जिस चमन की सुगंध हूँ उसी बाग का तू भी फूल है।
मेरी जिन्दगी मेरी जानें जाँ तुझे देखकर ये लगा मुझे;
तू ही शिव है राम है कृष्ण है तू खुदा है तू ही रसूल है। – (रोशनी की कोपलें)

वशिष्ठ अनूप की गज़लों में मानवीयता की गहरी तलाश है। बाइबिल में कहा गया है कि स्वर्ग का राज्य उनके लिए है जो बच्चों की तरह हो जाते हैं। बच्चे की तरह हो जाने का अर्थ है छल–कपट से दूर सहज मनुष्य होना। कवि को बचपन का यह सहज सौन्दर्य सदैव लुभाता है। नींद में मुस्कराता बच्चा अपने होठों से अमृत की खुशियाँ छलकाता है, उसके तुतलाने में जीवन का अद्‌भुत संगीत बरसता है, माँ की ममता का वह एकछत्र राजा है और कमाल यह है कि 'सारे घर का वह एक खिलौना पर, स्वयं खिलौने के खातिर ललचाता है (रोशनी खतरे में है)। कवि को माँ का आँचल, बहन की गोद, भाई का कंधा, अम्मा की ममता, बाबा के किस्से, पिता का प्यार अर्थात् बचपन के वे कुछ पूरे और कुछ आधे दिन बहुत याद आते हैं। इसी के साथ उसकी स्मृतियों में मिट्‌टी के खेल–खिलौने, महुए के दोनों में बकरी के दूध, पकते गुड़ की खुशबू सबकुछ आज भी बसे हुए हैं (रोशनी की कोपलें)। कवि आज भी उस बचपन को बचाये रखना चाहता है। वह मानता है कि 'इसीलिए मैं हरदम ताजा दिखता हूँ, मेरे मन में कोई बच्चा रहता है (घरों पर गिद्ध मड़राने लगे हैं)। लेकिन आज बच्चों के जीवन से बचपन न जाने कहाँ चला गया है? आज बच्चे भी बच्चों जैसी बात नहीं करते हैं (रोशनी की कोपलें) शायर का संवेदनशील मन तड़प उठता है, जब यह बचपन होटलों के प्लेट में अपनी तकदीर खोजता दिखाई देता है–

होटलों की प्लेट में तकदीर अपनी खोजता,
बेवजह पिटता हुआ मनहूस–सा बचपन मिला। (बंजारे नयन)

शायर सभी मानवीय रिश्तों को बचाये रखने का पक्षधर है। वह देखता है कि विकास की इस दौड़ में मानवीय रिश्ते दरकते जा रहे हैं। उसे महसूस होता है कि आजकल सभी सम्बन्ध मतलब के होने के कारण आर्टीफिसियल हो गये हैं। प्लास्टिक के रिश्ते टिक कैसे सकते हैं? (बारूद के बिस्तर पर), किन्तु कवि को ऐसे रिश्तों पर भरोसा है जो हमेशा तरोताजा बने रहते हैं। वर्षों–महीनों बाद भी वे पुराने नहीं जान पड़ते हैं। माँ–बाप का बच्चों के साथ ऐसा ही रिश्ता होता है जिनके लिए उनके बच्चे कभी सयाने ही नहीं होते हैं। (तेरी आँखें बहुत बोलती हैं)।

वशिष्ठ अनूप की गज़लों में प्रेम एवं मानवीय सहानुभूतियों के चित्रण के साथ आधुनिक समय की मानवीय संवेदनाओं का रूपांतरण भी पर्याप्त है। ये गज़लें समकालीन समस्याओं की काव्यबद्ध अभिव्यक्ति हैं। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। ये गज़लें उन्हीं विसंगतियों को सामने लाने का प्रयास है। प्रकृति ने अपने उपादानों में इस दुनिया को इतना सुन्दर बनाया है और हम इसका शोषण कर इसे विद्रूप बना रहे हैं। पर्यावरण प्रदूषण से होने वाले खतरों से कवि सभी को आगाह करना चाहता है। वह कहता है कि अगर हम नदी के पानी को विषैला करेंगे तो एक–एक बूंद पानी के लिए तरस जायेंगे, अगर पहाड़ों के दिलों में ऐसे ही घाव होते रहे तो एक दिन क्रुद्ध होकर ये हम पर कहर ढायेंगे, वनस्पतियाँ हमारी धरती माता की सहेली हैं, अगर इन्हें नष्ट किया गया तो हम माँ के हत्यारे कहलायेंगे; अगर हवा में इसी तरह जहर घुलता रहा तो हम एक दिन हम साँस लेने के लिए छटपटायेंगे। (रोशनी खतरे में है)। कवि की यह चिन्ता प्रायः सभी संग्रहों में देखी जा सकती है। अगर जंगल इसी तरह नष्ट होते गये तो किसी न किसी दिन जंगल हमसे सवाल पूछेगा और हमें उसका उत्तर देना होगा। आज घास–फूल–फल सब बारूद बन गये हैं। यह कैसी आग है जिससे जंगल में उबाल आ गया है? समय रहते हमें चेत जाना है, अन्यथा जंगल हमसे अवश्य बदला लेगा–

क्यों उठ रही है लपटें, क्यों हुआ है लाल जंगल;
देना पड़ेगा उत्तर, करता सवाल जंगल।....
बेहतर है वक़्त रहते चलकर उसे मना लो
वरना करोगे क्या जब ठोंकेगा ताल जंगल?

आज भौतिकवादी सभ्यता, औद्योगीकरण और बढ़ते प्रदूषण के कारण आदमी की ज़िन्दगी खतरे में हो गई है। फूलों की खुशबू और हवा की ताजगी सबकुछ खतरे में पड़ गई हे। कवि सवाल उठता है कि यह प्रगति का रथ किस ओर जा रहा है? जिससे सारे देश में अँधियारा फैल रहा है। पढ़ने–लिखने के बाद भी हम सभ्य नहीं बन सके हैं। कवि की चिन्ता यही है कि–

हरेक ग्रह नक्षत्र क़हकशाँ सुरक्षित है
जमीं बचेगी तभी आसमाँ सुरक्षित है
चलो कि दूब, घास तितलियाँ बचा लें हम
शज़र बचेंगे तभी गुलसिताँ सुरक्षित है

वशिष्ठ अनूप की गज़लें अपने समय और परिवेश को चित्रित करने में पूर्णतः सक्षम हैं। शायर की संवेदना पूरी तरह श्रमिक के पक्ष में है। वह मानता है कि यह धरती न तो कछुए की पीठ पर टिकी है और न ही शेष के फन पर टिकी है, बल्कि यह श्रमिक के हाथ और गर्दन पर टिकी हुई है। जो कोठियाँ ब्याह के दुल्हन की तरह सजी दिख रही हैं, इनकी चमक गरीब के आँगन पर टिकी हुई हैं। इन श्रमिकों पर हमेशा जुल्म होता रहा है। यह शोषण केवल बात करने से खत्म नहीं होगा। इसलिए कवि क्रान्ति का आह्वान करता है। इस तरह की पंक्तियाँ जनगीत की तरह प्रेरक बन गई हैं–

जुल्म की पत्तियों की चर्चा है
और गहराती सूल है साथी
उसकी कालर पकड़ सको तो चलो
बात करना फिजूल है साथी। (बंजारे नयन)

शायर का मानना है कि देश की वर्तमान स्थिति के लिए सबसे बड़े दोषी ये राजनीतिज्ञ हैं। राजनीति में अपराधियों का प्रवेश हो चुका है। जो मुजरिम हैं वही सब पहरेदार बन गये हैं। संसद में बैठने वाले देश के गद्दार हैं। देश की छाती पर कुछ परिवार अजगर की तरह फेंटा मार कर बैठे हुए हैं। ऐसे मक्कार लोग पैसे और बन्दूक के बल पर कुर्सियों पर कब्जा किये हुए हैं (रोशनी की कोपलें)। गाँव से लेकर दिल्ली तक दुःशासनों का तार फैला हुआ है और हर बेटी लाचार है। सफेद खादी और खाकी में भेड़िये छिपे हुए हैं। देश में गरीबी और अमीरी की खाई इतनी बढ़ गई है कि एक तरफ बच्चे रोटी के लिए मचल

रहे हैं और दूसरी तरफ मक्खन–मलाई–दूध औ मनुहार है। शायर ऐसी व्यवस्था को नीरो का राज कहता है और संदेश देता है कि भूख से लड़ती जनता को अधिकार है कि इस नीरो राज के तख्त को पलट दे–

धवल खादी और खाकी में छिपे हैं भेड़िए
दरअसल जो है लुटेरा वो ही पहरेदार है....
बढ़ के अब तख़्ता पलट दे ऐसे नीरो राज का
भूख से लड़ती हुई जनता को यह अधिकार है। – (तेरी आँखें बहुत बोलती हैं)

देश की बदहाल स्थिति का कारण कवि राजनेता, पुलिस और गुण्डों के बीच सांठगाँठ को मानता है। यह देखकर वह हैरान है कि पुलिस का महकमा गुण्डों की निगरानी में काम कर रहा है। कोई भी माफिया जब खद्दर पहनकर आ जाता है तो हुकूमत का अलम्बरदार उसकी अगवानी में जुट जाता है। इन तीनों के गठजोड़ से देश की लूट हो रही है। बड़ी–बड़ी अट्टालिकाएँ रोज बनती जा रही हैं। फिर भी उसे बनाने वाला फुटपाथ पर ही रहता है। (बारूद के बिस्तर पर) शायर के जेहन में एक प्रश्न बार–बार कौंधता है कि हम कातिलों को देखभाल पर कब तक जियेंगे। डाल पर बैठे हुए परिन्दों के हाथों में हड्डियाँ हैं और उनके मुँह में लहू लगा हुआ है। (बंजारे नयन)। आज चारो ओर फैली बेहाली और नैतिक गिरावट पर शायर की चिन्ता जायज है। उसे लगता है कि जिस देश की राजधानी महफूज नहीं है, वह देश कैसे सुरक्षित रह सकेगा। वह महाभारतकालीन पात्रों–द्रौपदी, सुयोधन, दुशासन और रावण का उल्लेख करता हुआ आज की भयावह स्थिति को और स्पष्ट करता है। उसका कहना है कि आज चारो ओर द्रौपदी के क्रन्दन भरे हुए हैं, किन्तु हस्तिनापुर चुप है, इस सदी के मानव के आचरण पर सुयोधन गमगीन है और रावण पानी–पानी हो रहा है, शहर में दुशासन ताण्डव मचा रहा है फिर भी इस देश की जवानी क्यों नहीं जाग रही है? यह सब देख–सुनकर शायर की ग़ज़ल शोलों में बदल जाती है–

हर घर सुलग रहा है, हर जन उबल रहा है
भँड़वे सुना रहे हैं, संसद में लंतरानी
ये ग़ज़ल गज़ाल चश्मों (मृगनैनियों) से गुफ्तगू नहीं है
यह है मेरे अहद (युग) के ज़ख्मों की तर्जुमानीं। – (तेरी आँखें बहुत बोलती हैं)

वशिष्ठ अनूप के ग़ज़ल संग्रहों के नाम अपने कथ्य को अच्छी तरह से स्पष्ट करने में सक्षम है जैसे 'बंजारे नयन' और 'तेरी आँखें बहुत बोलती हैं' शीर्षक से भ्रम हो सकता है कि इनमें प्रेम प्रधान गज़लें होंगी; 'बारूद के बिस्तर पर' और 'घरों पर गिद्ध मड़राने लगे हैं' में क्रान्ति और विद्रोह की गज़लें होगी और 'रोशनी खतरे में है' तथा 'रोशनी की कोपलें' विसंगतियों के बीच एक बड़ी आशा के सन्देश से पूर्ण होंगी, किन्तु ये सभी संग्रह किसी एक सीमा में बंधे नहीं हैं। यह सच है कि प्रारम्भिक गज़लों में प्रेम की कशिश और प्रेम की फाँस अधिक है और बाद में सामाजिक, राजनैतिक यथार्थ की अभिव्यक्ति में शायर का मन अधिक रमा है। समग्रतः यह कहा जा सकता है कि वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें वर्तमान परिस्थितियों से बोलती–बतियाती गज़लें हैं, समसामयिकता के परिवेश में सोचती–समझती गज़लें हैं और वर्तमान विद्रूपताओं पर प्रहार करती हुई गज़लें हैं।

इन गज़लों की सबसे बड़ी विशेषता इनकी लयात्मकता और साफगोई है। हिन्दी के साथ उर्दू के बोलचाल के शब्द जैसे गूँथ दिये गये हैं। जो शब्द थोड़े कठिन हैं; नीचे उनका अर्थ कहीं–कहीं दिया गया है, जो मुझ जैसे सामान्य पाठक की मदद करते हैं। भाषा की रवानगी देखते बनती है। इन गज़लों में प्रतीक, मिथक तथा बिम्ब के टटके प्रयोग हैं। कहीं–कहीं उपमानों की झड़ी लगा दी गई है। यत्र–तत्र मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा का सौन्दर्य द्विगणित हो गया है।

★

समय का सच और डॉ. वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें

ओम प्रकाश मिश्र

हिन्दी ग़ज़ल के पाठकों, मंचों और पत्रिकाओं के लिए डॉ वशिष्ठ अनूप लम्बे समय से सुपरिचित नाम है। यद्यपि भारत में उर्दू की बल खाती, सुसज्जित, सुगन्धित गलियों में पली–बढ़ी और सलीक़े की मर्यादाओं में शबाब पर आई ग़ज़ल को हिन्दी कविता का आक्रोश–भरा, ऊबड़–खाबड़ लहज़ा बहुत दिनों तक नागवार लगता रहा, लेकिन दुष्यंत कुमार और फिर अदम गोंडवी ने इसे हिन्दी के खेत–खलिहानों के सौन्दर्य और नए लहज़े ऐसा से परिचित कराया कि यह हिन्दी में भी एक प्यारी, सुन्दर और सुपरिचित विधा बन गई। अब तो ग़ज़ल को उसके व्याकरण और सौंदर्यबोध के साथ आत्मसात करते हुए नए–पुराने हिन्दी–ग़ज़लकारों की भी एक बड़ी पीढ़ी हमारे पास है, जिसमें डॉ वशिष्ठ अनूप का अपना एक विशिष्ट स्थान है। गीतों के संसार से चल कर ग़ज़ल की दुनिया में आये इस शायर का लय और छन्दों पर पहले से ही स्वाभाविक अधिकार रहा है, इसलिये ग़ज़ल की बहरों को आत्मसात करने में इन्हें वक्त नहीं लगा। वे जनपक्ष के शायर हैं और उनका मुख्य स्वर हर तरह के शोषण से मनुष्य की मुक्ति–अभिलाषा का ही स्वर है। वे स्वयं को कवियों – शायरों की उस लम्बी परम्परा से जुड़ा हुआ महसूस करते हैं जो भक्तिकाल से लेकर अब तक सत्य के संधान तथा हर तरह के अन्याय–अत्याचार और शोषण के विरुद्ध मनुष्य की बुलंद होती आवाज़ का प्रतिनिधित्व करती रही है। उनकी शायरी बड़ी स्पष्टवादिता से कहती है कि वे जनविरोधी सत्ताओं के समक्ष समर्पण करके प्रभुता प्राप्त करने की इच्छा से भरे, दरबारी और चाटुकार साहित्य की रचना करनेवालों की पंक्ति में से नहीं हैं, अपितु कुंभनदास की तरह ही शाहों की सत्ता को ललकारती अपनी साधनहीन किंतु सत्यनिष्ठ दृढ़ता पर गर्व करने वालीपरम्परा के साथ खड़े हैं। –

हम सीकरी के आगे माथा नहीं झुकाते
कुंभन की फकीरी के अभिमान के वारिस हैं
हम शब्द–सारथी हैं हर वक़्त इक समर में
हम पाश व सफदर के अरमान के वारिस हैं

काव्य की अधिकतर विधाओं की ही तरह ग़ज़ल के भी संस्कार का लम्बा समय सामंती परिवेश में गुज़रा है, लेकिन यह अन्य संवेदनाओं की अपेक्षा मूलतः प्रेम की संवेदना से जुड़ी रही है। इसका स्वभाव शुरू से ही मनुष्य की प्रेम करने की प्रवृत्ति, उदात्तता व उदारता से भरा रहा है लेकिन रूढ़ियों के विरोध और आज़ाद–ख़याली की ध्वनि इसमें सूफीवाद के सम्पर्क में आकर अधिक पुष्पित–पल्लवित हुई। अंग्रेजी शासन के ज़रिये भारत में भी योरोप से पूंजीवाद और उसकी वैचारिकी के आगमन ने भारतीय संस्कृति और साहित्य को बड़े स्तर पर प्रभावित किया था। ग़ज़ल भी इस प्रभाव से अछूती नहीं रही। यहां तक कि गालिब को भी कहना पड़ा था– " क़ाबा मेरे पीछे है कलीसा मेरे आगे। " उत्पादन पद्धति और उत्पादन संबंधों में बदलाव के सूत्रपात ने अचानक व्यापार को खेती से अधिक महत्वपूर्ण बना कर अपनी सुविधानुसार दुनिया में एक नए किस्म का वैचारिक आलोड़न पैदा कर दिया था। आगे जाकर एक नई आर्थिक–सामाजिक पद्धति का विकास करना इसकी नियति थी। तदनुरूप कला–साहित्य को भी नए शिल्प और तेवर से अपने को मजबूत करने का वक्त आ रहा था। हलांकि आधुनिक हिंदी के शैशवकाल में ही ग़ज़ल की पग–ध्वनि रह–रह कर छिटपुट सुनाई देने लगी थी लेकिन हिन्दी–पाठकों का ध्यान लंबे समय तक उधर आकर्षित न हो पाया। वशिष्ठ अनूप ग़ज़लकारों के जिस काफिले के सहयात्री हैं वह दुश्यंत कुमार से चली हिंदी ग़ज़ल की वेगवती धारा है जो अब पाठक, श्रोता और प्रकाशन के लिहाज़ से हिंदी कविता की मुख्यधारा में शामिल होने के लिए प्रयासरत है। जटिल विचारों से बोझिल लम्बी काविताओं की अपेक्षा आमजन गीत और ग़ज़ल की गेयता और दो पंक्तियों के संवेदनात्मक कथन के सौंदर्य से अभिभूत करने की इसकी सामर्थ्य से अधिक जुड़ाव महसूस करने लगे हैं। हिंदी कविता की इस मजबूत धारा के

वरिष्ठ हिंदी ग़ज़लकारों में एक लोकप्रिय स्वर डॉ वशिष्ठ अनूप का भी है।

हिंदी जुबान से वाबस्ता होने के बाद से ही ग़ज़ल ने स्वाभाविक रूप से हिंदी कविता के भी तेवर अपनाने की कोशिश की है। नतीजतन हिंदी ज़मीन पर पहुंच कर ग़ज़ल में ऐसे मुसलसल अशआर भी आने लगे हैं जो अलग–अलग संवेदना मात्र की जगह अपने संकेतों से समाज में घटित होती किसी प्रक्रिया अथवा वैचारिकी का को अभिव्यक्ति देने की कोशिश करते हैं। ऐसे शेर आपस में इतने जुड़े होते हैं कि साथ–साथ ही अपनी बात पूरी कर पाते हैं। मैं अनूप जी को ही उद्धृत करता हूँ –

सुनहरे जाल रेशम कह के फैलाने लगे हैं अब
महाजन लोग जंगल की तरफ जाने लगे हैं अब
उजड़ कर जंगलों से, शान फुटपाथों की बन जाओ
कभी बातों कभी घातों से समझाने लगे हैं अब

यह एक प्रक्रिया है हमारे समाज में, जो आज़ादी के बाद लगातार तेज़ होती गयी है। जैसे–जैसे पूंजी पैर फैलाती है जंगल के दरख़्त कटते हैं और वहां के मूल निवासी विस्थापित होते हैं। विकास के सुनहरे आवरण में यह महाजनी पूंजी आदिवासियों को उनके जंगल–ज़मीन, जीविका और संस्कृति से बेदखल करती रही है जिसके कारण उनको बार–बार विद्रोह का झंडा उठाना पड़ा है। महाजनी पूंजी कभी कुछ रूपयों तो कभी लाठी–गोली और अपने एकांगी क़ानूनों के बल पर पर्यावरण को क्षति पहुंचाते हुए धरती को विनाश और वहां के आदिवासियों को ईंट–भट्ठों तथा नगरों–महानगरों के फुटपाथ की राह पर लगातार धकेलती ही रही है। इस ग़ज़ल के अशआर इस प्रक्रिया की आलोचना करते हुए हमें विस्थापन के दर्द से भी रूबरू कराते हैं।

शायरी की ही नहीं किसी भी विधा के साहित्य की लोकप्रियता में कथ्य के साथ उसकी भाषा और बिंबों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ग़ज़ल की इतनी शानदार परंपरा इतने लंबे अरसे तक भद्रलोक और दरबारों की सीमा तोड़ कर हिंदी भाषी आमजन के हृदय में वह स्थान नहीं बना सकी थी जो कबीर, खुसरो, रैदास, सूर, तुलसी, रहीम, जायसी नजीर और मीरा आदि की कविता की बनी। इसके पीछे लंबे अरसे तक इसका अधिकतर दरबार मुखापेक्षी और तदनुरूप फारसी से बोझिल बने रहना भी एक बड़ा कारण रहा है। अठारहवीं शताब्दी में वली दक्नी का काव्य उत्तर भारतीय आमजन को उपलब्ध हो सका तो यहां के लोगों को आम बोलचाल में शायरी उपलब्ध हो सकी। अंततः जंगे–आज़ादी के काल में ग़ज़ल आमजन की आशाओं–आकांक्षाओं से जुड़ कर हरदिल अजीज बनी तथा अब तो हिंदी में भी अभिव्यक्ति का एक मज़बूत माध्यम बन गयी है। डॉ वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों की भाषा मिलीजुली जुबान की सरल और मुहावरों भरी आमफ़हम भाषा है जो बोली के शब्दों का भी बड़ी आत्मीयता से प्रयोग करती है। अपनी इस ख़ूबी के कारण इनकी ग़ज़लें आसानी से जुबान पर चढ़ जाती हैं। भाषा और कथ्य की सरलता तथा लालित्य की बानगी देखें–

ज़माने से यूं भी निभाना पड़ा है
भरी आँख से मुस्कराना पड़ा है

हमारे दौर के जीवन के कितने ही आख्यान इस एक शेर में समाये हुए हैं। जीवन की अनुभूत सच्चाई जब कला की नाजुक हथेलियों के स्पर्श से जीवंत हो उठती है तभी शेर को ऐसी मार्मिक और सरल किन्तु बेधक अभिव्यक्ति मिलती है। शेर की कलात्मक और संवेदनात्मक ऊँचाई का इससे बड़ा और क्या प्रमाण होगा कि सुनते या पढ़ते ही लगे कि, अरे यही तो मैं भी कहना चाहता था। सबके दिल से निकली आवाज़ की बानगी बनते शेर के ऐसे उदाहरण अनूप जी के यहां बिखरे पड़े हैं–

कोई ख़्वाब टूटा है अक्सर झनक कर
कोई ख़्वाब फिर–फिर सजाना पड़ा है

बेआवाज़ सपनों के टूटने और नये सपनों का क्रम सबकी ज़िन्दगी में होता है लेकिन इस शेर में ख़्वाब के टूटने की खूबसूरती उसके झनक कर टूटने में है। यह बोली का शब्द है और आमतौर पर जब कोई काम इच्छा के विपरीत मजबूरी से पैदा आक्रोश के साथ किया जाता है तो झनक कर किया गया कहा

जाता है। बहुत तीव्र इच्छा से संजोया गया सपना जैसे अपनी ताबीर का इंतज़ार करते–करते मजबूर कर दिए जाने पर टूटा है और सपने के मन में भी एक आक्रोश उभर आया है –लो जाओ, तुम मेरी ताबीर नहीं कर सकते तो टूट ही जाता हूँ मैं। हमारे ख़्वाबों की दिन–ब–दिन बढ़ती जाती यह मज़बूरी कवि की चिंता का विषय होना उसकी सोद्देश्य शायरी का सबूत ही है। और भी देखें –

वे बच्चे बग़ावत करेंगे किसी दिन
जिन्हें भूख से बिलबिलाना पड़ा है
वही रोटियों का मरम जानता है
जिसे दाना–दाना जुटाना पड़ा है

नफ़ासत की निगाह से लफ़्ज़ों को मोती की तरह छांट कर इस्तेमाल करने वाली रवायती उर्दू ग़ज़ल में, बिलबिलाना जैसे शब्दों की ध्वन्यात्मक अनगढ़ता, भद्र–भाव से दूरी और लोकजीवन से इनके अधिक जुड़ाव के कारण ऐसे शब्दों से परहेज़ करने की परंपरा रही है। लेकिन इस शेर में अनूप जी ने इस शब्द का इतना सार्थक और सुंदर प्रयोग किया है कि वह भूख को बग़ावत तक पहुंचाने की तार्किक वजह बन गया है। इसी तरह रोटियों के साथ ' मरम ' का प्रयोग शेर की अर्थवत्ता भी बढ़ा रहा है और मूल्य के अर्थ में इसका अर्थविस्तार भी कर रहा है। ऐसे ही अशआर बहुतायत में अनूप जी की ग़ज़लों में भरे पड़े हैं जो एक तरफ जहाँ इनकी रचना प्रक्रिया के लोकजीवन से गहराई में जुड़े होने की तरफ इशारा करते हैं वहीं परंपरागत सामंती सौंदर्यबोध की जगह नई, सर्वहारा सौंदर्यबोध की दृष्टि से दुनिया को निहारते हैं। इस सिलसिले में कुछ और अशआर पर दृष्टिपात करना उचित होगा।

भूख डाइन सी झपट्टे मारती, गुर्रा रही है
एक औरत बुझ रही सी आग को सुलगा रही है

ग़ज़ल का यह खुरदुरा टेक्सचर और बिल्कुल निचली पायदान पर खड़े लोगों के जीवन में सहानुभूतिपूर्वक झांकने की यह कोशिश उसके एक नये दौर में प्रवेश करने का प्रमाण है। भाषा की गतिशीलता इस चित्र को भी ऐसी गति दे रही है जिससे वीडियो क्लिप देखने सा एहसास पैदा होता है। यहाँ जीवन का वह सौंदर्य है जो मौत की ताक़तों से गुत्थम–गुत्था है। इस शेर की भूख आम तौर पर शरीर को भोजन की आवश्यकता के समय अनुभव की जाने वाली साधारण भूख नहीं है। डाइन के झपट्टा मारने के बिम्ब से जुड़ कर यह भूख एक शोषक और उत्पीड़क व्यवस्था द्वारा अपनी स्वाभाविक क्रूरता के अनुसार जीवनदायी परिस्थितियों में पैदा किए गए अभावों और उनके बरअक्स बढ़ती तीव्र आवश्यकता की उस गंभीर चुनौती का भाषिक लिप्यांतरण बन जाती है जो इस नए आर्थिक–राजनैतिक व सामाजिक व्यवस्था का सबसे बड़ा कैंसर है। यह बड़े कलात्मक रूप से इस पूँजीवादी व्यवस्था की घोर निर्ममता और समस्त निर्बल–असहाय जन का भक्षण कर के ही शक्ति प्राप्त करने के उसके आंतरिक स्वभाव और इसके लिए निरंतर हमलावर उसके चरित्र का उद्‌घाटन करती है। लेकिन कवि के लिए इस शेर का प्रयोजन मात्र मानवता के समक्ष इस गंभीर चुनौती का उद्‌घाटन कर देना नहीं है। कवि जब जनता की सकारात्मक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करनेवाली अपनी युगीन चेतना का बारीक अन्वेषण करता है तो संघर्ष की नई प्रवृत्तियों पर उसकी निगाह ठहरती है और उसके आधार पर सानी मिसरे में अचानक वह बोल उठता है – ' एक औरत बुझ रही सी आग को सुलगा रही है ' ! इसमें यह ध्यान देने की बात है कि आग बुझ सी रही है और उसे एक औरत सुलगा रही है। शायर इस वैचारिकी पर जोर दे रहा है कि आज की परिस्थिति में जन–संघर्षों की नई मंज़िल प्राप्त करने के लिए स्त्री की भूमिका और नेतृत्वकारी पंक्ति में उसकी उपस्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्त्री की इस नई भूमिका को देखते हुए ही वह सौंदर्य के पुराने प्रतिमानों को बदलता हुआ शायर गोरे की जगह काले रंग और कोमल छुई–मुई की जगह मेहनती, बलशाली और प्रतिरोध करने में सक्षम स्त्री सौंदर्य का वर्णन करता है

हीरे जैसी चमक रही वह काली लड़की सुंदर है
इठलाती बलखाती वह मतवाली लड़की सुंदर है
नई उम्र है मगर इरादे फ़ौलादी लगते उसके
छुई–मुई–सी नहीं है यह बलशाली लड़की सुंदर है

सच्चे लोकतंत्र के लिए संघर्षरत जनसमुदाय सामंती सौंदर्यशास्त्र को बदल रहा है इसलिये उसके शायर की दृष्टि में आया यह बदलाव स्वागत योग्य है। संघर्ष की इस चेतना को यथास्थिति की पोषक हुकूमतें सदा ही कुंद करने की कोशिश में लगी रहती हैं। सत्य के प्रति प्रतिबद्ध शायर अपने समय की धड़कन पहचानता है और अपनी रचना में इसके स्वर दर्ज करता है। ग़ज़ल ने अपनी लंबी यात्रा में हमेशा नई ज़मीनें तोड़ी हैं। हिंदी में आ कर और जनता के संघर्षों से जुड़ कर ग़ज़ल ने सत्ता के चरित्र पर बारीक नज़र रखी है और क़लम के महत्व को सटीकता से समझा है। वशिष्ठ जी के अशआर में सत्ता के चरित्र और उसके पैंतरों की बारीकी झलकती है–

क़लम को थपथपाती है हुकूमत
कलम से थरथराती है हुकूमत
कलम की रीढ़ रह जाये न कायम
गले हँसकर लगाती है हुकूमत

ग़ज़ल की अपनी एक मनस्थिति होती है और उसे सरलता से बड़ी बात कह जाने की आदत भी है। मगर एक सामंती ठसक से भरी ग़ज़ल हर किसी को अपने मुंह नहीं लगाती।जिस क़लम में ग़ज़ल की मनस्थिति में उतरने और उसके तेवर का अनुवाद भाषा में कर पाने की जैसी सामर्थ्य होती है वैसा ही शेर सामने आता है। हिंदी से जुड़ कर ग़ज़ल में जनोन्मुखी होने की प्रक्रिया तेज हुई। वशिष्ठ अनूप के यह अशआर बताते हैं कि उनकी भाषा में अभिव्यक्ति की क्षमता लोक जीवन से आई है। जहाँ अपने लम्बे सतत प्रयोग के दौरान लोक ही शब्दों को मुहावरों की दक्षता प्रदान करता है वहीं लोकजीवन से लंबा संसर्ग ही किसी शायर को मुहावरों की भाषा में बात करना सिखाता है। वशिष्ठ जी की ग़ज़लों में मुहावरों की मिठास से यह अपनापन घोलती भाषा लोक से उनकी प्रतिबद्धता के प्रमाण देती है।

हमारे गाँव में चल कर कभी देखें नज़ारा यह
मगर के साथ कैसे आदमी पानी में रहता है

यह शेर यदि अपने आप में एक मुकम्मल कहानी कह लेता है तो सिर्फ मुहावरे की उम्दा भाषा में बात कह पाने की अपनी क्षमता के कारण ही। आप यदि मनुष्य के संस्कार और मनुष्यता को साथ लेकर नहीं चल रहे हों तो ऐसी कोमल संवेदनाओं की भूमि पर चलना संभव नहीं। जब धूमिल कहते हैं कि ' कविता भाषा में आदमी होने की तमीज़ है ', तो वे इसी तमीज़ की बात कर रहे हैं। ज़ाहिर है कि किसी के लिए भी यह समझना मुश्किल नहीं है कि इस शेर में किसे मगर कहा गया है और किसे आदमी। जब शायर मगर के साथ पानी में रहने के संकटों की तरफ इशारा कर रहा है तो मगर के नहीं आदमी के पक्ष में, उसके संकटों और उन संकटों से जूझने की प्रकृति के बारे मे ही बात कर रहा है। यही भाषा में उसके आदमी होने की तमीज़ है।

उद्योग और शहर बसाती हुई यह नई किंतु ही अप्राकृतिक अर्थव्यवस्था हमारी नैसर्गिक सरसता को गाँव से खदेड़ कर शहरों के नकली बियाबान की सुविधाओं का आदी बना रही है। इसके समानांतर कृषि और उसपर आश्रित गाँव दोनों उजड़ते जा रहे हैं। गाँव की उस ममता भरी कोमल संस्कृति में पले बढ़े पर अब उसी को छोड़ आए लोगों के मन का एक कोना अभी भी याद करता है पुराने दिन, लेकिन तभी जब कंक्रीट के जंगलों की नीरसता से उनको ऊबन महसूस होती है। मध्यवर्ग की इस कश्मकश को अनूप जी की क़लम ने क्या ही ख़ूब अभिव्यक्त किया है !

तरस जाता है मन जब चाँदनी और धूप की ख़ातिर
वो लोरी और किस्सों वाला आँगन याद आता है

मगर यह कश्मकश उभरी है सामंती और पूँजीवादी अलग–अलग सांस्कृतिक संवेदनाओं की आपसी खींचतान से। गाँव तक पैर फैलाता पूँजीवाद हमारी कृषि आधारित संस्कृति को जैसे–जैसे निगल रहा है वैसे–वैसे शायर को हमारे संस्कारों की ज़मीन पर ऐसे पौधे उगते दिखाई दे जाते हैं जो इसकी पुरानी वनस्पतियों से अलग लगते हैं। इन बारीक परिवर्तनों और उसके निहितार्थ पर नज़र रखना ही युग की नब्ज़ पर शायर की संवेदनशील उंगलियों की काबिलियत है। देखें इस योग्यता का एक अनुपम

उदाहरण–

बिना मतलब किसी को देख मुसकाता नहीं है वह
नई तहज़ीब का बच्चा भी दुनियादार लगता है

यूँ तो जैसे–जैसे हमारे गांव अपना आधार खोकर शहर की जकड़ में आते रहे हैं, समाज और उसके सभी रिश्ते हमें दुनियादारी सीखने–समझने की प्रेरणा देते रहे हैं, लेकिन बच्चों में अजानता की सुंदरता ही उन्हें प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ उपहार भी देती रही है ताकि वे सबकी देखभाल के मुस्तहक़ बने रहें। यह बात भी ध्यान देने की है कि कवि ने यहाँ ' दुनियादार ' शब्द का प्रयोग व्यंग्यार्थ बोध के साथ किया है। सिर्फ एक शब्द 'भी' के प्रयोग के द्वारा स्वार्थ के धरातल पर बड़ों से बच्चों की समतुल्यता स्थापित कर के शायर ने पूँजीवादी अर्थतंत्र द्वारा हमारी सरल प्रेमभरी कृषिप्रधान संस्कृति के नए तिजारती चरित्र में बदले जाने और उससे पैदा होते सांस्कृतिक अवमूल्यन की मुकम्मल तस्वीर पेश कर दी है। किसी साही के बदन पर उगे कांटों सी निकट आती यह भयकारी दुनियादारी हमारे समय की उपज है। यह उस पूंजीवादी चेतना का स्वाभाविक बाइप्रोडक्ट है जो पूंजी को और भी अधिक सामर्थ्य देने के लिए लाखों सालों में अर्जित मनुष्य की सामूहिकता की बलि चढ़ाती है। कवि यहां इसलिए चिंतित है क्योंकि वह समाज की प्रकृति बदलने के संकेतों को सुन और देख पा रहा है। अपनी इस बारीक़ जीवन दृष्टि के लिए शायर निश्चय ही बधाई का पात्र है।

समाज की नब्ज पर रखी शायर की उंगली का बखान इसी ग़ज़ल का एक और शेर करता है। हांलांकि इसका सानी मिसरा तो हमारी बढ़ती हुई सम्पन्नता का बखान करता सा लगता है, लेकिन ऊला मिसरा पहले ही संकेत कर देता है कि इस दिखती सी संपन्नता की परतों में छुपी हुई है एक तिजारती क्रूरता जिसका हृदय से कोई संबंध नहीं है। मूलतः कृषि से जुड़ी हमारी अवाम सदियों से आनन्द और उत्सव के रूप में त्योहार मनाती आ रही है,पर अब इन सभी आनन्दोत्सवों के मर्म को ' व्यापार ' में बदलता यह तिजारती समय एक तरह से लोगों के आनन्द को चिंता में बदलने लगा है। देखें–

बदलते जा रहे त्योहार भी व्यापार में अब तो
जिधर भी देखिए अब हर तरफ बाज़ार लगता है

हर तरफ बाज़ार लगना यूँ तो लोगों के समृद्ध होने की निशानी लगती है, लेकिन शायर की चिंता बाज़ार लगने को लेकर नहीं है बल्कि त्योहारों के व्यापार में बदलने को लेकर है। वह अपनी चेतन दृष्टि से जो बात देख पा रहा है वह आम आँखों से छुपी है, कि यह बाज़ार लोगों की समृद्धि का उदाहरण नहीं बल्कि कुछ–एक समृद्ध लोगों की और अधिक समृद्धि के लिए जारी लूट का ज़रिया ही हैं। यह विज्ञापनों की तरह आम आदमी पर अनावश्यक ख़रीदारी का बोझ डाल कर उसकी पहले से बदहाल ज़िन्दगी को और भी बदहाल करने का काम करते हैं। डॉ वशिष्ठ अनूप की शायरी में यह जनपक्ष बार–बार उजागर होता है।

किसी भी वक्त उस समय की बोलचाल की भाषा ही बड़ी शायरी की सबसे बड़ी वाहक होती है। जो कवि समय के रसों में सिद्ध होने की दिशा में चलता है वह निश्चय ही उस समय की बोलचाल की भाषा से अपने रिश्ते मज़बूत करता है। यद्यपि रस का जन्म हृदयानुभूति से ही होता है, लेकिन लोकजीवन ही रसों के संरक्षण और विकास का आधार है। ग़ज़ल की दुनिया में मीरो–ग़ालिब से ऊँचा मुक़ाम किसी को नहीं मिला। चाहे 'सुब्ह होती है शाम होती है/उम्र यूँ ही तमाम होती है ' का उदाहरण लें चाहे ' तुम मेरे पास होते हो गोया/जब कोई दूसरा नहीं होता ' का, इससे अच्छे शेर का उदाहरण मिलना मुश्किल है। मैं यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं मीर और ग़ालिब का ज़िक्र किसी भी कवि से तुलना के उद्देश्य से नहीं कर रहा हूँ बल्कि सिर्फ यह स्थापित करने के लिए कर रहा हूँ कि यदि शायर की अनुभूति में विस्तार हो तो आम बोलचाल की भाषा ही शायरी का मेयार बन जाती है।

वशिष्ठ ' अनूप ' की शायरी में भी आम बोलचाल की भाषा में बिखरे अशआर जब उनकी अनुभूति के विस्तार की चुगली करते हैं तो हिंदी ग़ज़ल के सुखद भविष्य की प्रत्याशा बढ़ने लगती है। कुछ उदाहरण देखें–

मनबढ़ों ने कलम थाम ली है
बत्तमीजों को अच्छा कहेंगे
बहुत मनबढ़ बहुत शातिर हुआ है
सितम का रूप कद्दावर हुआ है
मशालें फिर जलाने का समय है
अँधेरा और हमलावर हुआ है
हमारे दौर में अच्छे–बुरे का फ़र्क़ है मुश्किल
यहाँ हर बदचलन अब आचरण की बात करता है

बहुत आमफ़हम भाषा में यह अशआर बहुत नुकीली, बहुत चुटीली बातें बिना बनाव–सिंगार के कहते हैं क्योंकि यह कठिन संघर्ष के समय की बचाव और हमले की भाषा है, आह्वान की भाषा है। यही कवि जब प्रकृति पर पूँजी के हमले को रेखांकित करता है तो बात इशारों और बिंबों में उतरती है –

यह न समझो कि काटता जंगल,
सब की साँसें चुरा रहा है वह।
या फिर
उसके मन की पीड़ाओं को कौन समझता है,
दुनिया कहती कोयल कितना मीठा गाती है।

समय के एक छोर पर ' जाग मछंदर गोरख आया ' के उद्‌घोष से गूँजते और दूसरे पर फ़िराक़ गोरखपुरी की ग़ज़लों और नज़्मों की गहराईयों में गोते लगा कर मोतियों के ढेर पर बैठे जनपद गोरखपुर के बड़हलगंज ब्लाक के सड़हौली(दूबेपुरा) गांव में स्वर्गीया परमज्योति और स्वर्गीय लीलाधर द्विवेदी के पुत्र रूप में जन्मे डॉ वशिष्ठ अनूप सिद्धहस्त हिन्दी ग़ज़लकार के रूप में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। जैसे किसी समय इनके रचित गीत संघर्षधर्मा पाँतों में लोकप्रिय रहे हैं वैसे ही तेवर से लैस इनकी ग़ज़लें भी युवाओं की जुबान पर चढ़ रही हैं। उम्मीद है कि जन–चेतना का यह गायक जनसंघर्षों के सैलाब की मशाल जलाए रखने में अपना योगदान करता रहेगा।

ये मेरे शब्द तेरा हौसला बढ़ाएँगे : वशिष्ठ अनूप की गज़लगोई

प्रकाश उदय

(एक)

अपने बड़े भाई सरीखे, और कवि–चिंतक दोनो की भूमिका में ख्यात, प्रोफेसर वशिष्ठ अनूप की कविताई को लेकर कुछ कहना है और उनके कवि–कर्म के जिस इलाके को अपने इस कुछ कहने का आधार बनाना है, ग़ज़लगोई को, वह इस कहने वाले के लिए इतना न–जाना है कि उसकी भूमिका बनाने के लिए कुछ–न–कुछ इधर–उधर की बातें तो करनी–ही–करनी हैं। इसे भूमिका के बजाय एक किस्म की पैंतरेबाजी ही समझिए।

इस पैंतरेबाजी की पहली बात यह है कि कहना बेशक अनूप जी के बारे में है, उनकी कविताई, उसमें भी खास, उनकी ग़ज़लगोई को लेकर, लेकिन बात तो, तय है कि किसी और की कहनी नहीं है, अपनी ही कहनी है। सो, अगर 'उनका'पन कुछ कम मिले इस कहने में, 'अपना'पन जरा ज्यादा मिले, तो यकीन जानिए कि उसकी कोई और नहीं, एक ही वजह है, कि वह है ही ज्यादा। दरअसल, हर विधा का अपना एक शऊर होता है, और ग़ज़ल वाले शऊर से एकदम से नावाक़िफ़ तो नहीं हूँ, लेकिन इतना जरूर हूँ कि उसके बारे में बतियाने की हिमाकत से तो बाज ही आया रहूँ। मुश्किल यह है कि शऊर हर भाषा का भी एक अपना होता है और हर रचने वाले बंदे और हर रची जाने वाली चीज का तो होता–ही–होता है। तो, इस पैंतरेबाजी की अंतिम बात यही है कि इतने सारे शऊरों के एक साथ सामना का शऊर, अपने पास, शुक्र है, कि नहीं है।

सो, शऊर को लेकर या शऊरों को लेकर किसी को कोई दिक्कत हो, तो उससे इतना ही कहना है कि वह सीधे अनूप जी से ही समझ ले, उलझते बने तो उलझ भी ले, काहेकि एक तो कि वे कवि ही नहीं हैं केवल, कविताई को, उसकी पूरी कवायद और रवायत को समझने–समझाने वालों में से भी हैं, और दूसरे, कि कवि भी वे केवल किसी एक ही तरह की कविताई में सिमटे–रह–गए नहीं हैं, न केवल कोई एक ही भाषा–भंगिमा है उनके पास, और जो सबसे खास बात है, वह यह, कि जितनी अपनी कविताएँ हैं उनके पास, उससे कहीं ज्यादा अपने प्रिय कवियों की अपनी प्रिय कविताएँ उनके पास हैं, और इस नाते, तमाम तरह के शऊरों के मामलों को सोदाहरण सुलझा सकने की कुव्वत उनके पास बिना किसी अतिरिक्त आयास के भी भरपूर है, और अपने पास वही नहीं है।

(दो)

वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लगोई में है क्या, यह उनकी ग़ज़लों से ही सुन लेते हैं। सरसरी तौर पर ही, क्योंकि ठीक–ठीक वह जो है, जितना, और जैसे, उसे पूरा–पूरा जानने का तो एक ही उपाय है कि इन ग़ज़लों के पास आइए, इन्हें गुनिए और गुनगुनाइए, गुनगुनाइए और गुनिए।

तो एक तो कि इस ग़ज़लगोई में पतझड़ों में गुलाबों की, और नींद के लिए मुश्किल–से दौर में भी ख्वाबों की बात है। उस जमात की बात है, जो सपने दिखाती है और आँखें छीन लेती है। और फिर वे वाले सपने भी हैं जो अपनी डोलियों, अपनी शहनाइयों तक पहुँच नहीं पाते, और खुली आँखों में आन पड़ा वह वाला सपना भी है जिस वाले सपने के आने के बाद किसी और वाले सपने के आने की कहीं कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। वे वाली निगाहें भी हैं जो देखती नहीं, चुभती हैं और अम्बर से पाताल लोक तक। भरी आँखों वाली मुस्कानें हैं और वे बाजार हैं जिनमें आँसू बिकते हैं, मुस्कानें बिकती हैं। अपने और अपनों के हक के लिए तनी हुई मुट्ठियाँ हैं, इरादों की वह बुलंदी भी है, जिससे ही, दुनिया अगर बदलनी है तो बदलनी है। निबल होने की दुहाई की जगह इसमें बगावती बिगुल है, हम–तुम ने मिल–जुल जलाई जो मशालें, उनसे तिलमिलाए हुए अँधेरे हैं। गिरे को उठाने की और विष के अहर्निश पसार में भी हवा और फूल

और खुशबू को बचाए रखने की जिद है अगर, तो गमगीन को हँसाने की और शिकारियों को उन्हीं के जाल मे फँसाने की जुगत भी है। कोठियों से झाँकते थके–हारे नयन हैं, ऊँघती ढिबरी की लौ में डबडबाई आँखें हैं। श्रमिक की गर्दन पर टिकी धरती है, पाँव–पाँव टहलती खुशबुएँ हैं। भूख से बिलखते बच्चों को गुदगुदाकर हँसाने की कोशिश में लगी माएँ हैं और जनता का वह हिस्सा भी है, जो फड़फड़ाते जख्मी कबूतर को तमाशा बनाने पर आमादा है। कल की द्रौपदी है, आज की शहबानो होकर, और वह भी हैं, जिन्हें कल तक लोग गाली समझते थे, मगर आज जो भजन होकर भासमान हो रहे हैं। जिनसे बातें करना फिजूल हो, उनके कॉलर पकड़ लेने के न्योते हैं इसमें। वे भी हैं जो सितम मिटाने चले और सितमगर बन बैठे, जो जुल्म मिटा देने को चले और दरबार में सर झुकाकर खड़े हो गए। बन्दूकों की नाल पर बिराजने वाली शान्ति है, उम्मीदों की फसलों पर अक्सर हुआ करने वाले पथराव हैं। वह बचपन है जो बेवजह पिटता हुआ, होटलों के प्लेट में अपनी तकदीर ढूँढ़ा करता है। वह वाला सावन भी है जो कोठियों के पाँव धोता है, बरगदों को सींचता है और गोया इसी काम की एक कड़ी मानकर, लगे हाथ, झोंपड़ियों पर कहर बरपाता चलता है। उठाए नहीं, उछाले गए सवालों पर चुस्कियों के साथ चलने वाली चर्चाएँ हैं। भँवर को किनारा मान बैठे सिरफिरे नाविक हैं, मगर को दोस्त मान लेने की गलतफहमी में पड़ी मछलियाँ हैं, पानी–पानी को तरसती सोच में डूबी नदियाँ हैं और नदी में चाँद के गुमसुम उतरने की यादें भी हैं। वे नाले भी हैं, जो जब–तब समन्दर बनकर बतियाने चले आते हैं। लगातार पसरते नगरों में दिलों की लगातार सिकुड़ती दुनिया है, वह जमाना है, जिसमें गाने और चिल्लाने का फर्क मुश्किल हो चला है। भगवान के घरों के चिल्ल–पों हैं, अल्लाह के घरों के शोर हैं। इक्कीसवीं सदी के मानवीय आचरण पर गमगीन दुर्योधन है, पानी–पानी रावण है। खुद ही आटे–सी गुँथती वह औरत है जो भूख को खा रही है, जिसे भूख खा रही है। खुले में सड़ते गेहूँ के बरअक्स भूख से मरते हुए लोग हैं, खेतों और आशियानों में लगी आग के बरअक्स समन्दर के साथ अठखेल करते बादल हैं। वे मोबाइल हैं जिन्होंने फिल्ड से बच्चे बीन लिए और उनके वे टावर भी जिन्होंने पेड़ों से परिन्दे, परिन्दों से पेड़ छीन लिए...।

और, ज़ाहिर है कि यही नहीं है, इतना ही नहीं है। यह बहुत–कुछ का केवल कुछ है। लेकिन यह भी ज़ाहिर होना चाहिए कि इस ग़ज़लगोई में इस ग़ज़लगो की तरफ से जितना है, जरूरी नहीं कि उतना ही हो। किसी के लिए कम भी हो सकता है, किसी के लिए ज्यादा भी। एक कवि के नाते भी, और कविता की समझ के नाते भी अनूप जी को खूब खबर है कि कविता, न होने के पहले, न होते हुए, न होकर, कवि की ही होती है केवल। वह और जिनकी होती है, जिन–जिन की, उन सब पर भरोसों–भरी यह ग़ज़लगोई है। इसके पास अपनी 'बातें' हैं, जो अपनी ही नहीं हैं केवल ; बातों का एक अपना 'बताना' भी है, जो अपना ही नहीं है केवल, और अपना 'बतियाना' भी है, जो न तो केवल अपने से है, न ही केवल अपनों से है। जिस भोजपुरी लोक से वे आते हैं उस लोक की अपनी एक समझ यह है कि कविता में भी, वैसे ही, जैसे ज़िन्दगी में, कहने की जितनी, नहीं कहने की बातें उससे कहीं ज्यादा होती हैं, और कवि की एक जिम्मेदारी यह भी है कि अपने समय–समाज की उन बातों को ढूँढ़ निकाले जिन्हें उसे बहुधा कहना है, बहुबिध कहना है, कहते रहना है। भोजपुरी के भी एक उतने ही सशक्त कवि होने के नाते, लोक की इस समझ की समझ ने वशिष्ठ अनूप की हिन्दी कविताई को भी एक अपनी धार दी है। यह धार भोजपुरी से ही नहीं ; निजभाषा से, मातृभाषा से ; उनके ही नहीं, किसी और के भी ऐसे सर्जनात्मक जुड़ाव के नाते हो सकती है, जैसे उनके लिए, वैसे ही उनके जैसे किन्हीं और के लिए भी।

(तीन)

उदाहरण भर के लिए, अनूप जी के एक बहुधा और बहुविध 'कहने' और 'कहन' को लेते हैं। वह अच्छा होने–लगने के बारे में है। शास्त्रों में जिन्हें प्रज्ञापराध कहा गया है, उनमें एक यह भी है, अच्छे को अच्छा न कहना, बुरे को बुरा न कहना। जिन्हें शास्त्र से लोक लड़ाते रहने में रसातल–तृप्ति जैसी कोई चीज हासिल होती है उन्हें सखेद सूचित करना है, कि लोक भी अच्छे को अच्छा नहीं कहने को अच्छा नहीं मानता और बुरा मानता है बुरे को बुरा नहीं कहने का। वशिष्ठ अनूप इस मामले में पूरे शास्त्रीय हैं, भरपूर

लोक–लगे हैं। उनके केवल अच्छे होने–लगने के बयानों को ही देखें तो वे इकट्ठे भी और पसर कर भी इतने खूब हैं, कि बहुत खूब हैं।

मिट्टी में खेलते बच्चों की हँसी, गाँव की बोली, हवा की ताज़गी ; मोटी रोटी, बथुए के साग और चटनी की महक, ऊपर से अम्मा की खुशी ; अप्सराओं की सभा में चहकती परियों के बीच ऋषिकन्या–सी किसी की सादगी, उघड़ने–उघाड़ने की होड़ वाली सभ्यता के दौर में किसी की दुलहन–सी पोशीदगी, जुल्म से लड़ पड़ी जिन्दगी –– ये सब वे चीजें हैं जिनके बारे में कवि का एक ही बस कहना है, सबको सुनाकर, कि अच्छी लगी। और इसी तरह किसी से अगर चुपके से उसे एक सीधी–सी, सादी–सी, और जाने कितनी जटिल–सी बात कहनी है कि "तुमसे मन की बातें करना अच्छा लगता है" या यह कि "तुम रहती हो तब यह घर भी अच्छा लगता है", तो इसके साथ ही, उसे सुनाना भी है सबको, बताना भी है सबसे, कि अच्छा लगता है– किसी का कुछ सकुचाना, कुछ घबराना, हँसना और फिर शरमा जाना। आँखों–आँखों में बतियाना। मोटी–मोटी पोथियाँ पढ़ने की थकान के बाद मन के पन्नों को दुहराना। पकवानों की खुशबू और रंगों की मस्ती में दुश्मन को भी गले लगाना। फास्ट फूड और चमक–दमक वाले इस जमाने में अम्मा के हाथों का खाना। फूलों की घाटी में किसी तितली के पीछे किसी दूर देश उड़ते चले जाना। ख्वाबों में ही सही, अक्षत और चंदन और मंत्र और पुष्प और नैवेद्य और कुंकुम की गवाही में भाँवरे लगाना। और इसी तरह, जरूरी जाना है इस कवि ने सबसे यह जताना कि फूल–से भोले–भाले चेहरे, बच्चों के मासूम इरादे ; इरादतन तो हर्गिज नहीं, लेकिन कभी कुछ मजबूरन, कभी कुछ फितरतन भी किए गए झूठे वादे ; खूबसूरत फूलों के संगी काँटे और प्यार में पाए जाने वाले घाटे ; चतुर–सयानों से घबराई इस दुनिया में प्यार के दो पल, सीधे–सादे वाले, और "शोर–भरे इस जीवन के एकाकी लमहों में, खुद से बतियाते सन्नाटे"– "अच्छे लगते हैं।

और फिर इस 'अच्छा लगने' वाली जमीन को अनूप जी, आहिस्ते, कुछ यत्नों से, कुछ शर्तों से, स्थितियों से जोड़ देते हैं। अच्छे के अच्छा 'होने' के साथ अच्छा कुछ 'करने' के जुड़ने से और कई बार तो अच्छी तरह से जुड़ने भर से अच्छे का अच्छा होना कुछ और अच्छा हो जाता है। "गाँव–घर का नजारा तो अच्छा लगा" लेकिन उसके इस अच्छा लगने में जैसे जान आ गई, उन सारे नजारों को जी भर निहारा, 'तो'। अभाव नहीं था, रोटी थी, और गर्म थी, और छूँछी भी नहीं थी, नमक था, तेल भी था, लेकिन अच्छा लगा, माँ ने हँस के दुलारा, तो। इस दुलार ने तय किया कि नून–तेल–रोटी किसी अभाव को नहीं कहते। "चाँद तारों की, फूलों की चर्चा चली / जिक्र आया तुम्हारा तो अच्छा लगा" तो इस 'तो' ने यही नहीं तय किया कि चर्चा में तुम्हारे जिक्र का आना अच्छा लगा, यह भी तय किया कि वह चर्चा अच्छी लगी, अच्छे लगे उस चर्चा में आए चाँद, तारे और फूल। शहर अजनबी था, लेकिन किसी ने नाम लेकर पुकारा, तो जो अच्छा लगा, उसमें शहर का अजनबी न रह जाना भी, और शहर के लिए खुद का अजनबी न रह जाना भी शामिल है। जिसे जीतने का नशा चढ़ा था, वह अपने बच्चों से हारा तो अच्छा लगा, तो यही नहीं कि इसमें बच्चों की जीत है और अपनी हार है, एक चढ़े ही जा रहे सुरूर का उतरना भी है। और "एक लड़की ने, बिखरी हुई जुल्फ को / उँगलियों से सँवारा तो अच्छा लगा" का 'तो' जाहिर है कि जितना जाहिर का, उससे कहीं ज्यादा गैरजाहिर का सम्मोहन रचता है। राह चलते, यों ही, नजरों का टकरा जाना, जब मुड़कर दुबारा देखने से गुजरता है, 'तो' जो अच्छा लगता है, उसमें यह नहीं कि यों ही के यों–ही–पन का खात्मा है, बस इतना ही कि वह यों ही अब यों ही नहीं है, उसमें आत्मा है।

इसका एक और ढब अनूप जी अपने इस्तेमाल में लाते हैं, "खुशी के प्यार के ये पल ठहर जाते तो अच्छा था, हमारे दिन अगर यूँ ही गुजर जाते तो अच्छा था"। अच्छा, अगर 'है' नहीं भी, 'हो' नहीं भी, तो उसे 'होता' के सहारे लहा लेने की ऐसी अवसाद–विरोधी औषधियाँ ही कवियों को कविराज करने के काम आती हैं। वैसे, कवि ने यहाँ अपने 'तो' के सहारे 'था' से 'होता' का जो काम लिया है, वह भी कोई कम अच्छा नहीं है।

तेरी जुल्फों को जब देखा घटाओं ने, तो ये सोचा
तुम्हारी ही तरह हम भी सँवर जाते तो अच्छा था

लेकिन, भूलने लायक नहीं है यह, कि जो अच्छा है उसे कहने–गाने की इतनी जो यह ललक है, वह अनच्छेपन और ओछेपन के ऐसे जाने कितने वृत्तों, कितने वृतान्तों से नित्यप्रति की जाने कितनी भिड़न्तों की उपजाई हुई है –– "बेटी जल्दी घर आ जाना, समय नहीं अच्छा / ऊपर से उस रस्ते में इक थाना पड़ता है"।

(चार)

सलीके से रहना–सहना अनूप जी के स्वभाव में शामिल है शायद, लेकिन यह कोई खास बात नहीं है। खास बात यह भी नहीं है कि एक काली लड़की के सत्य–शिव–शुभ सौन्दर्य पर रीझ गई–सी, माँ की तरह असीसती एक मुकम्मल ग़ज़ल के वारिस वशिष्ठ अनूप खुद जिसे गोरा–चिट्टा कहते हैं, वह रंग रखते हैं। खास बात यह है या खास बात हो सकता है यह भी नहीं हो कि उनके व्यक्तित्व में, रख–रखाव में ऐसा कुछ है कि वे हमेशा अभी–अभी नहा कर आए हुए–से लगते हैं। ऊपर से वे एक विख्यात विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हैं। ये उनके कुछ ऐसे औगुन हैं कि जो नहीं जानते उनको यकीन करना मुश्किल है कि वे जन–संघर्षों से निकले हुए जीव हैं और उनके रचना–संसार में मजलूमों के हक की जो जबर्दस्त आवाजें हैं, वे लाई हुई नहीं हैं, आई हुई हैं। अभी उनका एक गीत–संग्रह 'इसलिए' आया, जिसमें खास तौर पर वे गीत हैं, जो जनगीतों के रूप में देश भर में जन–संघर्षों के दौरान गाए जाते रहे हैं और खास बात यह है कि वे गीत जन–संघर्षों के दौरान ही कमाए गए गीत हैं। खास बात यह है कि यह कवि हिन्दी हो या भोजपुरी, गीत हो या ग़ज़ल अपने उस तेवर को, लगता नहीं कि किसी भी रहाव–सहाव में, किसी भी बहाव–बहकाव में तजने को राजी है। और यह अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं है कि इसके लिए कवि को सीधे भी तिरछे भी, सीधी भी तिरछी भी, काफी कुछ बातें सुनने को मिलती रही होंगी। यह भी नहीं कि ऐसे किसी अंजाम से वह नावाकिफ हो, "फूलों की भाषा होती है खुशबू रंग बहारों की, काँटों जैसी चुभती भाषा बोलोगे तो क्या होगा !" अनायास तो नहीं है कि वशिष्ठ अनूप के पास कुछ पूरी–पूरी ग़ज़लें केवल यह कहने के लिए हैं कि एक तो कि उनकी ग़ज़लें कैसी हैं और दूसरे कि उनकी ग़ज़लें कैसी नहीं हैं। और फिर उनकी जो ग़ज़लें ऐसी नहीं भी है, उनमें भी अपनी प्रतिबद्धताओं को जगह देने के किसी अवसर को भरसक वे चूकते नहीं हैं।

ऐसे में इस कहन की एक सरसरी–सी यात्रा तो बनती है।

ये ग़ज़लें झोपड़ियों की दुलारी हैं, राजमहलों में पाली गई नहीं हैं। ये माँ–बहनों की–सी प्यारी हैं, मनचलों ने जिन्हें घुँघरू पिन्हाए थे, वे ये नहीं हैं। "जुल्फ के खम से बावस्ता थी कल मगर, जुल्म के रूबरू है हमारी ग़ज़ल।" वह भिखारिन–सी दसदुआरी अब नहीं है, अपनी कुटिया की रानी है। जिन चीजों से यह बनी है उनमें निष्कलुष प्यार की भीनी महक है, बच्चों की निश्छल हँसी की ताजगी है, माटी का सोंधापन है, और उसे खून–पसीने से सँवारा गया है। इसने मीन–खंजन–कमल–से प्यारे नहीं, हजारों दर्द के मारे नयन देखे हैं और देखा है कि "चार पैसे चार दाने चार रोटी के लिए, दर–ब–दर दिन भर भटकते हैं ये बंजारे नयन"। यह वह ग़ज़ल है जिसकी जड़ें बेशक, कीचड़ के अंदर हैं, लेकिन जो रूप–रस–गंध–पूरित कमल जैसी है ; जो एक माँ की पुलक, एक किसान की खुशी और खेत में लहलहाती फसल जैसी है, जो कविता–कैसे–जुड़े–जीवन–से–फिर–से इस सवाल के एक सीधे–सादे हल जैसी है, एक बेहतर दुनिया की बसावट के लिए शब्द–संसार के एक पहल जैसी है। यह कवि स्वयम् को उस शब्द–सारथी के रूप में पहचानता और पहचनवाता है जो कविता में तुलसी, जायसी, रसखान और कबीर के ऐलान का ; सीकरी के आगे माथा न झुकाने वाले कुंभन की फकीरी और अभिमान का और पाश और सफदर के अरमान का वारिस है। उसकी आशिकी एक और ही अंदाजे–बयाँ वाले मीर से है और उसकी कलम की बावस्तगी पीर से है, अन्याय के प्रतिपक्ष से है। यह शायर अपने शायर होने की भी बहुत गलतफहमी में नहीं है, "मैं अपना दर्द साझा कर रहा हूँ, तुम्हें लगता है यह भी शायरी है"। लेकिन इसके साथ ही अपनी कविताई को लेकर उसे किसी को किसी गलतफहमी में भी नहीं रहने देना, "मेरी कविता बगावत बिगुल है, निर्बलों की दुहाई नहीं है"। वैसे, ग़ज़ल की उसकी एक अपनी परिभाषा है, अचरज कि उस परिभाषा को तय करने में एक

कवि–नहीं, कथाकार के एक कथा–परिवार की भूमिका है, "कहते हैं ग़ज़ल जिसको शबनम भी है शोला भी, आक्रोश है धनिया का, होरी का पसीना है"। और यही नहीं, कविता उसके लेखे कभी लोरी है, कभी फगुए का मीठा स्वाद, वह लहू में बह रहा अहर्निश अंतर्नाद है, होगी किसी के लिए वह हँसी–मौज–मस्ती, उसके लिए वह मजलूम से संवाद है, और अकूत यह विश्वास कि "फतह कर ले भले हर मोरचे, पर / कलम से हार जाती है हुकूमत"। कवि की, कहते हैं कि वहाँ भी गति, जहाँ रवि की नहीं, लेकिन अनूप जी बेहद ईमानदारी से सँकारते हैं कि है कुछ, जो उनकी लिखाई की समाई में नहीं है, "गरुड़ के ऐब बतलाने लगे हैं आजकल उल्लू, मैं इन चमगादड़ों को चाँद–तारा लिख नहीं सकता"। और, शायरी भी सकत की बात है, वह भी एक खास तरह की मिहनत माँगती है, इसे लेकर इस कवि के पास एक मुकम्मल ग़ज़ल है, "अक्षर–अक्षर तिनका–तिनका चुनना पड़ता है / भीतर–भीतर कितना कहना–सुनना पड़ता है // चिड़िया जैसे नीड़ बनाती है तन्मय होकर / कविता को भी बहुत डूब कर बुनना पड़ता है // दुहराना पड़ता है सुख–दुख को हँसकर–रोकर / यादों में खोकर अतीत को गुनना पड़ता है // इतनी गुत्थमगुत्था हो जाती हैं कुछ यादें / जज्बातों को रुई सरीखा धुनना पड़ता है...।"

कहने दिया जाय कि इस तरह अपनी कविताई, अपनी ग़ज़लगोई की परख के लिए, पड़ताल के लिए अनूप जी ने खुद ही बहुत सारे औजार लहाए हैं, खूब सारी कसौटियों को खूब खुले में रख छोड़ा है। हो सकता है कि आगे आने वालों सवालों के पहले ही दे दिए गए जवाब ये हों, लेकिन कोई चाहे तो इसे एक किस्म का दुस्साहस भी कह सकता है, और चाहे तो उन कसौटियों को भी, और उन कसौटियों पर कस कर उनकी कविताई को भी, बने तो पास–फेल करने की गुंजाइशें निकाल सकता है।

(पाँच)

कवि वशिष्ठ अनूप बहुत कुछ को जस का तस रख पाते हैं। 'जैसा' उनके यहाँ अपने दिखते–अदिखते अंदर–बाहर आगे–पीछे के साथ–साथ 'तैसा' दर्ज है। अक्सर तो दर्ज करने वाले के गम–गुस्से को बिना दबाए–छुपाए। लेकिन, इसके साथ ही यह भी तय है कि यह कवि अपनी कविताई में जस के तस पर बस का कायल नहीं है। न उसे ललकारने से, न उसे धमकाने–धिक्कारने से कोई परहेज। आवाज ऊँची होती है तो होने देता है। घर पर वह कम है, सड़क पर, चौराहों पर ज्यादा है। एकान्त से परहेज उसे नहीं है लेकिन उसकी ग़ज़लगोई बताती है कि सौ–पचास के साथ का अभ्यास उसे ज्यादा है। कि उसे महज कहना नहीं है, सुनाना है। और बहुत काव्योचित कहे जाने वाले घुमाव–फिराव के साथ नहीं, सीधे, "एक मजलूम के हाथ में ज्यों धनुष, हक की खातिर तनी मुट्ठियों की तरह / आक्रमण की है तैयारियाँ कर रही, दर्द के गाँव में गम की मारी ग़ज़ल"।

असल में यह सारी–की–सारी कारगुजारी, एक तरह से, लश्कर मुहैया करने की कोशिशों का एक हिस्सा है। कैसे ? इसके जवाब के लिए एक काव्य–प्रसंग में चलते हैं।

मुक्तिबोध की एक कविता है 'भूल–गलती'। जिस दरबारे–आम में सब–की–सब कतारें, बेबस और बेजुबान, सलाम में सिर झुकाए खड़ी हैं, उसमें एक कैदी कोई है, जो "सुलतानी निगाहों में निगाहें डालता / बेखौफ नीली बिजलियों को फेंकता" सबको खामोश करती खामोशी के साथ खड़ा है। आगे इस कविता में एक 'कोई' और आता है। उसकी हरकत शहंशाह को अपने इनकार के हठ से 'रेत का–सा ढेर' साबित कर देने वाले बेखौफ, खुदमुख्तार कैदी किरदार से हट कर है। वह 'कोई' इस दरबारे–आम से निकल भागता है। और कवि बताता है कि दरबार के सिपहसालारों में जो खौफ उस 'अड़ गए' का है, वही इस 'भाग चले' का भी है, बल्कि ज्यादा। उस अड़े के अंजाम के डर से जो बेसंभाल हो चले थे, सुन्न, वे इस निकल भागे के निकल भागने से संभले, जागे। कविता की अंतिम पंक्तियों को दुहराते हैं, ये पंक्तियाँ उस बेनाम निकल भागे से संभल–जागे लोगों की उम्मीद का बयान हैं, "... महसूस होता है कि वह बेनाम / बेमालूम दर्रों के इलाके में / (सचाई के सुनहले तेज अक्सों के धुँधलके में) / मुहैया कर रहा लश्कर / हमारी हार का बदला चुकाने आएगा / संकल्प–धर्मा चेतना का रक्त–प्लावित स्वर / हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर / प्रकट होकर विकट हो जाएगा"।

ऐसे में हिन्दी के, और हिन्दी के ही नहीं, किसी जुबान के, किसी कवि–शायर या कुछ भी को, लश्कर मुहैया करने की किन्हीं कोशिशों में पाएँ तो इसे किसी की उम्मीद पर खरा उतरने की कोशिशों के रूप में दर्ज करें, उन कोशिशों पर सवाल न उठाएँ, उन कोशिशों की कमियाँ बेशक बताएँ, अगर उनसे उन्हें निकालना हो, महज उनमें वे निकालनी न हों। तब तक एक नजर इन कोशिशों में इस 'योग वाशिष्ठ' पर। यहाँ इन कोशिशों के नाना रंग–रूप हैं। वह यह अहसास बन कर है कि "आदमी हारता नहीं है मुश्किलों से कभी, हार जाता है इरादों के डगमगाने से"। इस सत्य का स्वीकार बन कर कि "पथ में पत्थर हैं, शूल हैं साथी" लेकिन इस इरादे के साथ कि "फिर भी चलना कुबूल है साथी"। यह चाहत भी नहीं कि इस कुबूलनामे को अतिरिक्त कोई तवज्जो मिले, ये किसी इकलौते के पाँव नहीं हैं जो तमाम मुश्किलात के बावजूद चल रहे हैं, "कड़े हैं खौफ के पहरे, पड़ी हैं बेड़िया लेकिन / हरिक आफत में बढ़ता जा रहा 'हर पाँव' अब भी है", और इस यकीन के साथ कि "हमारे कदम जीत लेंगे सफर को", और, कि "घठियल हाथों में परचम लहराएगा"। वह कोशिश यह उम्मीद बन कर है कि "कुचली हुई जमात उठाएगी सर जरूर" और इस फिक्रो–जतन के साथ कि "पानी न कहीं से पड़े उसके उबाल पर"। यह ऐसी उदग्र–सी समझ बन कर भी है कि "हमको निगल न पाएँगी अब उनकी नीतियाँ / हम आदमी हैं, उनके निबाले तो नहीं हैं", कि "कहने की सीमा होती है, सहने की भी हद / कुछ लोगों को लातों से समझाना पड़ता है", कि "सारे काम कहाँ होते आसानी से, कभी–कभी आस्तीन चढ़ाना पड़ता है", कि "गर दिखाना है तो अपने बाजुओं का बल दिखा / अजगरों को पेट दिखलाने से कुछ होगा नहीं", और इसी के साथ ऐसी समग्र–सी समझ बनकर भी कि "ये दुनिया बहुत खूबसूरत है साथी, इसे और भी खूबसूरत बनाना", कि "तेरे खामोश रहने से सितम बढ़ता ही जाएगा / है उसकी आज तो कल सोच ले तेरी भी बारी है", कि "सितम को देखना, सुनना व सहना भी सितम ही है", कि "ये माना अँधेरा है बरजोर लेकिन, चलो देखते हैं मशालें जला कर"। नीति के दोहों की समृद्ध परंपरा वाले इस देश को, यही समझ, जुबान पर चढ़ जाएँ ऐसे कई सोदाहरण शेर सौंपती रहती है, "फ़क़त तक़रीर करने से नहीं बदलेगी ये दुनिया / दवा का नाम जपने से ही बीमारी नहीं जाती"। अनूप जी के यहाँ हमारी साधु–परंपरा में अतिशय समादृत चेतावनियाँ भी पूरे दम–खम से, अक्सर तो एक धमक के साथ मौजूद हैं। यह चेतावनी उधर के लिए तो है ही, "मेहनतकशों को भेड़–बकरियाँ न समझना, टूटेंगे एक दिन वे तुम्हारे जहान पर", इधर के लिए भी है, "अगर हम चुप रहे तो हर तरफ बरबादियाँ होंगी"। और, खबरदारियाँ ही नहीं, खबरें भी उसके पास ढेर सारी हैं, कभी–कभी तो जितनी आश्वस्तिकर, उतने ही विश्वस्त कंठ से प्रस्तुत, "हौसले हो रहे बुलन्द बँध रही मुट्ठी, रफ्ता–रफ्ता ये गर्म हो रही हवाएँ हैं". .।

(छह)

कविताई में कोई कुछ भी के बारे में कुछ भी कहता है, कहते हैं कि, कहता वह कुल मिला कर अपने ही बारे में है। लेकिन ऐसे में भी, कोई खुल कर कहता है कुछ, खुद को, खुद की कोई बात, तो बात में सीधेपन का एक अलग–सा आस्वाद आ जाता है, यह एक बात, दूसरी बात, कि कवि की दुनिया भर की बात से कवि को जानने के प्रायः परनिर्भर उद्योग की जगह, कवि की अपने तक की बात से दुनिया भर को जानने के एक आत्मनिर्भर किस्म के उद्यम से जुड़ाव का एक अलग–सा अहसास तो जगता ही है। अच्छा लगता है जब अनूप जी का अच्छा लगना हमें भी अच्छा लगता है, या यह पता चलता है कि जो हमें अच्छा लगता है, वह उन्हें भी अच्छा लगता है, या यह कि अच्छा... तो ऐसा लगना 'भी' (या 'ही') अच्छा लगना है ! और तय है यह भी, कि कवि के अच्छे लगने से अलग अगर कुछ अच्छा लगता है, अगर उसके अच्छे लगने का कुछ–कुछ नहीं भी अच्छा लगता है, तो कविता हमारे भीतर अलग एक विस्तार लेती है, और यह भी उतना ही अच्छा है, कवि–कविता–भावक सबके हिस्से में।

कवि वशिष्ठ अनूप के यहाँ हम कितने हैं, कितने वे हमारे यहाँ हैं, उनकी ग़ज़लों ने यह जान लेने की बहुत सारी सहूलियतें कर रखी हैं। हम चाहें तो आसानी से उपलब्ध ढेर सारी सूचनाओं को जुटा लें और अपने मन–मति–मुताबिक, उनमें से कुछ से हट लें, कुछ से सट लें, कुछ को हटा दें, कुछ को सटा लें। बाकी सब को बाकी सब के लिए छोड़ कर, उदाहरण के तौर पर, कवि के, कवि के ही बताए कुछेक

लूर–लच्छनों को जुटाने में जुटते हैं। तदनुसार, एक तो कि वह जिद्दी है। जिद काहे की ? चिन्गारी को शोला बनाने की, गिरे को उठाने की, हवाओं में दीपक जलाने की, "जहाँ लोग नफरत उगाने चले हैं, अमन के वहीं गीत गाने की जिद है"। कुछ है, जिसे, उसके खयाल से उसी ने देखा है– सपनों को सच में बदलते हुए, चाँद को जमीन पर उतरते हुए, होठों से हरसिंगार झरते हुए, रूप की किसी नदी को उफनते हुए। उसे लगता है कि व्यवस्थाएँ जिन्हें फिर से बुलाने में लगी हैं, वे सारे–के–सारे दुश्मन उसके भगाए हुए हैं, कि वह हर रुत में मुस्कराने वाले, प्यार के फूल की तरह की कोई चीज है, कि ऐसे एक खेतिहर की तरह वह है जो दिल की जमीन पर शब्द और संवेदना के बीज बोता है और प्यार की फसल उगाता है। बताता है कि उसका आशियाना ऐन वहाँ है, "बिजलियों का जहाँ निशाना है", और कि, "खूब पहचानता हूँ मैं गम को, मेरे घर उसका आना–जाना है"। उसे यकीन है कि वह एक नई वर्णमाला बनाने की जुगत में है, सबकी पीठ पर चढ़ कर जो ऊँचे हुए जा रहे हैं उनको धोबीपाट लगाकर गिराने की जुगत में है। उसने अपने भीतर भी झाँका है, और पाया है कि "सागर के भीतर ज्यों शोला रहता है, मुझमें कोई बागी बैठा रहता है"। इसका यह मतलब भी नहीं कि वह हरफनमौला है, बहुत खुल कर वह यह भी बताता है कि क्या कुछ उसके लिए असंभवप्राय है। उसके लिए, "कसीदे हुक्मराँ की शान में पढ़ना नहीं संभव, नगीने ताज़ में अल्फाज़ के जड़ना नहीं संभव"। जगत–व्यवहार की ऐसी बहुतेरी बारीकियाँ हैं जो उसे आती ही नहीं, जैसे, "हमेशा रंग बदलने की कलाकारी नहीं आती, बदलते वक़्त की मुझको अदाकारी नहीं आती"। सब समय सब कुछ उसे याद भी नहीं रहता, "कभी राहें बिसर जातीं, कभी घर भूल जाता हूँ / बुरा मत मानना, मैं नाम अक्सर भूल जाता हूँ"। ऐसे में ऐसा, जाहिर है कि होना ही है, और अक्सर, कि "कभी घर ले के ऑफिस में गया हूँ, कभी ऑफिस चला आया है घर में"। ऐसा भी बहुत कुछ है जिसे पाना उसकी हसरतों में शामिल है, बहुत कुछ है जिसे उसे सीखना है, जिसे वह सीख रहा है, जैसे एक बहुत बुनियादी किस्म की चीज, भाषा। " सीख रहा हूँ धीरे–धीरे, तुलसी और कबीर की भाषा / काश ! मुझे भी मिल जाती वह, शहद–सी मीठी मीर की भाषा / मन होता है जाकर सीखूँ ; संतों, पीर–फकीर की भाषा"...।

इस 'मैं' के साथ 'तुम' को भी होना ही होना है। यह तुम कभी मैं से उलट भी है, इस कदर, कि "तूने लिक्खे मीन खंजन कमल से प्यारे नयन" और "हमने देखे हैं हजारों दर्द के मारे नयन" और कभी मैं–तुम दोनो एकमेक भी हैं, इस कदर, कि "तुम भी थके हो, मुझको भी आराम कब मिला / आओ ! चलें घर दुखता पोर–पोर है मियाँ"। और फिर 'वह' भी है। यह 'वह' वह वाला वह भी है जिसे भ्रम है कि दुपट्टे से मशालों को बुझा देगा, जिसे उम्मीद है चन्द टुकड़े फेंक देंगे और "गरजते बढ़ रहे बागी बवण्डर मान जाएँगे" और यह 'वह' वह वाली वह भी है, जिसकी चाहतों में रोशनी है, अँधेरों में भी जिसकी बैठकी है और "वो जो चुपचाप भीतर आ गई है, हकीकत में वो अब भी अजनबी है"। लेकिन एक बात है। इस कवि के 'मैं' का मेल–जोल 'तुम' से और तनातनी 'वह' से ज्यादा है। 'उस' के खिलाफ 'तेरी' 'मेरी' की जुगलबंदी है भी और उसकी कोशिशें भी हैं।

(सात)

ऊपर,एक जिक्र आया है कि अनूप जी के व्यक्तित्व में ऐसा कुछ है कि वे हमेशा अभी–अभी नहाए हुए–से, एकदम–से ताजादम दिखते हैं। वह कुछ क्या है ? इसका एक जवाब उन्होंने खुद भी दिया है– "इसीलिए मैं हरदम ताजा दिखता हूँ, मेरे मन में कोई बच्चा रहता है"। यह उनके व्यक्तित्व की ही नहीं, कवित्व की भी खासियत है। उनकी कविताई के भाव–भूगोल में बच्चे–बच्चियों की हिस्सेदारी बढ़कर भी है और चढ़कर भी। उनके पास कहने–सुनने को, बोलने–बतियाने को, बच्चों के बारे में भी और बच्चों के बहाने भी, बहुतेरी और बहुविध बातें हैं। उनको पता है कि "जिन्होंने भूख से दम तोड़ते बच्चों को देखा हो, वही इन ताजमहलों की हकीकत भी बताएँगे"। वे जानते हैं कि यह चाहना भी कि अँगूठे बचे रहें, असल में बच्चों की ही बात करना है, भले ही बातें बच्चों के बारे में न हों, कॉपियों–किताबों के बारे में हो। यह भी कि इस समय–संसार में बच्चे और बच्चे में फर्क भी बहुतेरे हैं, पाउडर–प्रकार से अलग हैं धूल–प्रकार के बच्चे, जिन्हें "बेवजह पिटता हुआ मनहूस–सा बचपन मिला", जिन्हें "बुढ़ापा घेर लेता है अचानक नौजवानी में"। बच्चों और बचपन के लिए भाव–भरी इस कविताई में अभाव के ऐसे कचोटते हुए दृश्य भी कई हैं, जिसमें

डायन–सी झपट्टे मार कर गुर्राती भूख के विरुद्ध "एक औरत बुझ रही–सी आग को सुलगा रही है" या "सिर पे बोझा, पीठ पर बच्चे को बाँधे जा रही है" और "भूख से बेहाल बच्चा है जमीं पर लोटता / वह उसे चंदा दिखाकर देर से बहला रही है"। ऐसा भी नहीं कि भरे–पेट बचपन के सामने कोई कठिनाई नहीं है, "विज्ञापन के अर्थ पूछते जब बच्चे, उनको कुछ का कुछ बतलाना पड़ता है..."।

अपने गाँव को याद करते रहने की बहुत सारी वजहें हैं इस कवि के पास, लेकिन सबसे बढ़ कर यह है शायद कि "अब भी किस्से, लोरियाँ सुनते हैं बच्चे शाम को / घरों में अँगनाइयाँ अब भी हैं मेरे गाँव में" और कवि को दहशत भी है तो यही कि "डरी हैं बेटियाँ हर पल, गली–घर–राजधानी में / कोई शैतान आ जाता है परियों की कहानी में"। इस देश–काल से उसे जो हिकारत–भरी शिकायत है वो यही कि "गाँव से दिल्ली तलक़ दुःशासनों का तार है, आज हर बेटी यहाँ लगती बहुत लाचार है"। हालाँकि यही बच्चे जब कभी एकलव्य बन कर टकराए, "मची है द्रोण के खेमे में हलचल"। और तय है यह भी कि "वे बच्चे बगावत करेंगे किसी दिन, जिन्हें भूख से बिलबिलाना पड़ा है"। दानियों–महादानियों की एक जो सुदीर्घ सूची है हमारे इतिहासो–पुराण में उसे यह कवि एकबारगी झुठला देता है, जब बताता है कि "कोई बच्चा उछाह भर के खिलखिलाता जब, मुझे सचमुच किसी दानी की तरह लगता है"। दरअसल, कोई बुरा माने या भला, यह कवि यह यकीन लिए बैठा है कि "हमारी परवरिश भी इसकी जिम्मेवार होती है, बुराई जन्म से बच्चों की आदत हो नहीं सकती"। एक ग़ज़ल है अनूप जी के यहाँ, जो कर रहे हो उसके, या फिर नहीं कर रहे हो उसके, अन्जाम का भी खयाल रखने को कहती हुई, जीव–जीवन–जगत को घायल करने वाली कई महत्त्वपूर्ण क्रियाओं या फिर निष्क्रियताओं का जिक्र है उसमें, लेकिन जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है उनमें, जिससे शुरुआत होती है, जो मतले का पहला मिसरा बनता है, वह है कि "तुतलाते सपनों की बाँह मरोड़ोगे तो क्या होगा !" क्या होगा इसके कुछ इशारे एक दूसरी ग़ज़ल में है और कमाल यह कि वह भी कोई जवाब जुटाती हुई नहीं, सवाल ही उठाती हुई ग़ज़ल है, "बच्चों के जीवन से जाने बचपन कहाँ गया / वह रोना–धोना, जिदियाना, ठनगन कहाँ गया ?" और बचपन गया तो कौन कहे कि सयानापन रह गया, वह तो शायद पहले गया, बचपन तो शायद उसी के चले जाने के नतीजे के तौर पर गया। क्या था उसका होना और क्या है उसका जाना, इसी के जवाब में इस ग़ज़ल के मक्ते का यह सवालिया शेर है– "हर बच्चा अपना बच्चा था हर बुजुर्ग अपना / सब अपने लगते थे, वह अपनापन कहाँ गया ?"

ग़ज़ल के हर शेर, कहते हैं कि एक अलग दुनिया है। है, लेकिन बच्चों की बात चल निकले, तो अनूप जी के यहाँ अक्सर, ग़ज़ल के शेरों को एक–दूसरे से रदीफ काफिये के अलावा एक और चीज जोड़े रखती है, बच्चे। फिर, हर शेर की एक अलग दुनिया के साथ ही, अक्सर, सबकी एक मिली–जुली दुनिया भी कायम हो जाती है। एक कहन हर शेर की अपनी, एक सबकी मिली–जुली। एक लौकिक ही, लेकिन अलौकिक–सी खुशी है घर भर की, जिसे इस कवि की एक पूरी ग़ज़ल कहती है और उसके सारे शेर उसे अलग–अलग भी अपने–अपने कोने से बयान करते हैं– नींद में मुस्कुराता है जब कोई बच्चा, तो होठों पर, उसके और हमारे, जो खुशियाँ छलकती हैं उसे ही संक्षेप में अमृत कहते हैं ; एक हाथ–पाँव, मुँह और नजर की भाषा हुआ करती है, जिसमें अपनी माँ से वह क्या कुछ नहीं बतियाता है ! एक अद्‌भुत जीवन–संगीत है उसके तुतलाने में, माँ की ममता का एकछत्र राजा है वह, "अपने आगे किसको कहाँ लगाता है" ! वह जो खुद खिलौनों–खातिर ललचाता है, घर भर का खिलौना है और उसका डगमग डग धरना घर भर को खुशियों से भर देता है। एक और ग़ज़ल है, सच तो यह है कि कई हैं, बच्चों को बतियाने से मन नहीं भरता शायद इस शायर का, तो उस ग़ज़ल में हैं तो यही वाली खुशियाँ, लेकिन अबकी उनमें घर ही नहीं, पूरी दुनिया शामिल है, "लिए मुट्ठी में जब जुगनू चहकता है कोई बच्चा, अजब–सी रोशनी दुनिया में भरता है कोई बच्चा"। अँगनाई ही नहीं किलक उठती, समूची–की–समूची धरती जन्नत–सी हो जाती है, अबकी जब वह डगमग डग धरता है। और इस दुआ का तो, कामना करनी चाहिए कि विश्व–प्रसार हो– "दुआ करना किसी बच्चे का यह विश्वास मत टूटे, बड़े विश्वास से उँगली पकड़ता है कोई बच्चा"। अनूप जी की कविताई में, कई बार, परिन्दों और फरिश्तों से बच्चों की जुगलबंदी के अहसास को साँस लेते सुन सकते हैं, "इन नन्हें फरिश्तों की अदाएँ तो देखिए, दो–चार कहीं भी मिले तो चहचहा लिए"। यहाँ एक पूरी ग़ज़ल

स्कूल जाते बच्चों की चहचहाहट से भरी मिल जाएगी। इसे पूरा सुनते हैं, इसलिए कि साहित्य–संसार में भी बच्चों के लिए और लायक का अकाल हुआ जा रहा है– "बैग उठाए सारे बच्चे घर से निकले हैं / चह–चह करते नए परिन्दे घर से निकले हैं // हर मम्मी ने इन्हें सजाकर टिफिन सजा दी है / पप्पी देकर हाथ हिलाते घर से निकले हैं // चंदा मामा खेल–खिलौने पीछे छूट रहे / प्यारे–से मासूम फरिश्ते घर से निकले हैं // नाजुक कंधों पर सपनों के बोझ उठाने हैं / कुछ चुप–चुप कुछ रोते–हँसते घर से निकले हैं // कितने हैं आजाद, भगत, गाँधी, सुभाष इनमें / लेकर कुछ अनबूझ इरादे घर से निकले हैं।"

बच्चे हैं, तो जाहिर है कि माँएँ हैं, पिता भी हैं, लेकिन माँएँ तो माँएँ हैं। "पिता रहें कुछ दूर तो चल भी जाता है, बच्चों की लेकिन होती कमजोरी माँ।" और वही उनका बल भी है। वही है, जिसे शब्दहीन शिशुभाषा को सही–सही डिकोड करना आता है। प्यारी–प्यारी नींद भी वही है, लोरी भी, दूध की मीठी कटोरी भी, एक ऐसी डोरी, जो कोमल है, लेकिन वो न टूट सकती है, न कभी–कोई गाँठ पड़ सकती है उसमें, ममता की एक भरी तिजोरी है माँ, जो प्यार की चाभी से खुलती है। एक ग़ज़ल है जिसे कहते–कहते यह कवि जब यह कह जाता है कि दुनिया में कुछ ऐसे रिश्ते भी हैं जो हमेशा तरो–ताजा बने रहते हैं, काल के असर से अछूते, तो इसके आगे की कहन जो उसे सूझती है, वह यह रही– "माँ बाप तो बच्चों को सदा मानते बच्चा, उनके लिए कभी वे सयाने नहीं होते।" पिता का एक अद्‌भुत जिक्र है, वशिष्ठ अनूप के यहाँ। मतले का शेर है, सुनिएगा, "पहले तो बच्चे पर हाथ उठाता है, और बाद में बहुत–बहुत पछताता है"। और अब अगला शेर सुन लीजिए, "दिन भर तो वह चुन–चुन महल बनाता है, रातों में फुटपाथ पे डंडे खाता है"। और इस अगले को सुनने के बाद, कुछ और नहीं कहना, गुजारिश भर है कि पिछले को एक बार फिर सुन लीजिए, "पहले तो बच्चे पर हाथ उठाता है, और बाद में बहुत–बहुत पछताता है..."।

ऐसे में, सहज संभव आहें भी क्यों न हों ! "दुखी माँ–बाप को कर के इबादत हो नहीं सकती... बुजुर्गों को पटक देना अनाथालय में ले जाकर, किसी की हो, मगर अपनी रवायत हो नहीं सकती...।" इन आहों के साथ ऐसी कराहें भी इस समय–समाज के कुछ बड़े गहरे घावों को उजागर कर देती हैं, "जिन बच्चों की खातिर उसने सारा जीवन खपा दिया, वे ही बच्चे मना रहे हैं जल्दी से मर जाए वह..."।

कविताओं में बच्चों–बच्चियों, बेटों–बेटियों, माताओं–पिताओं की तमाम चर्चाओं से कभी नहीं थकते हुए भी, इस सिलसिले को, संप्रति एक दुर्लभ हो चले दृश्य के साथ विदा करते हैं–

खटोले पर भतीजा जब मचलता देख कर मुझको
तो दिन भर की मेरी सारी हरारत भूल जाती है

(आठ)

एक अपने समय–संसार को कहना हुआ करता है। हर कहने वाले के जिम्मे। चाहे वह कविता में कहे या कहानी में। या समाचारों के वाचन में। या यों ही। वशिष्ठ अनूप उसमें अपने लिए कोई छूट चाहते हुए कवि नहीं हैं, और उनका कहना वही कहने के लिए कहना नहीं है। वह उनसे कहाता रहता है। और इस कहाने में, उल्लेख लायक यह है कि गुजरे जमाने की अग्नि–परीक्षाएँ, इन्द्र और गौतम और अहिल्याएँ, दुष्यन्त और शकुन्तलाएँ, द्रौपदी, लव–कुश और सीताएँ भी उनके उतने ही काम आती हैं जितने आज के दहकते हुए तन्दूर, शहबानो, रूपकुँवर और विश्व–सुन्दरी की घोषणाएँ। आज के दिन, दलितों के लिए दलितों और औरतों के लिए औरतों की आवाजों की दमदार उपस्थितियों के सदके इस कवि के यहाँ उनके लिए आवाज उठाने की अपनी जिम्मेदारियों से बाज आने के किसी जतन का कोई निशान नहीं दिखता। मौका आता है तो चूकता नहीं वह यह खुल कर कहने से कि "पास में थाने के, हत्या हो गई बाजार में / फिर कोई मुसहर फँसाया जाएगा बेकार में"। किसी से यह कहते हुए कि बंद होठों की हमारी बेबसी को तुमने कभी समझा ही नहीं, न हमारी जिन्दगी को जिन्दगी समझा, अँधेरों में दिए की लौ की तरह लगातार

जलते रहने के बावजूद कभी रोशनी नहीं समझा हमें, हमें माया मान लिया, समझने को तो "कभी देवी कभी परी कभी दासी समझा" लेकिन "कभी किसी ने हमें आदमी नहीं समझा"– वशिष्ठ अनूप, बड़ी बात है कि एक तरह से अपने पुरुष होने को नितान्त स्थगित कर पाते हैं। बड़ी बात है कि बुधिया के गायब होने की चर्चा के आम होने के साथ ही थाने में मुर्गा–शराब की दावत और बढ़ चली चहल–पहल जैसी, कविताई में बहुविध आई विडम्बनाओं को एक बार और लाने से परहेज की पंडिताई का कायल यह कवि कतई नहीं है। उसे पता है कि कहाँ प्रहारमात्र पर्याप्त नहीं है, प्रहार–दर–प्रहार की दरकार है। ऐसे में वतन की प्रगति का गुणगान करते–करते खुद को ही वतन समझने लगे लोग; मंदिर–मस्जिद–गिरजा–गुरुद्वारों का जतस तनना, द्वेष की खाई का ततस बढ़ना ; अहिंसा के पुजारियों के खंजरों के खरीद–फरोख्त के धंधे, मुजरिमों का पहरेदार बन बैठना, तारीख पर तारीख पर तारीखें, स्वयं सोने–चाँदी के सिंहासन पर बिराज कर दुनिया को मृगतृष्णा बताने वाले बाबा– ये सब इस कवि के निशाने पर 'बार अनेक' भी हैं और 'भाँति बहु' भी। और जितनी शिद्दत से ये निशाने पर हैं, उतनी ही शिद्दत से नदी पेड़ पहाड़ को नागरिकता प्रदान करने की पुकार है वशिष्ठ अनूप के यहाँ, बार–बार, शतधा, गूँज–अनुगूँज के साथ। अधिक नहीं, कुछेक बात और बताने के कुछेक अंदाज के जिक्र में चलते हैं। या फिर ऐसा करते हैं कि जिक्र में नहीं जाते, समझदारों के लिए जिसे हमेशा से काफी माना गया है, उस 'संकेत' से काम चलाते हैं।

संकेत पहला, कि भूखों को भाषण पिलाने वालों से किसे शिकायत नहीं होती ! इस कवि को लेकिन, नहीं है। उसे, इसके उलट, शिकायत इन भुक्खड़ों से ही है। शिकायत से कुछ बढ़ कर ही– "क्या कहें इन भुखमरों का पेट है या पोखरा, भाषणों–आश्वासनों को खूब खाए जा रहे"। अब दूसरा, कि 'नीति', जिससे 'नैतिक' और 'नैतिकता' जैसे अर्थ–गंभीर शब्दों का रिश्ता है, उसके इस इस्तेमाल का इस्तकबाल करें, "हमको निगल न पाएँगी अब उनकी नीतियाँ, हम आदमी हैं, उनके निवाले तो नहीं हैं"। और तीसरा, कि एक बात रखी गई कि 'कदम–कदम पे दुखों का हुजूम मिलता' है। अब उसे बताना है कि कैसे। और वह बताता है कि "युगों के बाद कोई दोस्त ज्यों हहा के मिले"। याद रखें कि दुख बहुवचन में है, दोस्त एकवचन में है। याद रखें कि दुख मिले कदम–कदम पर, दोस्त युगों बाद मिला। और याद रखें कि मिलना भले दोनो का हुआ लेकिन दुखों के मिलने का जो हाहाकार है उस बेचारे को दोस्त के 'हहा' में एकदम से कहीं बहा दिया गया, बिलकुल बिलवा दिया गया ! और अब एक चौथा संकेत, कि कहन में और कहने में विनम्रता के इस आस्वाद को ग्रहण करें, "दो कदम व्यवहार की धरती पर चल कर देखिए"। अब इस विनम्रता की ईंट से ईंट बजाती अगली पंक्ति के ग्रहण से उग्रह होने की कोशिश कर देखें, "बैठ कर सिद्धान्त पगुराने से कुछ होगा नहीं"। इस 'पगुराने' की चोट से उबरना आसान नहीं है। ऐसे में, कुछ और नहीं, अंदाजे–बयाँ के इन संकेतों का पंचक पुराने के नाम पर महज दो पंक्तियाँ और, बिना किसी टीका–टिप्पणी के–

यहाँ खुद से भी मिलना है असंभव
ये दफ्तर है कि मेरी जिन्दगी है !

(नौ)

इस सब कुछ के रहते भी वशिष्ठ अनूप की कविताई के बाकी इलाकों में प्रेम–पदारथ की जो दखलन्दाजी है वह अगर इस इलाके में भी नहीं है तो मानना चाहिए कि यह इलाका वशिष्ठ अनूप का तो नहीं ही है, कविताई का भी नहीं है। लेकिन भला कि वे इस मामले में इधर भी उतने ही अकुण्ठ, अकृपण और उतने ही साफगो हैं। प्रेम के फेर में ही सत्ता–संस्कृति से उनका तेर–मेर है, प्रेम से मुँह फेर कर वह नहीं है। उस प्रेम की उमड़न बेशक नदी–पेड़–पहाड़, उड़न्त–बुड़न्त–चरन्त जीव–जगत, दबी–कुचली मानवता– बहुत कुछ के लिए बहुत कुछ से लड़ते–भिड़ते हुए है और इसके साथ ही उसके लिए भी जिसे देखा तो "देखा कि एक फूल बोलता है किस तरह" और जिन आँखों ने देखा, उनका "हाल ये है कि अजब हाल अब हमारा है, अब तुम्हारी ही हो गई हैं हमारी आँखें"। यही नहीं, "जो आँख बन्द हुई दिल में तुम्हें ही देखा, खुली निगाह तो तुम्हें ही देखना चाहा"। चाहतें तो खैर, चाहने वालों की हुआ ही करती हैं, एक–से–एक, यहाँ उन एक–से–एक के दो उदाहरण, जो उन पर इस कवि की एक अपनी छाप छोड़ते हैं,

एक तो कि "तेरे सीने में तेरे दिल–सा धड़कना चाहा" और दूसरा कि "तेरे लबों पे हँसी बन के थिरकना चाहा"। इस 'दिल तेरे' में 'धड़कने अपने' और 'लब तुम्हारे' पर हँसी बन कर 'थिरकने अपने' जैसी चाहतों में मीठपन जितना है, ढीठपन उससे कम नहीं है। और कुछ कम तो यह आशिकीय आत्मविश्वास भी नहीं है कि "हरेक शै में तुम्हें हम ही नजर आएँगे / झुकी निगाह तो हम दिल में उतर जाएँगे /...मिटा दो शौक से हमको, मगर ये याद रहे / हम इसके बाद तुम्हें याद बहुत आएँगे"। कि "जैसे को तैसा–सा उत्तर मैं भी दे सकता हूँ, फिर मत कहना मैंने तेरी नींद चुराई है"। फिर यह दरियादिली ही कहाँ कम है कि "कई नाम रक्खे हैं हमने तुम्हारे, तुम्हें जो पसन्द हो हमें भी बताना" ! उसी दरियादिली की एक कड़ी यह भी है कि हमें तो खैर, तुम्हारी बहुत याद आएगी, तुम्हें छूट है, मर्जी हो तो याद करना, न हो तो मत करना। अपने बावलेपन को प्रीति के नाम मढ़ देने का एक जो मीरा–मन है, उसकी झलक तो जहाँ कहीं हो, मोह ही लेती है, "तुम्हारे बिना मानती ही नहीं यह, करे क्या कोई प्रीति ही बावरी है"। प्रिय के एक गैरमुनासिब बर्ताव को लेकर यह सवालिया शिकायत भी वाजिब है कि "मेरे घर जब कभी आता–जाता नहीं, मेरे ख्वाबों में फिर आता–जाता है क्यों ?" यह प्रेम कैसे हमें जगत–जीवन का प्रेमी बना देता है, सुन्दरतर कर देता है अग–जग, इसकी ढेर सारी झलकियाँ अनूप जी के यहाँ मिलती हैं– "इधर उसने धीरे से पलकें उठाईं, उधर कुछ परिन्दे उड़े फड़फड़ाकर"। उधर दुलहन ने कंगन बजाकर बुलाया, इधर "पकी बालियाँ खनखनाने लगी हैं"। और, "अजब–सी खुशबू भरी हवा में, अजब नशा है घुला फिजाँ में / भले चलो तुम छिपा के खुद को, जिधर से गुजरो वो राह बोले"।

चलते–चलते, चुपचाप, कुछ मंद्रस्वर बतकहियाँ सुन लेते हैं। "ये जहान और हसीन हो इसे मिल के आओ सँवार दें / जो हुआ वो क्यों कैसे हुआ यह फिक्र करना फिजूल है।"... "वो जाते–जाते इक पल को ठिठक कर देखना तेरा / पलट कर फिर भरे मन से वो जाना याद आता है।"... "प्यार की उम्र, ओस के मोती / टूट जाना है, फिर पिरोना है।"..."बहुत चुपके से कोई दिल में आकर बैठ जाता है / कभी भी सूचना देकर ये बीमारी नहीं आती...।" और वह शेर, जिसे इस प्रकरण–वशेष के मक्ते के तौर पर पेश करना है–

संन्यासियों की बात तो मुझको नहीं पता
मैं प्यार को अलगा नहीं पाया शरीर से

★

जन-मन की अन्विति और ये ग़ज़लें

प्रो. अनिल कुमार राय

हिन्दी ग़ज़ल की प्रतिष्ठा में प्रो. वशिष्ठ अनूप की रचनाशीलता का विशिष्ट महत्त्व है। एक प्रगतिशील–जनपक्षधर ग़ज़लकार के रूप में पिछ्ले चार दशकों से भी ज्यादा समय से प्रो. अनूप की रचनात्मक सक्रियता अनवरत बनी हुई है। ये निरन्तर लिख रहे हैं और अच्छा लिख रहे हैं। प्रायः यह दोनों एक साथ सम्भव नहीं हो पाता कि आप निरन्तर लिखें और अच्छा भी लिखें, बल्कि निरन्तर अच्छा लिखें। पर, इन्होंने इसे सम्भव कर दिखाया है। एक सक्रिय और सजग रचना–विवेक के बिना यह नहीं सम्भव हो पाता। जहां यह विवेक निष्क्रिय, शिथिल अथवा अनुपस्थित हो जाता है, वहां रचना की स्तरीयता और निरंतरता का संतुलन टूट जाता है। वहां संख्यात्मक उल्लेख के लिए रचनाओं की सूची तो होती है, पर पढ़ने और समझने के लिए कुछ नहीं होता। प्रो. अनूप ने अपनी ग़ज़लों के प्रति एक तटस्थ और कठोर समीक्षा–दृष्टि से लगातार अच्छा लिखते रहने का यह रचनात्मक सन्तुलन उपलब्ध किया है।

प्रो. वशिष्ठ अनूप ने अपनी सर्जनात्मकता से अपने पाठकों को बराबर आश्वस्त किया है। इनके लिए भी यह संतोष और प्रसन्नता का विषय होगा कि इस बीच इनकी ग़ज़लों के अनेक महत्त्वपूर्ण संकलन प्रकाशित होकर पाठकों के बीच तो पहुंचे ही हैं, इस विधा से जुड़े हुए अध्येताओं–समीक्षकों और रचनाकारों के बीच भी इन्होंने अपनी रचनाशीलता के प्रति व्यापक स्वीकृति अर्जित की है। संकलनकर्ताओं और संपादकों ने इधर प्रकाशित होने वाले अनेक चर्चित संग्रहों और पत्र–पत्रिकाओं के विशेषांकों में इनकी ग़ज़लों को ससम्मान सम्मिलित किया है। देश के विभिन्न हिस्सों के कई जनपक्षधर सामाजिक संगठनों, साहित्यिक–सांस्कृतिक संस्थाओं और कला–समूहों ने अपनी राष्ट्रव्यापी नाट्य–संगीत प्रस्तुतियों और आयोजनों में इनकी ग़ज़लों का उपयोग किया है। फिल्मों और वृत्तचित्रों में इनके जन–उद्‌बोधन और क्रान्तिकारी आह्‌वान के गीत इस्तेमाल किए गए हैं तथा कई उच्च शैक्षणिक संस्थानों में इनकी ग़ज़ल रचना–यात्रा को शोध और अध्ययन का विषय बनाया गया है।

प्रो. अनूप के लिए उनका ग़ज़ल–साहित्य कोई निजी और एकांतिक किस्म का बौद्धिक उत्पाद नहीं है। उनकी विकास–यात्रा से सुपरिचित लोगों के लिए यह अज्ञात नहीं है कि यह साहित्य उनके सोद्देश्य रचना–कर्म का परिणाम है। विद्यार्थी जीवन से ही उनकी पहचान साहित्य के एक सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता की रही है। समाज–संस्कृति और राजनीति के चिन्तन और कर्म के क्षेत्र में मौजूद अपने समय की कई नई–पुरानी पीढ़ियों के साथ सघन संवाद और बौद्धिक–वैचारिक अंतःक्रिया में उनका रचना–मानस निर्मित हुआ है। साहित्य–चेतना के समाजीकरण ने उनकी ग़ज़लों की एक स्पष्ट वैचारिक दिशा निर्दिष्ट की है। निश्चय ही, यह उनकी गज़लों की शक्ति और सौन्दर्य का एक बड़ा स्रोत है। प्रो. अनूप की सोद्देश्य वैचारिक प्रतिबद्धताओं को ध्यान में रखे जाने से उनके साहित्य–कर्म की प्रेरणाओं और प्रयोजन के साथ उसके सामाजिक चरित्र से जुड़े हुए बहुत सारे पक्षों पर प्रकाश पड़ता दिखता है। गीत– गजल, काव्य–मंच, कलात्मकता, संवाद और सम्प्रेषण के प्रश्नों को व्यावहारिक सामाजिक–राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में ग्रहण करने वाले उनके आरम्भिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर ही उनकी रचनाशीलता के मूल्य और महत्त्व पर विचार किया जाना चाहिए। प्रो. अनूप ने साहित्य और समाज के अंतर्निर्भर सम्बन्धों की प्रगतिशील–जनवादी समझ के साथ अपनी युवावस्था में जो यात्रा आरम्भ की थी, बाद के वर्षों में भी वह न तो स्थगित हुई, न ही निरस्त। वह अपनी मूल अंतर्वस्तु से बिना कोई विचलन लिए, किसी–न–किसी रूप में लगातार जारी रही है। बीच के दो दशकों का इतिहास तो इनके सामाजिक–सांस्कृतिक प्रयोग का इतिहास है। काव्य–मंच इनके लिए कविता की प्रयोगशाला रही है। स्पष्ट संवाद और संप्रेषण इनकी गज़लों का अपरिहार्य काव्यात्मक मूल्य है। समाज की चेतना का जनवादी रूपांतरण इनके ग़ज़ल–साहित्य का एक बड़ा सरोकार है।

इस सरोकार के सन्दर्भ में प्रो.वशिष्ठ अनूप की गजलों के बारे में विचार करने की ज़रूरत है। अपनी अभिव्यक्ति के लिए इन्होंने गीत–गजल जैसी जिन विधाओं का चुनाव किया है, उनका तर्क–सूत्र इससे जुड़ता हुआ दिखता है। वे एक संप्रेषणीय और संवादधर्मी विधा के तौर पर गीतों और गजलों के चयन का औचित्य

प्रतिपादित कर सकते हैं। जनपक्षधरता और सामाजिक प्रतिबद्धता का एक बहुत मजबूत तार्किक आधार इनके पास है। अपनी सामाजिक कार्य–योजनाओं के सापेक्ष उपयोगी और प्रभावशाली साहित्य–रूप के चयन के औचित्य–निरूपण का स्पष्ट तर्कशास्त्र यदि इनके पास है, तो यह इनकी भूमिका और योगदान के मूल्यांकन के लिए अर्थपूर्ण है। विडम्बना है कि अनेक कवियों–लेखकों के पास यह नहीं है। आपने अपनी अभिव्यक्ति के लिए यही साहित्य–रूप क्यों चुना है, इस प्रश्न का उत्तर बहुतों के पास नहीं है। यदि होगा भी, तो या तो वह उनकी अपनी रुचि और क्षमता से जुड़ा नितान्त व्यक्तिगत उत्तर होगा, या युक्तिपूर्वक खोजा और सायास गढ़ा हुआ एक 'आदर्श उत्तर'। एक ऐसा उत्तर, जिसे चतुराई से कहीं भी फिट किया जा सकता है !

वस्तुतः यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। साहित्य–रूप या विधा के चयन का सम्बन्ध केवल व्यक्तिगत दक्षता से है, या उसके चयन का कोई व्यापक सामाजिक औचित्य भी हो सकता है ? प्रो.अनूप के पास इस प्रश्न का उत्तर है। इस सन्दर्भ में पहले ही यह स्पष्ट किया जा चुका है कि उनकी गज़लें एक सामाजिक कार्यकर्ता मन की उपज हैं। उनके सामने उनकी रचनाओं का लक्ष्य–समूह या संबोध्य समुदाय एकदम स्पष्ट और मूर्त्त है। उनके लिए उनकी रचनाएं वे प्रत्यक्ष कारगर औजार हैं, जिनके माध्यम से वे जन–चेतना को जाग्रत और संगठित करना चाहते हैं, उसे संघर्षशील बनाना चाहते हैं। वे इस मामले में भी स्पष्ट हैं कि जनता के इन वैचारिक–भावात्मक उपकरणों को सीधे जनता तक पहुंचना भी चाहिए। साहित्य के इन औजारों को जनता तक पहुंचाने के लिए वे अतिरिक्त उद्यम भी करते हैं। अनेक लोगों को प्रो. वशिष्ठ अनूप का यह तर्क, उनका रचना–प्रयोजन और उसे उसके लक्ष्य तक ले जाने के उद्यम से सम्बन्धित उनका खयाल अत्यंत भोला और रोमानी प्रतीत हो सकता है। कला–साहित्य से इतनी प्रत्यक्ष सामाजिक भूमिका की मांग और उसके प्रति इस तरह का कोई अविचल विश्वास उन्हें एक रूमानी और भावुक अतिरेक लग सकता है, पर यह तो वे भी अस्वीकार नहीं ही करेंगे कि समाज से साहित्य के गहरे अंतःसम्बन्धों और उनकी परस्पर द्वंद्वात्मक प्रभाव–प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में इस प्रश्न को लाए बिना रचना–कर्म पर कोई भी बात सम्भव नहीं हो सकती। प्रो. अनूप की धारणा में यह अंतःसम्बन्ध या प्रभाव–प्रक्रिया कुछ अधिक ठोस, मूर्त्त और परिणामी है। इसीलिए वे अपने लिए गीत–ग़ज़ल जैसी विधा का चयन करते हैं। ये गीतात्मक विधाएं उनकी दृष्टि में अधिक संप्रेषणीय और प्रभावी हैं। सम्प्रेषण और प्रभावोत्पादकता से जुड़ा हुआ उनका रचना–प्रयोजन उनके लिए इतना अपरिहार्य और सुनिश्चित है कि वे अपनी अनेक ग़ज़लों या उनके शेरों में उसके लिए अपेक्षित कलात्मक शर्तों को कहीं–कहीं शिथिल करते हुए भी दिख सकते हैं। पर, कला के उपकरणों के इस्तेमाल में कुछ जगहों पर दिख जाने वाली यह शिथिलता उनकी अक्षमता, सीमा या विफलता नहीं, बल्कि उनकी वह रचनात्मक सजगता है, जो कथ्य को अमूर्तन अथवा कलावादी विचलन से बचा ले जाती है। इनकी ग़ज़लों को पढ़ते हुए यह अनुभव करना भी कठिन नहीं है कि एक दुर्लभ सादगी के साथ उपलब्ध वृहत्तर जन–संवादधर्मिता इनका एक महत्तर सर्जनात्मक मूल्य है। ग़ज़ल के मूल स्वभाव में अविच्छिन्न रूप से विन्यस्त उसकी अर्थ–सांकेतिकता की रक्षा करते हुए वैचारिक गम्भीरता और संप्रेषणीयता के बीच के कलात्मक सन्तुलन को सम्भव करने का उनका रचनात्मक संघर्ष भी उनकी एक बड़ी उपलब्धि है।

विधा के चयन की यही समस्या कभी दुष्यंत कुमार के सामने भी आई थी। इसी समस्या के मद्देनजर दुष्यन्त की गज़लें अपने समय की प्रचलित और स्थापित कविता–संरचना से असंतुष्ट एक कवि का नया प्रस्थान थीं। उस दौर की हिन्दी कविता के रूप–विन्यास से सम्बन्धित सीमाओं को गहराई से अनुभव करते हुए दुष्यंत कुमार ने ग़ज़लों को अपनी काव्यात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था। तत्कालीन कविता की असंप्रेष्यता से जुड़ी हुई समस्याओं तथा पाठकीय आधार के सिमटते जाने से उपजी हुई चिन्ताओं के वातावरण में उन्होंने ग़ज़लों का रचनात्मक विकल्प उपलब्ध किया था। दुष्यंत के लिए यह ग़ज़ल नहीं, जनता से संवाद करने वाली वाणी थी। उनका कहना था कि 'कविता में बौद्धिकता का छद्म कविता को पाठकों से दूर करता गया है। कविता और पाठक की बीच आज जितनी दूरी है, उतनी पहले कभी न थी। इससे भी ज्यादा चिंता की बात यह है कि कविता धीरे–धीरे अपनी पहचान और कवि अपनी शख्सियत खोता गया है। ऐसा लगता है कि गोया दो दर्जन कवि एक ही शैली और शब्दावली में एक ही कविता लिख रहे हैं। इस कविता के बारे में कहा जाता है कि यह सामाजिक और राजनैतिक क्रान्ति की भूमिका लिख रही है। मैं नहीं समझ पाता कि जो कविता लोगों तक पहुंचती ही नहीं, वह किसी क्रांति की संवाहिका भला कैसे हो सकती है?' इन्हीं प्रश्नों और द्वंद्वों के बीच

दुष्यन्त कुमार ने एक जन–संप्रेषणीय विधा के रूप में ग़ज़ल को अपनी अभिव्यक्ति के लिए स्वीकार किया था। विधा के चयन के इस सामाजिक तर्क के साथ ही दुष्यंत ग़ज़ल को सल्तनत के नाम बयान कह सकने की वैधता अर्जित कर सकते थे। दुष्यन्त की समकालीन और परवर्ती रचनाकार पीढ़ी में भी ग़ज़ल के प्रति आकर्षण के पीछे दुष्यन्त वाला तर्क ही मौजूद रहा है। प्रो. वशिष्ठ अनूप एक ग़ज़लकार के रूप में दुष्यन्त कुमार की ही तर्क–परम्परा के रचनाकार हैं। कविता को व्यापक पाठक–श्रोता समुदाय से जोड़ने और अपनी प्रगतिशील योजना के अनुरूप जन–चेतना के निर्माण की आकांक्षा में प्रो. अनूप ग़ज़लों तक की यात्रा पूरी करते हैं ।

अपने समय, समाज और संस्कृति के महत्वपूर्ण प्रश्न प्रो.अनूप की ग़ज़लों में मौजूद हैं। यह किसी भी चिन्तन और सृजन के मूल्यांकन का एक ज़रूरी आधार है कि उसमें अपने समय की आलोचना उपस्थित है या नहीं! इस सन्दर्भ में यह आश्वस्तिकर है कि इनकी ग़ज़लें समकालीन मानवीय सभ्यता और उसके संकटों की वस्तुपरक समीक्षा की तरह अपने पाठकों का विश्वास अर्जित करती दिखती हैं। इन ग़ज़लों में सामाजिक समस्याओं और उनसे सम्बद्ध चिंताओं का एक व्यापक परिदृश्य उपस्थित है। सब कुछ तबाह होता जा रहा है, आम आदमी की जिंदगी दुश्वारियों की गिरफ्त में है... "कुछ पलों के बाद क्या होगा, सिहरता सोचकर मैं/ एक हिरन के मेमने को शेरनी दुलरा रही है/ क्या हुआ कि चांदनी में जिस्म अब जलने लगे/ यह अजब बारिश हमें तेजाब से नहला रही है।" लोकतांत्रिक कही जाने वाली सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था की अपनी उपलब्धियों के बारे में किए जा रहे तमाम चतुर–मोहक विज्ञापनों के दौर की सचाई तो यह है कि– "फूल की खुशबू, हवा की ताज़गी खतरे में है / लोकगीतों की खनकती रागिनी खतरे में है / लोग अब करने लगे हैं यूं अंधेरे को नमन/ चांदनी सहमी हुई है/ रोशनी खतरे में है।" इन कठिनाइयों और चुनौतियों में भी वे उम्मीद के चिराग़ रौशन रखने वाले ग़ज़लकार के रूप में मुस्तैद खड़े दिखते हैं। तेज़ तूफानी हवाओं में भी हौसले और हिम्मत के दीप जलाए रखने की ज़िद उनकी ग़ज़लों को एक अलग तरह की खूबसूरती बख्शती है– ''आंधियां तेजतर हुई जातीं / दीप की लौ को टिमटिमाना है।" इस ग़ज़लकार की ख्वाहिश उसके इस शेर में देखी जा सकती है– "ये धर्मों के झगड़े, ये दिलों की लकीरें/ जरा प्यार का रंग इनपर चढ़ाना/ ये दुनिया बहुत खूबसूरत है साथी/ इसे और खूबसूरत बनाना। "दुनिया को सुन्दर बनाने के ख्वाब देखने वालों पर लिखा हुआ यह शेर खुद इस ग़ज़लकार के बारे में कितना सच लगता है– "इक ऐसे दौर में जब नींद बहुत मुश्किल है/ अजीब शख्स है ख्वाबों की बात करता है। "यह विस्मय और विसंगति का रेखांकन नहीं, इतिहास की अपरिहार्य अपेक्षाओं की अभिव्यक्ति है।

अपनी हजारों–हजार ग़ज़लों के बीच प्रो. वशिष्ठ अनूप एक ऐसे परिवर्त्तनकामी स्वप्नदर्शी जन–कवि का व्यक्तित्व अर्जित करते नज़र आते हैं, जो अपनी वर्त्तमान सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था के प्रति गहरे क्षोभ और असंतोष से भरा हुआ है और उसे बदल देना चाहता है। प्रो. अनूप की ग़ज़लों के भीतर से उभरते हुए नए प्रतिसंसार में न्याय, समानता और बंधुत्व के परस्पर आत्मीय सम्बन्धों से निर्मित स्वाधीन मानवीय समाज की ही तस्वीर नहीं मौजूद है, बल्कि उसमें राग और श्रृंगार के स्वस्थ–सक्रिय जीवन–उत्सव का व्यापक प्रसार भी है– "इधर उसने धीरे से पलकें उठाईं / उधर कुछ परिंदे उड़े फड़फड़ाकर / झपकने से इनकार करती हैं पलकें/ कमल झील से एक निकला नहाकर/ बहुत भोला–भाला है, मासूम–सा है/ मगर ले गया मुझको मुझसे चुराकर।" एक संवेदनशील, उदात्त और लोकतांत्रिक दुनिया में प्रेम और सौन्दर्य के भावात्मक परिसरों के निर्माण का स्वप्न देखने वाले ग़ज़लकार की छबि प्रो.अनूप की शख्सीयत को और खूबसूरत बना देती है। यहां वे रूढ़ यथार्थवादी साहित्य–दृष्टि के दायरे से बाहर निकलकर उसका विस्तार करते हुए एक बेहद ज़रूरी भूमिका में नज़र आते हैं। जीवन को उसकी विविधता, व्यापकता और गहराई में देखने वाले साहित्य–सर्जकों ने रचनात्मकता के लिए गतिरोध पैदा करने वाली बहुत सारी स्थिर और जड़ धारणाओं को समय–समय पर तोड़ा और अतिक्रमित किया है। प्रो. अनूप भी अपनी अनेक ग़ज़लों में यह ज़रूरी कार्यभार पूरा करते दिखते हैं। आत्मपरक और भावात्मक क्षण व्यापक सामाजिक का निषेध नहीं, उसके पूरक बन सकते हैं, इन ग़ज़लों में इसके साक्ष्य मौजूद हैं। जीवन और संसार की भौतिक–आर्थिक सचाइयों के साथ इनमें निजी और वैयक्तिक अनुभूतियों के सुन्दर भाव–तत्त्वों के लिए भी जगहें सुरक्षित हैं। वर्जित और निषिद्ध मानकर इनका बहिष्कार नहीं किया गया है। ये ग़ज़लें बताती हैं कि भौतिक और आत्मिक के समीकरण तथा दोनों की एकसाथ की उपस्थितियों में

साहित्य असम्भव नहीं है। यथार्थवाद के सर्जनात्मक विकास में इसे प्रो. वशिष्ठ अनूप की ओर से किए गए एक योगदान के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।

आत्मपरकता प्रो. अनूप की ग़ज़लों की सीमा नहीं। यह उनके विषय–वैविध्य का मात्र एक सन्दर्भ है। यह उनकी गज़लों का सर्वस्व नहीं। परम्परा, आधुनिकता और समकालीनता की समय–यात्रा में ये ग़ज़लें मुनष्यता की व्यथा–कथा, जीवन–संघर्ष और यातनादायी–उत्पीड़नकारी शक्ति–संरचनाओं के प्रकट–प्रत्यक्ष यथार्थ के साथ उनके कारकों का उदघाटन करती हैं। इस प्रक्रिया में ये नियामक व्यवस्था के प्रति वैचारिक प्रतिरोध का वातावरण भी निर्मित करती जाती हैं। यथार्थ का उदघाटन और प्रतिरोध–चेतना का विकास इनकी ग़ज़लों का स्वधर्म है। ये ग़ज़लें स्थानीय और सार्वभौमिक के रचनात्मक पर्यवेक्षण से पाठकों के भीतर अपने समय की शिनाख्त का समाजवैज्ञानिक आलोचना–विवेक भी पैदा करती हैं और समाज के त्रासद यथार्थ के उन्मूलन की व्यावहारिक उत्तेजना भी। परिवर्तनकामी चेतना में अपेक्षित साहस और विवेक के तत्त्वों का विनियोग इन ग़ज़लों को महत्त्वपूर्ण बनाता है। प्रो.वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में जिस जीवन–परिदृश्य का निरूपण किया गया है, उसकी सचाई से हम सब अपरिचित नहीं हैं। यह केवल काव्य–सत्य नहीं है। यह हम सब के अनुभव–संसार का वह सत्य है, जो हमारी विचार– प्रक्रिया में लगातार उपस्थित है और हमें चिंतित करता रहता है। पर, यह भी सच है कि इन चिंताओं के बीच प्रो. अनूप एक ऐसे रचनाकार के रूप में हमारे साथ खड़े हैं, जो जीवन में आस्था पैदा करता है और मनुष्यता के प्रति हमारा भरोसा बढ़ाता है।

निस्संदेह, प्रो. वशिष्ठ अनूप एक प्रगतिशील– जनपक्षधर ग़ज़लकार हैं। उनकी दृष्टि में समाज और साहित्य के मोर्चे पृथक नहीं हैं। इसीलिए उनकी ग़ज़लों में विचार का अनुवाद नहीं, विचार और संवेदना का सर्जनान्तरण है। वे मध्ययुगीन रुग्ण जीवन–मूल्यों के खतरों को तो पहचानते ही हैं, समकालीन नये सामाजिक द्वन्द्वों और अन्तर्विरोधों के प्रति भी सचेत हैं। पूँजी, बाज़ार, राजनीति और धर्म की सत्ता–संरचना के क्रूर वैश्विक यथार्थ को अनावृत्त करती उनकी ग़ज़लें एक वर्गचेतस विकल्प का संधान करती नज़र आती हैं। अपने परिदृश्य का आलोचनात्मक साक्षात्कार कराना मात्र इनका प्रयोजन नहीं, गहन अन्तर्विवेक के साथ समकालीन यथार्थ के क्रान्तिकारी रूपान्तरण की प्रस्तावना भी इनके लक्ष्य में है। नये साम्राज्यवादी षड़यंत्रों, उसकी छल–युक्तियों और कथित विकास की भौतिक–सांस्कृतिक दुर्घटनाओं से प्रो.अनूप का निर्भ्रांत परिचय है। यह परिचय इन ग़ज़लों को इस अँधेरे समय के वृतान्त के साथ जनप्रतिरोध का प्रामाणिक आख्यान भी बनाता है। अन्तर्वस्तु के अपेक्षाकृत नये और असुविधाजनक परिसरों में प्रवेश करने की सर्जनात्मक यात्रा में इनकी गज़लें राजसत्ता और उसके विपुल शक्तिकेन्द्रों के आतंक और वर्चस्व के विरुद्ध जनसत्ता को संगठित करने की ऐतिहासिक अपरिहार्यता को रेखांकित करती हैं।

प्रो. वशिष्ठ अनूप की गज़लों में कला का सायास वैभव नहीं, सरलता का सौन्दर्य है। अन्तर्वस्तु और भाषा के सन्तुलन का सहज समीकरण इन ग़ज़लों का एक अबाध संवादधर्मी चरित्र निर्मित करता है। त्वरित सम्प्रेषण का रचनात्मक सौन्दर्य आविष्कृत कर लेने की दक्षता प्रो. अनूप का वैशिष्ट्य है। प्रगतिशील–यथार्थवादी कवियों–गजलकारों पर यह बराबर आरोप लगाया जाता रहा है कि कथ्य की आत्यंतिक समकालीनता और सामाजिकता के आग्रहों में यहां कला–तत्त्वों के प्रति गैररचनात्मक दृष्टिकोण प्रभावी रहता है और रचनाएं उपस्थित जीवन–वृत्तांतों का स्थूल विवरण हो जाती हैं। पर, प्रो.अनूप अपनी ग़ज़लों में प्रगतिशील–यथार्थवादी अंतर्वस्तु की संवादधर्मिता और संप्रेषणीयता के प्रति अपने गहरे आकर्षण के बावजूद जिस तरह इस आरोप का प्रत्याख्यान रचते हैं,वह उन्हें एक बेहद सजग गजलकार के रूप में सामने लाता है। इस सन्दर्भ में उनके कुछ शेरों को यहां देखा जा सकता है, जिनमें कलात्मक रूप से दक्ष एक ग़ज़लकार का अपना विशिष्ट रंग मौजूद है– "मैं चुप हूं और बातें कर रहा हूं/अजब यह गुफ्तगू है, खामुशी है/मैं अपना दर्द साझा कर रहा हूं/तुम्हें लगता है यह भी शायरी है।" संप्रेष्य संवाद और ग़ज़ल की संकेतधर्मिता, इस समीकरण के कितने सारे साक्ष्य इन ग़ज़लों में देखे जा सकते हैं– ''गांव से गांव की खूबियां खो गईं/मुझसे जो भी मिला, वह सयाना मिला/ इक खुशी खो गई थी, यहीं पर कहीं/उसको ढूंढा बहुत पर पता ना मिला।" संवाद, संप्रेषण सरलता और सादगी के साथ कथन–भंगिमा, अर्थ–संकेत, व्यंजना और प्रभाव जैसे काव्य–तत्त्वों के सहज कलात्मक संश्लेष में रची गईं इन ग़ज़लों का सौन्दर्य प्रो. अनूप के ग़ज़लकार व्यक्तित्व को महत्त्वपूर्ण बनाता है।

वशिष्ठ अनूप के गीत-ग़ज़ल

डॉ. बलभद्र

(1)

तुलसी के, जायसी के, रसखान के वारिस हैं...

वशिष्ठ अनूप हिंदी के एक सतत सक्रिय गीत–ग़ज़लकार हैं। वे एक ऐसे रचनाकार हैं जो गीत–ग़ज़ल की रवायत से अच्छी तरह वाकिफ हैं। उर्दू–हिंदी ग़ज़ल की आपसदारी और उनके तकनीकी मामलों के भी जानकार हैं। कहने का तात्पर्य यह कि उनके गीतों और ग़ज़लों में उनका यह ज्ञान बहुत काम आया है। गीत और ग़ज़ल को ले कर आजकल यह सवाल प्रमुखता से उठने लगा है कि हिंदी–गीत–ग़ज़ल को क्यों सम्पूर्ण हिंदी–काव्य परिदृश्य से अलग–थलग समझा जाए। क्यों न इनको हिंदी के काव्य–रूप के रूप में लिया जाए? इसको ले कर खुद गीत–ग़ज़लकारों के साथ–साथ इन विधाओं पर सोचने–विचारने और बतौर आलोचक काम करने वाले रचनाकारों का गंभीर रचनात्मक हस्तक्षेप देखने को मिल रहा है।

राम कुमार कृषक की पत्रिका 'अलाव' का हाल–फिलहाल प्रकाशित ग़ज़ल की आलोचना पर केंद्रित अंक इस लिहाज से काफी महत्व का है। इस अंक में पंकज गौतम का एक बढ़िया आलेख है जिसका शीर्षक है 'आलोचना की समस्याएँ और कुछ ग़ज़लकार'। इस आलेख में कुछ प्रमुख ग़ज़लकारों की ग़ज़लों की विषय–वस्तुओं के साथ–साथ अन्य कई महत्वपूर्ण पहलुओं पर बातें हुई हैं। इसमें शिव कुमार पराग और वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों पर भी बातें हुई हैं। शिव कुमार पराग के बारे में लिखते हैं – शिव कुमार पराग संभवतः अकेले ग़ज़लकार हैं, जो हिंदी–उर्दू की भाषिक संरचना और रवायत के झंझट में नहीं पड़ते। अपने कथ्य के अनुरूप शिल्प–निर्माण की उनमें आत्मविश्वास भरी सलाहियत है।" पराग के बाद वे वशिष्ठ अनूप के बारे में लिखते हैं – "परंपरा की गहरी समझ और उसे आत्मसात कर ग़ज़ल के रचना–संसार में प्रवेश करने वालों में वशिष्ठ अनूप का नाम महत्वपूर्ण है, पर पराग जैसी विडम्बना के वे भी प्रायः शिकार हैं।" पंकज गौतम ने शिव कुमार पराग के सम्बंध में लिखा है कि उनको जिस तरह पढ़ा–समझा जाना चाहिए, वह नहीं हो रहा है और वशिष्ठ अनूप के सम्बंध में पराग का जिक्र करते हुए जो कहा है उसका जिक्र ऊपर हो चुका है। सचमुच ये दोनों हमारे समय के महत्वपूर्ण ग़ज़लकार हैं। दोनों ग़ज़लकार के साथ–साथ गीतकार भी हैं और यह भी उल्लेखनीय है कि हिंदी के साथ–साथ भोजपुरी में दोनों ने गीत भी लिखे हैं। ऐसा महसूस हो रहा है कि इन दोनों की हिंदी ग़ज़लें भाषा के स्तर पर भोजपुरी से बहुत लेन–देन रखती हैं और केवल भाषा के स्तर पर ही नहीं, लोकजीवन और लोकसंस्कृति से सघन–सजीव संवाद कायम करते हुए सम्भव होती हैं। हिंदी–ग़ज़ल के पाठ और समझ का जो एक अब तक का मिजाज है, वो इस 'देसीपन' को ढंग से स्वीकार नहीं कर पा रहा है।

वशिष्ठ अनूप हिंदी ग़ज़ल के बारे में कहते भी हैं – "निष्कलुष प्यार की भीनी–भीनी महक, ताजगी जैसे बच्चों की निश्छल हँसी/ इसमें शामिल है माटी का कुछ सोंधापन, खूँ–पसीने से हमने सँवारी ग़ज़ल।" वे हिंदी ग़ज़ल की वैचारिकी और संवेदना को हिंदी कविता की वैचारिकी और संवेदना से जोड़ कर देखते हैं– "प्यार मीरा घनानंद रसखान का, पीर इसमें कबीरा निराला की है।" साथ ही, हिंदी–ग़ज़ल की उत्तरोतर समृद्ध होती स्थिति की ओर भी संकेत करते हैं– "आज है अपनी कुटिया की रानी बनी..।" ध्यान देने की बात है कि यहाँ 'कुटिया की रानी' कहा गया है। यहाँ हिंदी–ग़ज़ल की विषयवस्तु के साथ ही उसकी वर्तमान स्थिति की ओर संकेत है। उपर्युक्त पंक्ति के आधे के बाद है – "कल भिखारिन–सी थी दसदुआरी ग़ज़ल।" यहाँ मेरा ध्यान 'दसदुआरी' पर गए बिना नहीं रहा। रेणु की एक प्रसिद्ध कहानी है 'रसप्रिया'। उसमें इस 'दसदुआरी' का प्रयोग हुआ है 'मिरदंगिया' जैसे एक लोककलाकार के लिए, जिसकी हालत भिखारी जैसी हो गई है। एक लोककलाकार की हालत कई वजहों से दसदुआरी जैसी हो जाती है।

विषयवस्तु और भाषा–शिल्प के मामले में जो वैविध्य दिख रहा है, वो ग़ज़ल की उत्तरोत्तर समृद्धि का सूचक है। साहित्य की एक विधा लोकजीवन और लोकसंवेदना से जुड़ कर कई चुनौतियों के बावजूद सम्पन्नता की ओर अग्रसर है। वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में लोक और उसका जीवन अपने विविध तुक–तालों में सृजित है। लोक के रागात्मक और द्वंद्वात्मक अन्तर्सम्बन्धों की ऐसी उपस्थिति है कि उसको हिगरा कर समझना कठिन है। ऐसा उचित भी नहीं है।

वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में आम आदमी के जीवन–संघर्षों की विश्वसनीय अभिव्यक्ति है। हर कोई हर रोज अपनी जिंदगी में होता है, होना चाहता है। जिसकी जैसी स्थिति होती है, उस हिसाब से वो अपना तौर–तरीका तय करता है, उसे जीता भी है। इस तय करने और जीने में वर्गीय स्थितियों की अहम भूमिका होती है। गरीब–गुरबों को अपने लिए जो तय करना होता है, वो बहुत कुछ अपने वश में न हो कर किसी और के वश में होता है। वो सब कुछ एक आदमी की तरह चाहता है, सुख–सुविधा, मान–सम्मान, हँसी–खुशी के अवसर – सब कुछ। पर, यह सब उसके लिए संभव नहीं हो पाता है। हमेशा उसके साथ छल हुआ है। बहुत पीछे न भी जाया जाए तो आजादी के बाद से ले कर आज तक के इस कड़वे सच को कोई नकार नहीं सकता है। साहित्य की किसी भी विधा में इस वास्तव की उपेक्षा नहीं हुई है। हिंदी–ग़ज़ल ने भी इस वास्तव का अनदेखा नही किया है। बल्कि, उससे टकराते हुए ही उसने अपनी अग्रगति हासिल की है। इस दिशा में उसे बहुत कुछ खुद को भी बदलना पड़ा है। नई–नई चुनौतियों के बरक्स अपने को भी कई तरह से माँजना पड़ा है। कई वरिष्ठ ग़ज़लकारों के साथ–साथ वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में भी यह सब देखने को मिलता है। इनकी ग़ज़लों में जूझता हुआ इंसान दिखाई देता है। सोचता हुआ। सोचना जूझने की बुनियादी प्रक्रिया है। जूझते इंसान की तरह ग़ज़ल भी जूझती हुई दिखती है। लोक से संवाद कायम करती, उस पर रीझती हुई भी और उसको उसके वस्तुगत संदर्भों में समझती हुई भी। यहीं से वो अपने कथ्य की विश्वसनीयता अर्जित करती है। एक शेर है–

"आंखें टिकी हैं जब भी दहकते सवाल पर
थप्पड़ लगे हैं तेज विचारों के गाल पर।"

कविता को हिंदी के कई कवियों ने अपने ढंग से कविता के शिल्प में परिभाषित किया है। वशिष्ठ अनूप ग़ज़ल को ग़ज़ल में परिभाषित करते दिखते हैं। लिखते हैं–

'कहते हैं ग़ज़ल जिसको शबनम भी है शोला भी
आक्रोश है धनिया का, होरी का पसीना है। "

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह ग़ज़ल का भी अपना समकाल होता है। बदलते जीवन–यथार्थ से उसका आत्मीय और आलोचनात्मक रिश्ता होता है। ऐसा किसी एक या खास दौर में नहीं होता। मीर, ग़ालिब, नजीर की रचनाओं में भी उनके दौर का बहुस्तरीय यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है और आज की ग़ज़लों में आज का। वशिष्ठ अनूप लिखते हैं–

"कौन कहता है कि आकाश–फल है ग़ज़ल
वक्त के रूबरू आजकल है ग़ज़ल।"

वे तो ग़ज़ल को समझते–समझाते अपने अंदाज में उसे एक काव्य–विधा के रूप में न केवल स्वीकृति देते हैं, बल्कि इसकी घोषणा भी कर देते हैं। जिसको ले कर बहस जारी है, ग़ज़लाधारित बहस का एक समाधान ग़ज़ल में ही पेश करते हैं–

"कैसे जीवन से कविता जुड़ेगी पुनः
प्रश्न का एक सीधा–सा हल है ग़ज़ल।"

कविता जीवन से तभी जुड़ेगी जब उसमें जीवन की सहज–सटीक उपस्थिति होगी और वह लयात्मक होगी, सांगीतिक और ग़ज़ल इस लिहाज से एक समर्थ काव्यरूप है। वे तो सुंदर जगत के सृजन के लिए शब्द–संसार में ग़ज़ल को एक पहल मानते हैं। वरिष्ठ आलोचक मैनेजर पांडेय ने 'अलाव' के ग़ज़ल केंद्रित विशेषांक में मो. जाहिदुल दीवान के एक प्रश्न के उत्तर में इस बात का जिक्र भी किया है – "देखिए, कविता वह होती है, जो सुर में पढ़ने वालों की स्मृति में बसी रहे। इसे कविता को नया जीवन मिलता है। इसी प्रक्रिया में आज भी तुलसीदास, कबीरदास की कविता जनता की कविता बनी हुई है। वह कविता

(मतलब कबीर और तुलसी की कविता) जनता को संकट के समय, समस्या के समय याद आती है और काम आती है। यह जो स्मृति में बसने और बसी रहने की क्षमता कविता में होती है, वह प्रायः छंद से ही आती है। हिंदी की जो समकालीन कविता है, वह पाठकों की स्मृति में तो नहीं ही रहती; अधिकांश कवियों की अपनी स्मृति में भी नहीं रहती।.... लेकिन, ग़ज़लों में छंद के कारण यह संभावना है कि वह श्रोता और पाठक की स्मृति में रहे और स्वयं कवि की भी स्मृति में हो तो सीधे संवाद की तरह श्रोता तक पहुँच सकती है।"

मैनेजर पांडेय के साथ–साथ वरिष्ठ कवि नरेश सक्सेना को भी ऐसा कहते हुए कई बार सुना है। किसी आलोचक, किसी कवि अथवा किसी विद्वान की बात उद्धृत न भी की जाए तो भी यह बात आसानी से देखी–समझी जा सकती है कि तुलसी, सूर, कबीर, मीरा, रहीम की कविताओं की पंक्तियों को लोग बात–बात में सुना देते हैं। उसी तरह से ग़ालिब, अकबर इलाहाबादी के साथ–साथ और कई शायरों की पंक्तियों को भी। इधर के कवियों में सबसे अधिक गोरख पांडेय लोकप्रिय हुए। मतलब की लय–छंद के साथ–साथ कविता कहिए या ग़ज़ल उसमें जीवन की उपस्थिति अनिवार्य है, साथ ही साथ मनुष्यता के पक्ष में होना भी एक अनिवार्य शर्त है। वशिष्ठ अनूप जब ग़ज़ल को सुंदर सृष्टि के लिए एक 'पहल' मानते हैं और कविता को जन–जीवन से जुड़ने–जोड़ने की बात ग़ज़ल के शिल्प में कहते हैं तो हमें निश्चित रूप से जानना होगा कि वे किसी हड़बड़ी या किसी आग्रह के दबाव में नहीं कहते।

वे ग़ज़ल को खेत, किसान, माँ, पिता, घर–आँगन, हाट–बाजार, प्रेम, बिछोह के साथ–साथ गरीबों के दुःख–दर्द, उनके शोषण–उत्पीड़न तक ले जाते हैं। सत्ता के अमानवीय कृत्यों को उजागर करते हुए जन–प्रतिरोध की तसवीरों को भी सहेजते हैं, उनको स्वर देते हैं। आदिवासी समूहों की तरफ भी उनकी दृष्टि है। जल–जंगल–जमीन की वाजिब लड़ाई तक उनकी ग़ज़ल–यात्रा है। आवारा वित्तीय पूँजी के प्रसार और उसकी चहुंदिश घातक पहुँच और प्रभावों की तरफ भी उनकी दृष्टि है। हमारे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ताने–बाने के साथ–साथ अर्जित लोकतांत्रिक–संवैधानिक मूल्य और हमारे लक्ष्य, हमारी अपेक्षाएँ सब डाँवाडोल हैं। किसानों और मजदूरों की हालत बद से बदतर है। उनकी जमीन उनसे छीन कर कारपोरेट–घरानों को दी जा रही है। रोजी–रोजगार के अवसर समाप्त किए जा रहे हैं। विकास की उल्टी गंगा बहाई जा रही है–

"यह रथ प्रगति का जा रहा किस ओर है मियाँ
अंधियारा सारे देश में घनघोर है मियाँ।"

काशी को क्योटो बनाने के नाम पर काशी की मूल आत्मा को ही क्षत–विक्षत किया जा रहा है। 2014 से भारतीय राजनीति में काशी और गंगा को काफी चर्चा में ला दिया गया है। साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के लिए ऐसा किया जा रहा है। जनता की समस्याओं की तरफ नहीं, धार्मिक प्रतीकों के राजनीतिक इस्तेमाल और सत्ता की तरफ ज्यादा ध्यान है। काशी के गंगाघाटों पर हो रहे राजनीतिक रोशनीकरण भी ग़ज़ल का विषय है

"कितने घरों में अब भी पहुँचा नहीं उजाला
घाटों को रोशनी से नहला रहे हो कब से।"

2014 के बाद की राजनीति के अमानवीय, लोकतंत्र और संविधान विरोधी कारपोरेटपरस्त फासिस्ट चरित्र और उसकी कारगुजारियों को ले कर वशिष्ठ अनूप ने काफी कुछ लिखा है–

"अभी आगाज है, कल क्या करेगा, नजर वालों को अंधा करेगा।
कमाई भी है, इज्जत भी बहुत है, कसाई धर्म का धंधा करेगा।
अभी पुरखों की थाती बेचता है, किसी दिन मुल्क का सौदा करेगा।
निशाने पर अहिंसा आ रही फिर, ये हिटलर गोडसे पैदा करेगा।
किसे है याद पहले क्या किया था, ये हर दिन एक नया वादा करेगा।"

हमारी पीढ़ी को बचपन में जो बताया–समझाया गया था और जिसकी प्रतिध्वनियाँ आज भी कहीं न कहीं, किसी न किसी मोड़ पर हम में गूँजती रहती हैं वो है 'सादा जीवन उच्च विचार।' अब उसका बिल्कुल

उलट पाठ पढ़ाया जा रहा है। सादगी को आउट ऑफ डेट करार दिया गया है और विचारों की उच्चता की जगह तिकड़म, झूठ, ठगी आदि ने ले ली है– "इन दिनों सदियों सराही सादगी खतरे में है।"

अब तो हालात इस किस्म के हो चले हैं कि हमारी लोक सांस्कृतिक विरासतों के साथ–साथ नदी, पेड़, पहाड़ और 'प्यार में डूबी निश्छल हँसी', हुनर, भोलापन और आदमीयत सब साँसत में हैं। इन बातों को उनकी ग़ज़लें कई बार कहती हैं। जो जरूरी है कहना उसको अनूप कहे बगैर नहीं रहते। जो अच्छा लगता है उसको कहते सुनना भी अच्छा लगता है। इसकी तो एक श्रृंखला दिखाई देती है। माँ के हाथों का खाना अच्छा लगना किसको अच्छा नहीं लगेगा। अपने बच्चों से किसी पिता अथवा गुरू की मनुष्योचित 'हार' को लहक कर लयबद्ध करना कोई वशिष्ठ अनूप से सीखे। दरअसल यह हार सुकूनदायी है। मुझे यहाँ भोजपुरी के कवि राम जियावन दास 'बावला' सहज ही याद आते हैं। हालाँकि, उनका थोड़ा भिन्न काव्य–संदर्भ है। उनकी एक कविता 'नमन बा' सीरीज में है जिसमें कही व्यंग्य है तो कई मानवीय करुणा और सहानुभूति। बावला ने 'डोली वाले पिछले कहार' को भी नमन किया है। वशिष्ठ जी की ग़ज़ल में दिल से उठती धिक्कार भी सुनी गई है। गलत शर्तो पर झुक कर समझौता करने पर उठने वाली यह 'आत्म–धिक्कार' कम ही सुनाई देती है। यह आत्म–आलोचना है। और यहीं पर चट से कह देते हैं– "जुल्म से जब भी लड़ी तो ज़िंदगी अच्छी लगी।" ग़ज़लों में नरम–नाजुक रोमांटिक मन–मिजाज को भी जस्टिफाई किया गया है–

कुछ सकुचाना कुछ घबराना अच्छा लगता है
तेरा हँसना फिर शरमाना अच्छा लगता है।

बाजारवाद, कारपोरेट लूट, राजनीति का भगवाकरण, मानवीय व लोकतांत्रिक मूल्य–मान्यताओं के तीव्र क्षरण, बढ़ते अपराध, दलित व महिला उत्पीड़न, कृषि क्षेत्र से किसानों का पलायन यह सब तो यहाँ है ही, इसके साथ–साथ प्राकृतिक संपदा की लूट की खुली छूट भी है और इन सबके विरोध में उठ रहे जन–प्रतिरोध के स्वर भी हैं। अनूप जी प्रतिरोध के असंगठित और संगठित रूपों और स्वरों की तरफदारी करते हैं। यह अलग बात है फिर भी बहुत मतलब की है कि प्रतिरोध को संगठित करने की कोई टेकनीक यहाँ नहीं है। वजह स्पष्ट है कि वे उस मोर्चे के अनुभव के रचनाकार नहीं हैं। पर, प्रतिरोधकामी अवश्य हैं। यहाँ देखना यह होगा कि किस जमीन पर खड़ा हो कर प्रतिरोध को पहचान देते हैं। ग़ज़लों में तो कई बार 'प्रतिरोध' शब्द की आवृत्ति–पुनरावृत्ति भी हुई है। मुझे बार –बार महसूस हो रहा है कि यह सब वे घर–परिवार और रिश्ते–नातों को नकार कर नहीं करते हैं। पारिवारिक जीवन के चित्र ग़ज़लों में देखते ही बनते हैं। खटोले पर भतीजे का मचलना देखना हो तो इन ग़ज़लों से गुजरना होगा। इसे कुछ ग़ज़ल या साहित्य–चिंतक नास्टेल्जिक कह सकते हैं। और ऐसा पहली बार तो नहीं कहा गया है। खटोला और भतीजा हो सकता है कुछ को पसंद न आए।

अपनी रचनाओं में प्रेम– मुहब्बत, मान –मनुहार, गाँव –समाज, पेड़–पौधों, फूलों, सूरज, चाँद, पशु–पक्षियों, तितलियों, भाभियों, दुल्हनों, बच्चों–बच्चियों, स्कूली बस्तों से दबे हुए बच्चों, बच्चे को पहली बार उड़ना सिखाती चिड़ियों, बेरोजगारी और जगहँसाई का दंश झेलते लाखों नौजवानों, अपमानित महिलाओं, नदियों, गिलहरियों, ऊँटों, गधों, खच्चरों, लोकगीतों और लोककथाओं की भूमि उनकी ग़ज़लों और गीतों की आधार भूमि है और उनको यकीन है कि यहीं से सत्ता–व्यवस्था को चुनौती दी जा सकती है। इन सबों के लिए ही संघर्ष जरूरी है–

"चलो कि दूब, घास, तितलियाँ बचा लें हम
शज़र बचेंगे तभी गुलसिताँ सुरक्षित है।
चलो कि ऊँट, गधे, खच्चरों की भी सोचें
ये सब रहेंगे तभी कारवाँ सुरक्षित है।"

आज की हालत ऐसी हो चली है कि आदमी की पहचान ही संकटग्रस्त हो चली है। आलीशान घर नहीं, महल और लग्जरियस जीवन–शैली ही व्यक्ति के बड़े होने की पहचान बनती जा रही है। मनुष्य छोटा होता जा रहा है–

"हजारों महल बनवा लो बहुत सी गाड़ियाँ ले लो
अगर किरदार बौना है तो खुद्दारी नहीं आती।"

'सदियों सराही सादगी' का यह एकदम उल्टा पाठ है। मुझे यहाँ थोड़ी–सी आपत्ति 'बौना' को ले कर है। शेर में जो बात है वो तो बहुत रेलेवेंट है पर, बौने जो इक्के–दुक्के हैं कहीं, उनके लिए कम से कम ऐसे प्रयोगों से बचना मनुष्यता के हक में होगा।

त्रिलोचन जी की एक कविता में तुलसी, कबीर और ग़ालिब आते हैं और ये उनके अपने हैं। ऐसा त्रिलोचन जी ने लिखा है। तुलसी से वे भाषा सीखते हैं और ग़ालिब की बोली उनकी (त्रिलोचन की) अपनी बोली है। विजेन्द्र अनिल एक भोजपुरी ग़ज़ल में लिखते हैं –"हम कबीर के बानी हमरा पानी कहाँ मिली।" वशिष्ठ अनूप लिखते हैं –

"तुलसी के, जायसी के, रसखान के वारिस हैं।
कविता में हम कबीर के ऐलान के वारिस हैं।"

एक शेर में मीरा, घनानंद और निराला का नाम लेते हैं। यह हिंदी–साहित्य की ऐतिहासिक सृजनशीलता और उसकी परम्परा की स्वीकृति के साथ–साथ उससे आत्म–संबद्धता की अभिव्यक्ति है। पर, यहाँ यह कहना भी जरूरी है कि वशिष्ठ जी यहाँ गालिब, मीर, नजीर का जिक्र नहीं कर रहे हैं। करते तो बात कुछ और ही हुई रहती। यहाँ यह भी समझना होगा कि यह हिंदी ग़ज़ल को हिंदी–काव्य धारा के अंतर्गत उसकी प्रवहमानता में एक काव्य–रूप की स्वीकृति से भी संदर्भित है।

वशिष्ठ अनूप की कई ग़ज़लें ऐसी हैं जो एक ही विषय को ले कर चलती हैं और आरम्भ से अंत तक परस्पर सम्बद्ध दिखती हैं। बहुत सी ग़ज़लें अलग–अलग शेरों में भिन्न–भिन्न बातों को ले कर हैं पर अपने पूरे रचाव में वे किसी एक ही मूल बात या चिंता और चिंतन को सम्बोधित हैं। बहुत–सी ऐसी भी हैं जो हिंदी –दोहा की तरह अपने आप में ही पूर्ण और स्वतंत्र हैं। कई बार तो ग़ज़लों में लोकगीतों की गूँज भी सुनी जा सकती है। इसका एक कारण यह है कि वे गीत भी रचते हैं।

(2)

ख्वाब पर खौफ की चौकसी ना रहे...

मुझे तो गीत और ग़ज़ल को लेकर विधागत उलझन कभी नहीं रही। यह एक वास्तविकता भी है कि दोनों को गाने और सुनने से मतलब होता है। ग़ज़ल के लिए गाने की जगह 'कहना' कहा जाता है। लेकिन, यह कहना जिस तरह होता है वह गाना ही है। जिसे हम आम जनता या आम रसिक या श्रोता कहते हैं उसका संबंध उस बात से ज्यादा होता है, जो गीत या ग़ज़ल में कही जाती है। वह भक्ति हो, प्रेम हो या प्रतिरोध या कुछ भी। उसमें विरह हो या संयोग या विस्थापन की पीड़ा। उसको तो इससे लेना–देना होता है। अब रही बात उसके रचना–विधान या शिल्प की, तो ध्यातव्य है कि रचना का शिल्प रचना में न दिखे अलग से, यह सबसे अच्छी बात होती है। लोकगीतों में ऐसा ज्यादातर सहज ही देखने को मिलता है। अवधी का वह 'हिरनी' वाला गीत एक श्रेष्ठ उदाहरण है। हिंदी और भोजपुरी में भी ऐसे अनेक गीत हैं। नवगीत के बाद हिंदी में 'जनगीत' का दौर शुरू होता है। शलभ श्रीराम सिंह, गोरख पांडेय, विजेन्द्र अनिल, केशव रत्नम, बली सिंह चीमा, जमुई खां आजाद, नचिकेता, शिव कुमार पराग जैसे अनेक जनगीतकार हुए जिनके गीतों में आम जनता के जीवन के सुख–दुख, आशा–निराशा और उनके संघर्षों की विश्वसनीय अभिव्यक्तियाँ हैं। यह सूची लम्बी है। उल्लेखनीय है कि वशिष्ठ अनूप के गीत भी इसी भाव–भूमि के हैं। हिंदी की जनगीत–धारा को उनके गीत समृद्ध करते हैं।

वशिष्ठ अनूप संघर्ष की राह चुनने की वजहों को गीत का विषय बनाते हैं। ये वजहें बहुत वाजिब हैं। किसी भी देश और किसी भी भाषा के कविता–गीत में उस देश और उस भाषा से संबंधित जनता के जीवन की, समाज की बातें ही होती हैं। समाज में व्याप्त असमानता, गरीबी और शोषण–उत्पीड़न और उससे उत्पन्न हालातों और हासिल अनुभवों को भी, अन्य अनुभवों की तरह गीत बहुत सघन और प्रभावी रूप में अभिव्यक्त करता है। वशिष्ठ अनूप के एक गीत में संघर्ष की राह चुनने की वजहों की एक लिस्ट है और वे वजहें इस किस्म की हैं कि कोई जो लोकतांत्रिक मिजाज का होगा वो असहमत भला कैसे होगा। वे

उस गीत में संघर्ष की राह चुनने की अपील की मुद्रा में हैं। इस अपील के साथ जिन वजहों का उल्लेख करते हैं वे जीवनसंगत हैं, न्यायसंगत हैं। वे 'ख्वाब पर खौफ की चौकसी ना रहे" जैसी बात सामने ले आते हैं। यह पंक्ति जिस गीत की है उसको गुनगुनाते वक्त गोरख पांडेय का गीत 'हमारे वतन की नई जिंदगी हो' गूँजने लगता है। इस गीत में वे किसानों, मजदूरों, नौजवानों, बच्चो, महिलाओं सबकी आजादी की बात करते हैं। ग़ज़ल रचने के क्रम में वे 'अच्छा लगता है' / 'अच्छी लगती है' वाली ग़ज़ल–श्रृंखला पेश करते हैं। गीत में भी वे 'तो अच्छा होता' लिखते हैं। यहाँ हम देखें कि क्या अच्छा होता–

"प्यार–मोहब्बत, अमन–चैन की
फिर टूटी आशा
तानाशाह समझता है
बन्दूकों की भाषा।
बातचीत से राह निकलती
तो अच्छा होता।"

यह गीत (बन्दूकों की भाषा) आगरा में भारत के तत्कालीन पी. एम. अटल बिहारी वाजपेयी और पाकिस्तान के परवेज मुशर्रफ की वार्ता असफल होने के बाद का है। आगे की पँक्तियाँ हैं–

"अविश्वास की बर्फ पिघलती
तो अच्छा होता
फिर न कहीं बस्तियाँ उजड़तीं
तो अच्छा होता
फिर न कहीं सेनाएँ सजतीं
तो अच्छा होता।"

इस गीत में युद्ध के मानव–द्रोही परिणामों का भी वर्णन है। समकालीन हिंदी–गीत का यह युद्ध–विरोधी पक्ष है। एक गीत में एक बार फिर लड़ने का संकल्प गूँजता है। एक बार फिर उसी तरह से जैसे 'लड़े थे पहले फिरंगियों से'। एक तरफ गीतकार हक–अधिकारों के वास्ते संघर्ष की राह अपनाने का हिमायती है और दूसरी तरफ दो देशों के बीच के युद्धों का समाधान बातचीत से करने का। हम समझ सकते हैं कि दोनों दो भिन्न संदर्भ हैं। आजाद देश की जनता की खुशहाली अगर शासकवर्गीय बदनीयती और कुचक्रों की शिकार हो जाए तो जनता को एकजुट हो आगे आना जरूरी हो जाता है। दूसरी ओर, कभी–कभी क्या, अक्सर ऐसा देखा गया है कि दो देशों के बीच युद्ध अथवा युद्ध के हालात सरकारों के राजनीतिक कुचक्र ही होते हैं। आम जनता के जीवन के बुनियादी सवालों के समाधान में या इस जैसे अन्य मामलों में अपनी असफलताओं पर जनता के प्रश्नों को दूसरी तरफ शिफ्ट करने में सरकारें इन युद्धों के जरिए कामयाब होती रही हैं। इसलिए भी, ये युद्ध आमजन और आमजीवन के हित मे नहीं होते।

इन दिनों अगर कोई देश के आम अवाम की बदहाल माली हालत पर बात करता है तो बड़ा खतरा है उसके ऊपर। केंद्र और राज्यों की सरकारें और सरकार समर्थक कई संगठन, समुदाय और समर्थक (भीड़) बहुत कुछ इल्जाम मढ़ दे रहे हैं। इसको देश–निंदा करार दे राष्ट्रद्रोही तक कह दे रहे हैं। अनूप जी का एक गीत है– "उस देश का माथा कैसे ऊँचा हो सकता"। जिस देश के बच्चों को भूखा–प्यासा सोना पड़े (सोना क्या, भात–भात करते मरना पड़े), किसान गरीब–लाचार हों, अदालतें धनवानों की सुनती हों, बुनकर भूखे–नंगे रहने को विवश हों, बच्चियों और औरतों के ऊपर जुल्म ढाये जाते हों; उस देश का माथा कैसे ऊँचा हो सकता है। देश के भीतर की इन समस्याओं को गीतों में ढालते हैं और एक तरह से आज की तारीख में यह काम जोखिम भरा है। वे एक कजरी भी लिखते हैं। पारम्परिक कजरी सावन में गाई जाती है। पर, यह एक राजनीतिक कजरी है। इसे जनकजरी भी कहें तो कोई हर्ज नहीं। इसमें भी देश की जनता की बदहाली को स्वर दिया गया है–

"सारी जिंदगी हमारी तार–तार हुई
रद्दी अखबार हुई ना।
कैसा आया है सुराज

नहीं मिलता काम–काज
सब पढ़ाई और लिखाई है बेकार हुई
रद्दी अखबार हुई ना।"

आगे देखिए–

"जब भी उठती हक की बोली
हम पे चलती लाठी–गोली
हम गरीबों की है बैरी सरकार हुई।"

इस कजरी में भी हक़ के खातिर लड़ने का संकल्प है। वे महँगाई पर 2016 में एक गीत लिखते हैं– 'अजब महँगाई बढ़ी है'।

कुछ गीत तो कई अन्य मानवीय भावों और मूल्यों वाले हैं। प्यार–मनुहार भरी गुफ़्तगू भी कम नही है। अपने प्रियजनों से कुछ निवेदन भी। किसी के लिए पुकार भी है। फूलों पर इतराती शोख तितलियों और फुदक–फुदक गाती रहने वाली चिड़ियों के गायब होते जाने की व्यथा भी है। बहुत सारी स्मृतियाँ भी गीतों में ढली हैं। यहाँ सब पर बात करना सम्भव नहीं है। हाँ, यह कहना जरूरी है कि वशिष्ठ अनूप के गीत व्यापक मानवीय भावों और सरोकारों के हैं। वरिष्ठ गीत–ग़ज़लकार और इन विधाओं के मर्मज्ञ नचिकेता के संपादन में प्रकाशित गीतकोश में वशिष्ठ जी के भी कुछ गीत हैं। इस कोश में नचिकेता की एक वृहद गम्भीर भूमिका है। हिंदी के गीत, नवगीत, जनगीत के ऐतिहासिक विकास– क्रम, पृष्ठभूमि और आलोचनात्मक मानदंडों को समझने के लिए यह एक जरूरी ग्रंथ है।

ဢ★ଓ

वक्त के रुबरु खड़ी वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में किसान-मज़दूर और गाँव

डॉ. सतीश पांडेय

दुष्यंत कुमार ने हिंदी ग़ज़ल को जिस तरह अपने समय की सचबयानी से जोड़ा और अपनी बेबाक अभिव्यक्ति से उसे एक नई ऊँचाई प्रदान की, उसी परंपरा को आगे बढ़ाने वाले समकालीन प्रमुख ग़ज़लकारों में वशिष्ठ अनूप का नाम अग्रणी है।'घरों पर गिद्ध मड़राने लगे हैं' और 'बारूद के बिस्तर पर' जैसे अपने ग़ज़ल–संग्रहों में उन्होंने न सिर्फ वर्तमान समय के अंतर्विरोधों को बड़ी ही बेबाकी से उद्घाटित किया है बल्कि यथार्थ की उस ज़मीन को भी अभिव्यक्ति दी है, जहाँ सत्य को वंचना मिलती है और झूठ सीना फुलाए राजधानी तक पहुँच जाता है। उनके अनुसार इस खूंखार समय में जो मुजरिम हैं,वे ही पहरेदार बने बैठे हैं। रहनुमाओं के चेहरे का सच मुखौटे के पीछे छिपा है। जाति–धर्म के झगड़े और नफ़रत को बढ़ाना ही जैसे उनकी सबसे बड़ी पूँजी है, जिसके आधार पर वे आपस में लड़ाकर अपनी राजनीति चमका रहे हैं। उनके इस प्रयास में कुछ ख़ास तरह के बुद्धिजीवी भी उनके आगे नतमस्तक होकर उनका स्वस्ति–गान कार रहे हैं। शासन और सत्ता के विज्ञापनों तथा नारों में देश चहुंमुखी विकास कर रहा है। मीडिया और अखबार भी सत्ता के चारण बने उनके झूठ को रंगीन जामा पहनाकर उनका विज्ञापन मात्र ही कर रहे हैं। बहू–बेटियाँ कहीं भी महफूज़ नहीं अनुभव कर रहीं। अहिंसा की बातें करने वाले रात में बस्तियाँ जलाने से थोड़ा भी संकोच नहीं करते। संत कहलाने वाले बाबा स्वयं कामदेव का अवतार बने सोने–चांदी के सिंहासन पर बैठ कर इस संसार को माया–हिरण सिद्ध करने में जुटे हुए हैं। मानवीय मूल्यों का लगातार विघटन हो रहा है। व्यक्ति और समाज–जीवन में कथनीऔर करनी का फ़र्क बढ़ता जा रहा है। ग़ज़लकार ने इन तमाम राजनीतिक–सामाजिक विडंबनाओं और विद्रूपताओं के साथ–साथ वैश्विक महामारी कोरोना के घोरअमानवीय एवं संकटपूर्ण समय में किसानों और मजदूरों की दुर्दशा तथा उनकी संघर्ष–भावना को भी स्वर दिया है।

वस्तुतः वशिष्ठ अनूप उन ग़ज़लकारों में से हैं, जिनके लिए ग़ज़ल लिखना शगल मात्र नहीं बल्कि एक सुचिंतित–सुविचारित रचना–धर्म है। यह ठीक है कि ग़ज़ल कभी राज–दरबारों के बीच पली–बढ़ी, जहाँ मद मरे नैनों सेतीर चलते थे और उसके होठों से जाम भी छलकते रहे। कभी–कभी यह तबले की थाप पर थिरकती और महफ़िलों में ठुमके भी लगाती रही लेकिन वशिष्ठ अनूप के लिए यह झोपड़ी की दुलारी तथा हर एक जुल्म के रूबरू खड़ी मुक्ति की एक कटारी है। इसमें एक तरफ निष्कलुष प्यार की भीनी–भीनी महक और बच्चों की निश्छल हँसी जैसी ताज़गी है तो दूसरी ओर माटी का सोंधापन भी मिला है। यह खून–पसीने से सँवारी हुई है। इसमें भोलापन और सरलता है तो साथ में यह अपने हक के लिए तनी मुट्ठियों की तरह भी है, जिनमें अन्याय अत्याचार का विरोध करने की प्रखर चेतना हैदृ

एक मज़लूम के हाथ में ज्यों धनुष, हक़ की खातिर तनी मुट्ठियों की तरह,
आक्रमण की है तैयारियाँ कर रही, दर्द के गाँव में गम की मारी ग़ज़ल।

इस तरह यह ग़ज़ल आकाश–फल–सी नहीं बल्कि वक्त के रूबरू है। इसमें एक माँ की पुलक है तो खेत में लहलहाती फ़सल देखकर किसान की खुशी भी है। इसमें सादगी से भरे सुंदर रूप की झलक है तो अंजुरी भरे गंगाजल की–सी पवित्रता भी है। इसमें काल के गाल पर दिख रही हँसी और रुदन है तो जीवनसे सीधा–सीधा जुड़ाव भी। जीवन से कविता को पुनः जोड़ने के प्रश्न का हल निकालने वाली इन ग़ज़लों का उद्देश्य एक सुंदर समाज का सृजन करने के लिए शब्दों के संसार में की गई एक सार्थक पहल है। ज़मीन से जुड़े होने के कारण इनमें लोरी और फगुवा का मीठा स्वाद भले ही हो, लेकिन इनमें लहू में बहने वाला वह अंतर्नाद भी है, जो हर मज़्लूम से संवाद करता है। यह ग़ज़ल नहीं जुल्म का मुखर प्रतिवाद है–

अंधेरों में मशालों की तरह ही शब्द जलते हैं,
कहीं भी ज़ुल्म हो, उसका मुखर प्रतिवाद है कविता।

अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण इनकी लेखनी किसी अंतःपुर के रूप का गुणगान नहीं करती बल्कि सत्य का संधान करती है। वस्तुतः जब भी रवायतें किसी रचनाकार के लिए जंजीर बन जाती हैं तब कोई मीरा बगावत का ऐलान करती है। ऐसे रचनाकारों की अक्सर सिंहासन से नहीं निभ पाती। किसी भी कुंभनदास का सीकरी से नहीं पटता। जो जालिम दरिंदा है, उसे मसीहा लिख पाना किसी खुद्दार कवि के लिए कठिन होता है। शासक जैसा चाहता है, वैसा लिख पाना एक सजग–ईमानदार रचनाकार के लिए असंभव होता है। इसीलिए वशिष्ठ अनूप जी लिखते हैं –

भले ही काट ले मेरी जबाँ या उंगलियाँ लेकिन
किसी गुंडे के स्वागत में कसीदा लिख नहींसकता।

इन ग़ज़ल–संग्रहों में वशिष्ठ अनूप सभी के दर्द शब्दों में इस तरह पिरोना चाहते हैं कि आज के वक्त का यथार्थ सजीव होकर मुखरित हो उठे। ग़ज़ल में यह काम इतना आसान भी नहीं होता। इसीलिए ग़ज़ल की बुनावट की प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए वशिष्ठ अनूप मानते हैं कि ग़ज़ल लिखते समय अक्षर–अक्षर को तिनके–तिनके की तरह चुनना पड़ता है। लिखने के पहले भीतर ही भीतर कितना कहना–सुनना पड़ता है। जैसे चिड़िया तन्मय होकर अपना नीड़ बनाती है, उसी तरह कविताया ग़ज़ल को भी बहुत डूब कर बुनना पड़ता है। सुख–दुख को, अपने अतीत को गुनना पड़ताहै। कुछ यादें बहुत अधिक गुत्थम गुत्था हो जाती हैं तो जज़्बातों को रुई की तरह धुनना पड़ता है। तब जाकर कहीं ग़ज़ल या कविता की बुनावट कर पाना संभव होता है।

ग़ज़ल में प्रेम की मार्मिक कोमल अनुभूतियों के साथ–साथ युगीन यथार्थ को व्यक्त करने की सामर्थ्य दुष्यंत और उनके बाद के ग़ज़लकारों ने बखूबी प्रमाणित कर दी थी। इनमें राजनीतिक छल–छद्म,राजनेताओं काचारित्रिक दोगलापन, सांप्रदायिकता, जातिवाद, वंशवाद और भ्रष्ट नौकरशाही, बाजारवाद के प्रभाव में खत्म होती मानवीय संवेदनाएँ और संबंधों का विघटन आदि प्रमुखता से व्यक्त होता रहा हैलेकिन ग्रामीण मज़दूर और किसानलगभग उपेक्षित–सा रहा है। हाँ,कुछ जनवादी खेमे के ग़ज़लकारों ने मजदूरों के संघर्ष का जिक्र अवश्य किया है लेकिन अपनी विचारधारा के तहत मिल–मालिक एवं मजदूर के संघर्ष और यूनियनबाजी के हिस्से के रूप में। वहाँ ग्रामीण मज़दूर और किसान लगभग अनुपस्थित–सा रहा है। वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में ग्रामीण मज़दूर और किसान ही नहीं, गाँव का बदलतारूप, वहाँ के लोग, उनकी परंपराएँ एवं विश्वास और उनमें बसी लोक संस्कृति भी रूपायित हुई है। इनकी ग़ज़लों में समयगत सामाजिक–राजनीतिक विद्रूपताओं के उद्घाटन के साथ–साथ व्यवस्था–विरोधी संघर्ष एवं आक्रोश तथा जीवन को सुंदर बनाने के सपने और उम्मीदों भरी प्रबल चेतना भी मिलती है लेकिन यहाँ किसानों–मज़दूरों और कुछ अन्य ग्रामीण संवेदनाओं तक ही इस आलेख को सीमित रखा गया है।

किसान सभी के लिए अन्नदाता कहा जाता है लेकिन वही किसान अपने खेतों में हाड़–तोड़ मेहनत करने के बाद भी भूख और गरीबी का शिकार बन जाता है। यद्यपि वह अपने स्वाभिमान के कारण बड़ीसे बड़ी सत्ता के सामने भी झुकने को तैयार नहीं होता लेकिन भूख, गरीबी और अभाव उसे अपमान के संसार में ले जाते हैं। वह खेतों में अनाज तो उपजाता है लेकिन अनाज का उचित मूल्य न मिल पाने के कारण वह कभी साहूकारों के शोषण का शिकार बनता है तो कभी अपने संस्कारों के कारण सामाजिक–धार्मिक या भावनात्मक रूप में शोषित–पीड़ित होता है। वशिष्ठ अनूप जी ने किसानों की इस दुर्दशा को चित्रित करते हुए लिखा है–

फिर किसी बुधिया की काया बेकफ़न रखी रही,
फिर किसी होरी की बेटी बिक गई बाज़ार में।
छोड़कर घर चल पड़ा हल्कू मजूरी के लिए,
पेट तक भरता नहीं खेती के कारोबार में।

यह कितना त्रासद है कि कोई हल्कू किसानी छोड़कर मजदूरी करने पर विवश हो जाता है क्योंकि खेती करके वह अपना पेट तक नहीं भर पाता। यह हमारे समय की विडंबना ही है कि जो अन्नउपजाते हैं, खेतों में खून–पसीना बहाते हैं, उनको इस सामाजिक व्यवस्था में आदर नहीं मिलता। किसान ही नहीं,घर बनाने वाले मजदूरों का अपना कोई घर नहीं होता। अपनी मेहनत से संसार का भाग्य बदलने वाले, नया सृजनकरने वाले इतने दुर्भाग्यशाली बने हुए हैं। बिना अन्न के तो कुछ भी मुमकिन नहीं और अन्न का सृजनकरने का हथियार है हल और फावड़ा। उसी का कोई मोल नहीं समझा जाता जबकि ये किसान और मज़दूर उस अनमोल मिट्टी के घड़े के समान हैं जो स्वयं तपन सहकर भीतर के जल को शीतल बनाते हैं।

किसान की दुनिया उसके खेतों तक ही सिमटीरहती है। रात–दिन वे खेतों में पसीना बहाते हैं। उनके लिए सारा जहान खेतों में ही होता है। वे अपनी पूरी ज़िंदगी खेतों को ही समर्पित कर देते हैं। खेतों में श्रम करना ही उनके लिए पूजा एवं अजान होता है। जिसतरह सैनिकों का सारा ध्यान सरहद की रक्षा करने पर ही होता है, उसी तरह किसानों की जान खेतों में ही बसती है। यहाँ तक कि उनके सपने और मन की उड़ानें भी खेतों से ही जुड़ी होती हैं। कई बार सेठों–साहुकारों के षड्यंत्र के चलते उन्हें दाना–दाना लुटाना भी पड़ जाता है लेकिन वे हिचकिचाते नहीं क्योंकि उनका मान–सम्मान भी इन्हीं खेतों से ही जुड़ा होता है। इन किसानों को कई बार प्राकृतिक आपदाओं के कारण और कई बार सरकारी–राजनीतिक व प्रशासनिक निर्णयों के कारण गंभीर प्रतिकूलताओं के बीच से गुजरना पड़ता है। आज जिस तरह किसान अपने हितों के लिए आंदोलन की राह पर हैं किंतु सरकार

अपनी ज़िद पर अड़ी हुई है, यह उसी आत्मसम्मान की लड़ाई है। ग़ज़लकार के अनुसार ऐसे संघर्ष के दिनों के निशान ही खेतों में दिखाई देते हैं–

मेघ रुठे हैं, चढ़ गया डीजल, और रोते हैं धान खेतों में
दौर संघर्षके कई आए, हैं लहू के निशान खेतों में।

ग़ज़लकार वशिष्ठ अनूप को आज का समय बेहद खूंखार नज़रआता है। आज अच्छे और बुरे का फ़र्क करना मुश्किल हो गया है। गरीबी, टैक्स और महँगाई दिनों दिन बढ़तीजा रही है लेकिन हमारे देश के रहनुमा इसे ही खुशहाली बता रहे हैं। गाँव हो या शहर बेटियाँ असुरक्षित हैं। बच्चों की आँखों में ऐसी उदासी है, जैसे नौजवानी में ही उन्हें बुढ़ापे ने घेर लिया हो। गरीबी और बेरोजगारी के

ऐसे कठिन समय में सामान्य जन को अपने श्रम पर ही भरोसा होता है लेकिन ग़ज़लकार को यह बात चुभती है कि उत्तर प्रदेश और बिहार के मजदूरों के श्रम को उचित सम्मान न देते हुए उन्हें देश के अन्य प्रांतों में हेय दृष्टि से देखा जाता है। यद्यपि वे खेतों से लेकर औद्योगिक इकाइयों तक में निरंतर खटते रहते हैं लेकिन वे ही पिटते भी हैं। उनकी इस स्थिति के लिए ग़ज़लकार उत्तर प्रदेश और बिहार की सरकारों को जिम्मेदार मानता है क्योंकि यदि उन्हें अपने घर में रोजी–रोटी मिलती तो वे दर–दर भटकते हुए दूसरे प्रांतों में जाकर अपमानित जीवन क्यों जीते। ऐसा नहीं है कि उनमें इस उपेक्षा और दुत्कार का विरोध करने की शक्ति नहीं है लेकिन बेरोजगारी के कारण दूसरे प्रांतों में जाकर गुहार लगाना उनकी नियति है। यद्यपि उनके खून–पसीने से ही दुनिया में जगमग है। वे गाड़ियों के पहियों की तरह विकास के आधार हैं लेकिन उन्हें गँवार माना जाता है। कुछ साज़िशों के चलते उनका ताना–बाना बिखरा अवश्य है लेकिन उनमें अपार सृजनात्मक शक्ति है, जिसे अवसर मिलने पर वे सिद्ध भी करते हैं। उनकी इस भूख और बेबसी को सार्थक अभिव्यक्ति देते हुए ग़ज़लकार ने लिखा है–

यूँ भूख ने है तोड़ा घर–गाँव से शहर तक
हर हाँ में हाँ मिलाते, पिछले कहार हैं हम।
अवसर अगर मिले तो, कुछ भी नहींअसंभव
सीमा पर हम डटे हैं, दुश्मन पे वार हैं हम।

रचनाकर का विश्वास है कि गरीब लोग ही बंजर धरती को अपने श्रम से हरा–भरा बनाते हैं। वे पत्थर को भी तराश कर सुंदर आकार देते हैं। विरोधी शक्तियाँ परिंदे का पर काट देने में भले ही विश्वास करती हों लेकिन इनके दिलों में भी उड़ान भरने की तमन्ना होती है। कोरोना जैसी भयंकर महामारियों के

समय में इन मजदूरों की संघर्ष–क्षमता और अधिक उभर कर आयी है। उन्हें भरोसा रहा है कि जीवन में बहुत दुख–दर्द उन्होंने सहे हैं। अतः ये तबाही के कुछ और दिन भी वे सह लेंगे।

अपने गाँव–घर के लोगों से मिलने की आस लिए, सिर पर बोझ लादे, हजारों कोस की यात्रा करते औरत–बच्चे एक उम्मीद और विश्वास के भरोसे ही अपनी मंज़िल की ओर बढ़ते रहे हैं–

हजारों कोस घर की दूरियाँ हैं,
है सर पर बोझ, पर आगे बढ़ेंगे।
बहुत–सी औरतें हैं,दुधमुँहे हैं,
सुलगती राह है, कैसे चलेंगे।
यकीं है फिर नया सूरज उगेगा,
हमेशा तो नहीं दुर्दिन रहेंगे।

कोरोना ही नहीं, बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाएँ भी इन किसानों–मजदूरों के धैर्य और संघर्ष का इम्तिहान लेती रही हैं। आज आम जनता ठगी–सी बेचारी बनीखड़ी है। उसकी सारी खुशियाँ कहीं खो गई हैं लेकिन राजनीति के मदारी इसे ही विकास और प्रगति का नाम दे रहे हैं। बेशक विकास हुआ है लेकिन वस्तुस्थिति यही है कि भारत की आबादी का आधा हिस्सा आसमान में है और आधा हिस्सा खदानों में धँसा है। समाज में व्याप्त इस विषमता का यह स्वरूप है कि एक हिस्से में न अन्न है न दवा और दूसरी ओर दुकानों में सब कुछ भरा हुआ है।गाँव के बाढ़ पीड़ितों का दर्द जानने के लिए हुक्मरान विमानों में बैठकर ज़ायजा लेते हैं जबकि किसानों की दशा यह है कि–

बाढ़ में बह गई फसल सारी
खेत कुछ बिक गए लगानों में।

ग़ज़लकार इस असमान विकास के कारणों को जानना चाहता है। इसीलिए वह हुस्न और फूलों की बात न करके गाँव के बबूलों की बात करना चाहता है। उसे पता है कि उजाले के नाम पर बहुत बड़ा छल हो चुका है। इसीलिए वह ईमान और उसूलों का ज़िक्र करना चाहता है। वह साफ़–साफ़ कहता है–

सूरज की हर किरण कहाँ आकर ठहर गई,
उन कारणों की बात हो,भूलों की बात हो।

आज लोग किसी भी तरह सफलता पा लेना चाहते हैं। इसके लिए वे कभी झूठ का सहारा लेते हैं तो कभीअपने नख–दंत छुपा कर आगे बढ़ते हैं। कुछ लोग जाति को सीढ़ियाँ बनाकर आगे बढ़ते हैं। इस दौड़ मेंजो दौड़ने के काबिल नहीं हैं, वे दूसरों के पैर खींचकर गिराने में थोड़ा भी संकोच नहीं करते–

नहीं था दौड़ केकाबिल वो मगर
और सबको गिरा–गिरा के बढ़ा।
वह बड़ा हो नहीं सकता था कभी,
इसलिए सबको वह घटा के बढ़ा।
गिरगिटों ने उसे गुरु माना,
हाथ स्यारों सेवह मिलाके बढ़ा।

आज सरकारी कामकाज के बड़े–बड़े विज्ञापन छपते हैं। सरकार समर्थक मीडिया भी सरकार का प्रचारतंत्र बनकर रह गई है। ग़ज़लकार सजग करता है कि ऐसे विज्ञापनों को देखकर जो लोग सरकार चुनते हैं, वे सालों साल पछताते हुए अपनासिर धुनते हैं। जब कसाई ही दुनिया के पैरोकार बन जाते हैं तो सारे गाँव–चौराहे वधस्थल में बदल जाते हैं। सामान्य जन के असली हिमायती शोषितों व पीड़ितों के लिए कुछ ख्वाब बुनते हैं ज़रूर लेकिन व्यवस्था में बैठे लोग हमेशा सेठों के हक में निर्णय लेते हैं। गाँव का आदमी गरीबी, बाढ़ और बीमारी से व्याकुल रहता है जबकि 'हिटलर के नाती' हर घड़ी कपड़े बदलते हैं–

गरीबी, बाढ़, बीमारी से जनता है यहाँ व्याकुल
उधर हिटलर के नाती हर घड़ी कपड़े बदलते हैं।

ऐसे परिवेश में गाँव भी अब पहले की तरह नहीं रहे। वे भी पूरी तरह बदल गएहैं। गाँव से वहाँ की खूबियाँ खो गई हैं। अब वहाँ भी हर व्यक्ति सयाना बन गया है–

गाँव से गाँव की खूबियाँ खो गईं,
मुझसे जो भी मिला, वह सयाना मिला।
इक खुशी खो गई थी यहीं पर कहीं,
उसको ढूंढा बहुत पर पता ना मिला।

गाँव का आम आदमी आज अपने आपको बेहद असुरक्षित अनुभव करता है। जब पुलिस कामहकमा ही गुंडों की निगरानी में रहता हो तो वह सुरक्षा की उम्मीद किससे करे। कोई भी माफिया खद्दर पहन कर जब गाँव में पहुँचता है तो हुकूमत का प्रतिनिधि उसकी अगवानी में पहले से ही उपस्थित रहता है। गाँव के लोग ठीक वैसे ही रहते हैं, जैसे मगर के साथ पानी में रहना हो–

हमारे गाँव में चल कर कभी देखें नज़ारा यह
मगर के साथ कैसे आदमी पानी में रहता है।
गरीबों के लिए इज़्ज़त बचाना है बहुत मुश्किल
अभी भी गाँव में होरी परेशानी में रहता है।

ग़ज़लकार स्वीकारता है कि गाँव के कुछ लोग ऊँची डिग्रियाँ लेकार भी सर झुकाए कहीं पर सानी–पानी कर रहे हैं लेकिन अभी भी गाँव में बहुत कुछ ऐसा बचा है, जिसे सहेजे जाने की ज़रूरत है। गाँव में नई–नवेली दुल्हन की कंगन–चूड़ी की खन–खन और उसका खिड़की से झाँकना अभी शेष है। पूजा, भजन, आरती, सोहर और लोरी के स्वर ही नहीं झूले–कजरी तथा तपती माटी पर बूँदों की खुशबू अभी भी आती है–

महमह करता जब वसंत आता हैअपनी मादकताले
महुआ, आम और जामुन से मधुबन की खुशबू आती है।

गाँव का संगीत और वहाँ की प्रकृति ही नहीं, वहाँ के रिश्तों में बचा अपनापन और ऊष्मा भी ग़ज़लकार को आकर्षित करती है। फागुन में भाभियाँ हों या दशहरा के समय 'जई' उगाती बहनें, इनका एक सांस्कृतिक महत्व आज भी गाँवों में माना जाता है। आपदा–विपदा में एक–दूसरे के सुख–दुख को बाँट लेना गाँव के लोगों की ख़ासियत होती है। ग़ज़लकार को इस बात से आश्वस्ति मिलती है कि अब भी वहाँ डाकिया चिट्ठियों की सौगातें लेकर आता है–

आपदा–विपदा को भी सब बाँट लेते हैं यहाँ,
दर्द सँग खुशहालियाँ अब भी हैं मेरे गाँव में। • • •
अहद पर अब भी हैं मरते, पाप से डरते हैं लोग,
अनगिनत अच्छाइयाँ अब भी हैं मेरे गाँव में।

वशिष्ठ अनूप ने जीवन को सुंदर बनाने की पहल लगातार अपनी ग़ज़लों में की है। इसीलिए उनका ध्यान उन सांस्कृतिक मूल्यों पर अधिक गया है, जो गाँव में आज भी बचे हुए हैं। इसे उनकी गाँव के प्रति नास्टैल्जिया या अति व्यामोह भी कहा जा सकता है लेकिन मेरे लिए यह ग़ज़लकार द्वारा हर कीमत पर उन सांस्कृतिक धरोहरों को बचाने का प्रयास है, जिनसे जीवन को सुंदर बनाया जा सके। वे जानते हैं कि गाँव में भी पारिवारिक रिश्तो में टूटन आई है लेकिन वे उन रिश्तों को बार–बार याद करते हैं, जो मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए आज भी एक सांस्कृतिक धरोहर की तरह हैं। इनमें माँ और बाबूजी को वे विशेष रूप से याद करते हैं। दरवाज़े के पीपल की तरह बाबूजी सब सहते हैं। अम्मा तो कभी–कभी मन की बातें कह भीदेती हैं लेकिन बाबूजी ग़म खाते चुप रहते हैं। उनके अभावग्रस्त किंतु ज़िम्मेदार व्यक्तित्व के माध्यम से ग़ज़लकार गाँव के व्यक्ति का अद्भुत मानवीय चरित्र उजागर करता हैदृ

फ़ीस किताबें होली खिचड़ी तीज रजाई मेला हाट,
बुनकर के ताने–बाने–सा सब बुनते थे बाबूजी।
घर भर की सारी ज़रूरतें गुपचुप वहपढ़ लेते थे,
अपनी कोई भी अभिलाषा कब कहते थे बाबूजी।

इसी तरह माँ के प्रति भी ग़ज़लकार के मन में गहरा लगाव दिखाई देता है। इसीलिए वह बार–बार माँ की पवित्रता, निश्छलता, ममता, स्नेह और आशीष की याद करता है। उसे जीवन में की गई हर नेकी माँ की दुआ की तरह प्रतीत होती है लेकिन वह यह भी जनता है किमाँ की हर खुशी अपने बच्चों से जुड़ी होती है। इसीलिए बुढ़ापे में वह उस बंधन में बँधी नदी की तरह रहती है, जो मुक्त होकर बह नहीं पाती। सदियों पुरानी मर्यादा की कोई दीवार है, जो ढह नहीं पाती। वैसेमाँ बेज़ुबान नहीं है। उसके पास बातें भी बहुत–सी हैं पर वह अक्सर मौन रहती है। सभी दिन भर सुनाते हैं फिर भी माँ कुछ नहीं कह पाती। माँ के इस दुख को मार्मिक अभिव्यक्ति देते हुए वशिष्ठ अनूप ने लिखा है–

हजारों दुख सहे हैं उम्र भर औलाद की खातिर,
बुढ़ापे में वो बच्चों की रुखाई सह नहीं पाती।
रहा करते थे बच्चेजिस तरह माँ–बाप के घर में,
उसी अधिकार से माँ उनके घर क्यों रह नहीं पाती।

वस्तुतः माँ के अनगिनत रूप हैं। वह सदा आशीष और प्यार देती है। कभी ममता लुटाती है तो कभी मनुहार करती है। बिना माँगे ही वह बच्चों पर सब कुछ वार देती है। वही हमारे भाग्य की रचयिता भी है क्योंकि वही कभी कॉपी–कलम हाथ में देती है तो कभी हथियार थमा देती है। सारा गरल स्वयं पीकर हमेशा मुस्कुराने वाली माँ ही होती है।

गाँव की प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा का मसला आज उतना ही महत्वपूर्ण है क्योंकि यह मानव जाति की रक्षा से जुड़ा है। वशिष्ठ अनूप ने इस ओर भी ध्यान आकर्षित किया है। उनकी धारणा है कि वृक्षों को यदि प्यार से सींचा जाए तो वे फूल और फल ही नहीं, सारे प्रश्नों के माकूल हल भी देंगे। वृक्ष ही नहीं, आज ताल–पोखर को भी सांस्कृतिक धरोहर मानकर उन्हें बचाने की आवश्यकता है। इसी की प्रेरणा देते हुए इन्होंने लिखा है–

हमारे ताल–पोखर धर्म–संस्कृति की धरोहर हैं,
बचाएँगे अगर इनको तो ये सुंदर कमल देंगे।
हमारे जंगलों की भी बादलों के साथ यारी है,
येसाँसें भी हमें देंगे, हमेशा हमको जल देंगे।

इस तरह वशिष्ठ अनूप जी की ग़ज़लों में व्यक्त भावबोध का दायरा अत्यंत व्यापक है। वे इन ग़ज़लों में अपने समय का मुकम्मल सच बयान करते हैं। एक तरफ वे सियासत के उस समूचे छल–छद्म की असलियत उद्घाटित करते हैं, जिनके नाते मनुष्य जीवन निरंतर कठिनहोता जा रहा है तो दूसरी ओर जाति, धर्म,सांप्रदायिकता और धन–दौलत की हर उस दीवार को ढहाना चाहते हैं,जो मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने में बाधक है। उन्हें न तो बाजार का आकर्षण लुभाता हैऔर न ही वे अमानवीयता की हदें पार कर किसी भी तरह सफलताएँ पाना उचित मानते हैं। उनका लक्ष्य मानव जीवन की बेहतरी है। इसीलिए वे अपने भीतर के बच्चे की मासूमियत को बचाए रखना चाहते हैं। श्रम की शक्ति पर उनका पूरा भरोसा है। अतः किसानों–मजदूरों का दर्द भी उन्हें कचोटता है। उनके जीवन का यथार्थ उद्घाटित करते हुए वे उनके जीवन का यह सत्य भी उजागर करते हैं कि किसान–मजदूर भूख और बेरोजगारी से त्रस्त भले ही हो लेकिन उसमें संघर्ष का एक ऐसा जज़्बा होता है कि वैश्विक महामारी जैसे पहाड़–से दर्द को भी वह हँसते हुए सह जाता है। ग़ज़लकार को इन धुंधलकों में ही उम्मीदें भी छिपी प्रतीत होती हैं क्योंकि उसे यह विश्वास है कि इन किसानों–मज़दूरों के सब्र का बाँध जब टूट जाता है औरवे बगावत पर उतर आते हैं तो ऊँची से ऊँची प्राचीर भी उन्हें रोक नहीं पाती। उसी के शब्दों में कहूँ तो –

इसी नर्म माटी से फूटेंगे अंकुर, यह संसारखुशियों से भरपूर होगा।
तिमिर रोक पाएगा सूरज को कब तक, नहीं अब सवेरा बहुत दूर होगा।

꧁★꧂

अनूप की ग़जलें : सादगी का सौन्दर्य
(मशालें फिर जलाने का समय है)

प्रो. रामदरश मिश्र

'मशालें फिर जलाने का समय है' शीर्षक इस ग़ज़ल संग्रह की मूल चेतना की ओर संकेत कर देता है। आज समाज राजनीति, धर्म आदि क्षेत्रों में मूल्यहीनता का अंधकार छाया हुआ है। अब साहित्य से ही रोशनी मिलने की उम्मीद बची हुई है। यह ग़जल–संग्रह विद्यमान अंधकार में मशाल जला लेने की आवा़ज उठा रहा है।

आज हिन्दी में ग़ज़लें खूब लिखी जा रही है। आज की ग़जलें मुख्य रूप से अपने समय के विषय–यथार्थ से रूबरू हो रही हैं लेकिन कम ग़जलकारों की विशिष्ट पहचान बन पा रही है। वशिष्ठ अनूप की ग़जलें अपनी लोक–चेतना और अभिव्यक्ति की सादगी के कारण उनकी आत्मा से एक निजी पहचान बनाती हैं।

'मशालें फिर जलाने का समय है' का स्वर मूलतः आशावादी है जो आज के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है। अनूप ने विषय कोई लिया हो, संदर्भ कोई हो, सर्वत्र मूल्यवादी स्वर उभरता है। सत्ता–व्यवस्था की कुरूपता से रूबरू हो गया है किंतु वहाँ चुप्पी नहीं साधी गई है, उससे भिड़ने का दम़खम भी दिखाया गया है–

बिछाते जाल आये आज तक शातिर शिकारी जो,
उन्हीं के जाल में उनको पँहसाने की जुगत में हूँ।
अभी तक जंगलों, गाँवों में वे हाँका लगाते थे,
समर का मैं मगर डंका बजाने की जुगत में हूँ।

x x x

निकल पड़े हैं आज फौज सजा कर फिर वो,
इधर भी जंग की तैयारियाँ ज़रूरी हैं।

इस तरह के अनेक शेर इस संग्रह में ऊर्जा–दीप्त हैं।

अनूप की ग़जलें किसी भी भूमि की क्यों न हों वे संवेदना से स्पंदित हैं। उनमें जिये हुए सत्य की ईमानदारी है। विद्रोह भी शाब्दिक नहीं है, जैसा कि आज की अनेक ग़जलों में पाया जाता है। विद्रोह कवि के दर्द से उपजा है जिसे कवि ने गाँव से लेकर शहर तक की ज़िन्दगी में जिया है। कवि की मूल भूमि गाँव है। इन तमाम ग़जलों को गाँव की संवेदना और मूल्य–दृष्टि अनुशासित करती है।

कला की साँस घुट जाती है महलों की नुमाइश में,
बिना खेतों व जंगल से मिले बढ़ना नहीं संभव।
हँसाता है मुझको रुलाता है मुझको,
मेरा गाँव अक्सर बुलाता है मुझको।
हमें सीवान से पहचान कर बाँहें बढ़ाता है,
हमारा गाँव हमको देखते ही खिलखिलाता है।

कवि ग्राम–बोध के साथ कभी घर–परिवार के विविध क्रिया–कलापों को देखता है, कभी प्रकृति के साथ चलने लगता है, कभी अंतर लोक की यात्रा करने लगता है और हर हाल में वह यथार्थ की संश्लिष्टता से गुजरता है। कल क्या था, आज क्या है, यह द्वन्द्व उसकी पहचान में उतरता रहता है। कवि ने जीवन के अनेक बाहरी–भीतरी सत्य–आयामों को प्रभावशाली स्वर दिया है। अंधकार के विरुद्ध मशाल जलाने वाले इस

कवि ने प्रेम की कई विशिष्ट ग़ज़लें दी हैं। प्रकृति–बिम्बों के माध्यम से प्रेम अपने विविध रंग बिखेरता चलता है। इस प्रेम में मन को उदात्त करने का सौन्दर्य निहित है।

नदी की धार में झरनों की हर रवानी में,
तुझे ही देखा है झीलों के गहरे पानी में।
पंखड़ी इक गुलाब की सँभाल रखा है,
भरी है दास्तां कितनी तेरी निशानी में।

x x x

यह हमारी ज़िन्दगी में आज क्या होने लगा,
एक मुरझाया हुआ पौधा हरा होने लगा।
मंद स्वर में फिर से कोई बाँसुरी बजने लगी,
राधिका को देख कर मन साँवरा होने लगा।

इन ग़ज़लों के बारे में दो बातें और कहनी हैं। एक तो यह कि इन ग़ज़लों में बहुत सहजता और सादगी है। सप्रयास चमत्कार उत्पन्न करने के स्थान पर जीवन की सच्चाइयों को सादगी के साथ रूपायित किया गया है। यह सादगी का सौन्दर्य इन्हें विशिष्टता और मोहकता प्रदान करता है। इन्हें पढ़ते हुए हम चमत्कृत नहीं होते, वरन् उनमें व्याप्त जीवन–रस से सिक्त होते हैं। हिन्दीग़ज़ल नाम से लिखी जा रही आज की तमाम ग़ज़लों में अरबी फ़ारसी के कठिन शब्दों की भरमार होती है। अनूप ने ठेठ हिन्दी भाषा का प्रयोग किया है। दूसरे यह कि अधिकांश ग़ज़लें गीत की तरह एक ही भावभूमि पर चलती हैं। शेर के बाद शेर उस संश्लिष्ट भावभूमि की पर्त दर पर्त खोलता चलता है और एक समन्वित प्रभाव की सृष्टि होती है। मुझे विश्वास है कि अनूप की ग़ज़लें भीड़ में अलग से पहचानी जायेंगी।

तेरी आँखें बहुत बोलती हैं- गहन जीवन बोध की महत्वपूर्ण ग़ज़लें

श्रीधर मिश्र

हमारे समय के महत्वपूर्ण कवि वशिष्ठ अनूप का ग़ज़ल–संग्रह "तेरी आंखे बहुत बोलती हैं" उनके गहन जीवन बोध व प्रखर आलोचनात्मक चेतना का पता देता है। इन गज़लों में अपने समय से सघन सम्वाद है व जीवन की समीक्षा है, वशिष्ठ अनूप की काव्य प्रवृत्ति की गहन पड़ताल की जाय तो स्वाधीन चेतना का मूल्यबोध व प्रेम उनका केंद्रीय स्वर है। स्वाधीन चेतना का मूल्य बोध व प्रेम दोनो हालांकि भिन्न भिन्न प्रकृति रखते हैं लेकिन वशिष्ठ अनूप के यहाँ इनका अद्भुत समन्वय मिलता है यही समन्वय वशिष्ठ अनूप को अलग पँक्ति देता है, उन्हें विशिष्ट बनाता है, यही समन्वय उन्हें लगातार जीवन की समीक्षा के लिए प्रेरित करता है जिससे वे अपने समय की असंगतियों, विषंगतियों, सामाजिक प्रपंचों, सम्बन्धों–रिश्तों, सांस्कृतिक विचलन, राजनीतिक व नैतिक मूल्य क्षरण, शोषण, व बाजारबाद की सघन पड़ताल करपाते हैं व जीवन मूल्यों व मनुष्यता के प्रति अपने गहन प्रेम के चलते शोषण व छद्म के विरुद्ध तीव्र प्रतिरोध का स्वर मुखर कर पाते हैं। वशिष्ठ अनूप के यहाँ प्रेम जीवन के मूल तत्त्व के रूप में आता है उसका फलक विस्तीर्ण तो है ही उसकी जड़ें बड़ी गहरी हैं।जो प्रेम नही कर सकता वह न तो घृणा कर सकता है और न क्रांति ही कर सकता है।वशिष्ठ जिन जीवन मूल्यों के प्रति प्रेम करते हैं उसे क्षरित करने वाली हर ताकतों से दो दो हाथ करने को उद्यत दिखते हैं यही प्रेम का बोध ही उनकी रचनाओं में क्रांति– बीज का वपन करता है।

हिंदी ग़ज़ल की परम्परा ही प्रतिरोध से प्रारम्भ हुई है, नक्सलबाड़ी आंदोलन, आपातकाल, तेलंगाना आंदोलन के उस अत्यंत सम्वेदनशील काल खंड में हिंदी ग़ज़ल राजनीतिक भाषा सीखती है व उस समय में सार्थक हस्तक्षेप करती है, दुष्यंत के यहां सांकेतिक रूप से ग़ज़ल बड़े सलीके से अपना समय रचती हैं तो अदम के यहाँ वह खुली बगावत व ललकार का स्वर लिए प्रतिरोध का वातावरण सृजित करती है। अदम का भाषाई बीहड़ उनकी गज़लों में फुफकार भर देता। तल्खी, तुर्शी का तेवर देखते बनता है।

प्रतिरोध के मामले में यदि वशिष्ठ अनूप की गज़लों को देखा जाय तो वशिष्ठ, अदम गोंडवी की परम्परा के कवि दिखाई पड़ते हैं, लेकिन वशिष्ठ के प्रतिरोध का स्वर अदम से कुछ भिन्न है वशिष्ठ के यहाँ प्रतिरोध की वही चेतना, वही प्रतिकार, वही बागी तेवर तो मिलता है लेकिन वे अपने कलात्मक संयम व भाषाई संस्कार से अपनी गज़लों में फुफकार या फटकार की जगह एक सहज आत्मीयता का संस्कार देने में सफल होते हैं। इसी लिए अदम की ग़ज़लें हमे डांटती, फटकारती सी महसूस होती हैं और वशिष्ठ की ग़ज़लें आत्मीय सम्वाद करती महसूस होती हैं। इन अर्थों में वशिष्ठ अनूप अधिक विश्वसनीय व आत्मीय लगते हैं। हिंदी कविता में धूमिल भी एक नई कहन, नई टटकी शब्दावली,अनछुई उपमाओं, तल्खी, तुर्शी के साथ कविता चरितार्थ करते हैं लेकिन वे खास ऊंचाई से सम्बोधित करते हुए प्रतीत होते हैं इसीलिए वे प्रभावित तो करते हैं लेकिन पाठक उनसे एक सहज व रागात्मक साहचर्य महसूस नही करपाता अतः जितनी तीव्रता से उनकी कविताएं प्रभावित करती हैं उसी तरह शीघ्र ही अपने प्रभाव से मुक्त भी कर देती हैं। वशिष्ठ अनूप की यह विशेषता अलग से रेखांकित करने योग्य है कि वे प्रतिरोध के वातारवण का सृजन करने व प्रतिकार के उद्दाम स्वर में भी पाठक से एक सहज व आत्मीय रिश्ता बनाये रखते हैं, गौर करे तो यह वे अपने गहन परम्पराबोध व पुष्ट भाषिक विन्यास के चलते कर पाते हैं। वशिष्ठ अनूप की काव्य भाषा के कई प्रस्तर हैं उसमे हजारों वर्षों की संस्कृति की आवाजें हैं, इतिहासबोध है, सांस्कृतिक वैभव है, मिथकों व बिंबों की एक जीवंत दुनिया है और साथ ही समकालीन जीवन की प्रचलित भाषा का अद्भुत समन्वय है। लोकजीवन की शब्दावली के साथ उनकी भाषा मे देशज शब्दों की बहुलता है जो उनकी लोक संपृक्ति व लोकज्ञता का परिचय देती है। उनके यहां काव्य के मायने है––

काव्य है जंग की मुनादी अब
यह कसीदा– रुबाई नही है।।
मेरी कविता बगावत बिगुल है
निर्बलों की दुहाई नही है।।
मैं अपना दर्द साझा कर रहा हूँ
तुम्हे लगता है यह भी शायरी है।।

और उनकी कविताओं की जड़ें कितनी गहरी हैं––

तुलसी से मुझे प्यार है और इश्क मीर से
कायम है सदा से मेरा रिश्ता कबीर से।।
ये ग़ज़ल ग़ज़ालचश्मों से गुफ़्तगू नहीं है
यह है मेरे अहद के जख्मों की तर्जुमानी।।

यह हिंदी ग़ज़ल के सन्दर्भ में एक घोषणा पत्र तो है ही साथ ही क्रांतिकारी कवि सांडोर पेटाफी की इन पंक्तियों की भी बरबस याद दिलाता है कि–

मेरी कविताएँ/ समर भूमि में/ युद्धरत जवान हैं/ मैं कविता से/ युद्ध लड़ता हूँ लोगो

वशिष्ठ अनूप का स्वाधीनता बोध उन्हें अन्याय के विरुद्ध लड़ने को प्रेरित करता है, वशिष्ठ अनूप के यहाँ बगावत एक युगधर्म के रूप में बार बार आता है–

वे बच्चे बग़ावत करेंगे किसी दिन
जिन्हें भूख से बिलबिलाना पड़ा है।।
हर शहर में दुशासन तांडव मचा रहे हैं
क्यों जागती नहीं है, इस देश की जवानी।।
बढ़ के अब तख्ता पलट दे ऐसे नीरो राज का
भूख से लड़ती हुई जनता को यह अधिकार है।।
तबाही किसी को मचाने न देंगे
सृजन के नए गीत गाने चले हैं।।

मिलान कुंदेरा के एक पद का उपयोग करें जो साहित्य के रेडिकल स्वायत्ता है जिसमे साहित्य और राजनीति,साहित्य और समाज परावलम्बी तो हैं पर आत्मनिष्ठ भी वे सभी एक समान मूल्यविस्तार से जांचे परखे जाते हैं और जिनके बीच कोई वर्ण व्यवस्था नही है यह रेडिकल स्वायत्तता अगर साहित्य को राजनीति से जांचे जाने का अवकाश देती है तो राजनीति के साहित्य द्वारा परखे जाने का भी, इस रेडिकल स्वायत्तता के रहते साहित्य न तो राजनीति से मुंह फेर सकता है और न जीवन से।वशिष्ठ अनूप की गज़लों में हमारे समय के राजनैतिक मूल्य क्षरण का चेहरा खुल कर सामने आता है उनकी ग़ज़लें बेबाक व साहसिक बयान दर्ज करती हैं–

हर घर सुलग रहा है हर जन उबल रहा है
भंडवे सुना रहे हैं, संसद में लंतरानी।।
अगर गेंहू खुले में सड़ रहे हैं
तो फिर क्यों लोग भूखों मर रहे हैं।।
वादा करना कठिन नही होता
मुश्किलें आती हैं निभाने में।।
लूट – व्यभिचार क्यों दिखता नही है
ये भ्रष्टाचार क्यों दिखता नही है
तुम्हारे ही हैं सब चेले चपाटी

ये बंटाधार क्यों दिखता नहीं है।।
धवल खादी और खाकी में छिपे हैं भेड़िए
दरअसल जो है लुटेरा वो ही पहरेदार है।।
यहाँ जम्हूरियत है सिर्फ कागज़ और भाषण में।
हक़ीक़त में डकैतों और सररदारों की बाते हैं।।

वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में प्रेम बड़े गहरे व आत्मीय संकेतों के माध्यम से आता है, उनके यहाँ प्रेम की भारतीय छवियां व अनुभूतियां हैं, इसमे दैहिक मांशलता की जगह रागात्मक छवियाँ हैं, कोमल एहसास हैं, स्पंदन है, सम्वेदना की गहरी अनुभूतियां हैं, रति से अधिक अनुरक्ति है, प्रेम प्राप्ति नही बल्कि विसर्जन है, बंधन नही मुक्ति है, वशिष्ठ को सबसे अधिक भरोसा भी प्रेम पर ही है क्योंकि लाख चालाकी, बुद्धि कौशल प्राप्त करले यह दुनिया लेकिन अंत मे प्रेम ही बचाएगा इसे अंत मे प्रेम ही बचेगा इस दुनिया मे––

कभी फूलों सा तेरा, मुस्कराना याद आता है
कभी झरनों सा तेरा खिलखिलाना याद आता है।
कभी बच्चों सा सबकुछ बोल जाना एक झटके में
कभी खामोश रहना, कुछ न कहना याद आता है।।
जब किताबो में दिखने लगे चंद्रमा अक्स कोई उभरने लगे हर तरफ।
बात बेहद जरूरी बताते हुए,भूल जाये तो समझो कोई बात है।।
तुम्हारी छवि कभी जब देखता हूँ बन्द आंखों से।
लगे कोई परी आकाशगंगा में नहाई है।।
वो घर तुम जिसे छोड़कर जा चुके हो
उसे अब भी आके मैं क्यों देखता हूँ।।
प्यार की भाषा मौन की भाषा होती है
दिल चुपके चुपके सब कुछ कहता सुनता है।।
दर्पण देख के इक लड़की मुस्काती है
सोच के फिर कुछ पानी पानी होती है।।
मुझे पतझड़ भी फूलों का नगर मालूम होता है
रहो तुम साथ तो जंगल भी घर मालूम होता है।।
जान देकर मिली है मुहब्बत
मुफ़्त की यह कमाई नही है।।

किसी कवि के संदर्भ में यह देखा जाना चाहिए कि रचना के सरोकारों में जीवन बोध की सकारात्मक वृत्तियां जागृत हैं अथवा नहीं, उसकी रचना किसके पक्ष में आवाज़ उठा रही है, उसकी कविता समाज में किसके साथ खड़ी है। वशिष्ठ अनूप के काव्य परिदृश्य में जीवन की लगभग सारी सकारात्मक वृत्तियां जागृत हैं, जीवन के लगभग हर परिसर से उनका सघन सम्वाद है, उनकी ग़ज़लें समाज के सर्वहारा वर्ग, वंचितों, अपवंचितों, शोषितों के साथ सहानुभूति ही नही दर्शातीं बल्कि उनके साथ पूरी मजबूती के साथ खड़े होकर बग़ावत का बिगुल फूंकने को तत्पर दिखती हैं, यह आक्रोश कभी कभी सरहदों को तोड़ता हुआ प्रतीत होने लगता है लेकिन वशिष्ठ अनूप अपने कलात्मक संयम से उस का तापक्रम नियंत्रित करने में सफल होते हैं व अपनी गज़लों में एक सहज आत्मीय साहचर्य बनाये रखते हैं।

वही रोटियों का मरम जानता है
जिसे दाना दाना जुटाना पड़ा है।।
हर खुशी लड़ के लेनी पड़ी है
भीख में हमने पाई नही है।।
सिर पे बोझा, पीठ पर बच्चे को बांधे जा रही है
जिंदगी की जंग में वह हर घड़ी टकरा रही है(जीवन संघर्ष)

कभी घर ले के ऑफिस मैं गया हूँ
कभी ऑफिस चला आया है घर में (मध्यवर्ग के कर्ता की स्थिति)
दुआ करना किसी बच्चे का यह विश्वास न टूटे
बड़े विश्वास से उंगली पकड़ता है कोई बच्चा (विश्वास)
फौलाद सी बाहें हैं, चट्टान सा सीना है
तूफान की मौज़ों पर जीवन का सफ़ीना है (उद्दाम जिजीविषा)
जमाने मे यूं भी निभाना पड़ा है
भरी आंख से मुस्कराना पड़ा है (बेबसी)

वशिष्ठ अनूप में गहन परम्पराबोध है, उनका यही परम्पराबोध उनकी गज़लों को इतिहासबोध की दृष्टि देता है जिससे वे अपने अतीत व वर्तमान के बीच एक पुल बनाने में समर्थ होते हैं।अपने गहन जीवन बोध व परम्परा बोध के चलते वे अपनी परम्पराओ का भाष्य भी करते हैं उनका समकालीन परिदृश्य में पुनर्पाठ भी करने में सक्षम होते हैं,। टीएस इलियट ने अपने प्रसिद्ध लेख " ट्रेडिशन एंड इंडिविजुअल टैलेंट" में किसी कवि के लिये उसमे व्यक्तिगत प्रज्ञा से अधिक उसके परम्परा बोध को अधिक महत्वपूर्ण माना है, वह लिखता है कि जब हम दो ढाई हजार वर्ष की ब्रिटिश सभ्यता के शब्दों को अपनी कविता में आयत्त करते हैं तो वे मात्र शब्द नहीं बल्कि परम्परा/सभ्यता के प्रतीक होते हैं।वशिष्ठ की गज़लों में प्रायः अपनी परम्पराओ का समकालीन सन्दर्भो में पुनर्पाठ मिलता है–

हर ओर द्रोपदी के क्रंदन भरे हुए हैं
फिर चुप है हस्तिनापुर, फिर है वही कहानी
इक्कीसवीं सदी के मानव के आचरण पर
ग़मगीन है सुयोधन रावण है पानी
हर शहर में दुशासन तांडव मचा रहे हैं
क्यों जागती नही है, इस देश की जवानी।।

वशिष्ठ अनूप ग्राम चेतना के कवि हैं, वे लोक को महत्व देने वाले कवि हैं अतः वे साक्ष्य के लिए शास्त्र की अपेक्षा लोक पर अधिक भरोसा करते हैं, उनकी सांस्कृतिक चेतना की जड़े गांव से जुड़ी हैं अतः वे गांव से बहुत उम्मीद भी करते हैं वे जब भी बगावत या मशाल की बात करते हैं तो उसके लिए कर्ता के निर्धारण के लिए गांव को चुनते हैं।

हमारे गांव में अब भी मशाल जलती है
कोई उम्मीद नहीं हमको राजधानी से।।
अभी गांवों में बटमारी बहुत है
अभी भी हारी बीमारी बहुत है
मशालों को अभी बुझने न देना
यहाँ पर रात अंधियारी बहुत है।।
आगया गांव घर देख कर
ख़्वाब का खंडहर देख कर।।

वशिष्ठ अनूप के यहाँ एक बात गौर करने वाली है कि उनके यहाँ रिश्तों से अत्यंत सघन व आत्मीय सम्वाद प्रचुर मात्रा में मिलता है, मां, पिता, बहन, भाई, बेटा, बेटी के जिक्र के साथ उनके यहां भतीजा का भी जिक्र मिलता है, बेटी के सन्दर्भ में कुछ शेर–

घर के आंगन में ज्यों किलकारियां जरूरी हैं
उसी तरह घरों में बेटियां जरूरी हैं।।
कुछ अजन्मो की हत्या हुई गर्भ में
जन्म के बाद कोई जलाई गई।।

ग़ज़ल के सन्दर्भ में अंदाजेबयां याकि विट, का विशेष महत्व होता है, क्योंकि लगभग एक सदी तक स्थिर विषयवस्तु होने के बावजूद उर्दू ग़ज़ल अपने अंदाजेबयां के टटकेपन के चलते अपना आकर्षण बनाये रखने में कामयाब रही, आज हिंदी ग़ज़ल को यदि हिंदी की जातीय चेतना,उसकी परम्पराओं, उसके विश्वासों, मिथकों, व सामाजिक सरोकारों की खुद में पुनर्स्थापना करनी है तो साथ ही अपने अंदाजेबयां को भी उसी तरह साधने की चुनौती भी स्वीकार करनी होगी, वशिष्ठ अनूप में अंदाजेबयां याकि कहन का अद्भुत कौशल है जिससे उनकी गज़लों की प्रभावोत्पादकता स्वतः बढ़ जाती है–

शाम को फुर्सत मिली तो गुथ रही आटे सी खुद
भूख उसको कहा रही है,भूख उसको कहा रही है।।
वादा करना कठिन नही होता
मुश्किलें आती हैं निभाने में।।
उनके होने से सँवरती दुनिया
वो किसी के लिये सँवरती हैं।।

वशिष्ठ अनूप की गज़लों में हमारे समय की तस्वीर साफ साफ देखी जा सकती है व स्पष्ट सुनी जा सकती है उसकी आवाज़। उन्होंने वास्तविक दुनिया का लाक्षणिक इबारत की तरह इस्तेमाल किया है यानि कि वे वास्तविक दुनिया के ब्यौरों का उनके अपने लिए नही बल्कि दूसरे अभिप्रायों और अर्थों को उजागर करने के लिये इस्तेमाल करते हैं, इसके साथ ही प्राकृतिक दुनिया के बहुत तीक्ष्ण और स्पष्ट चित्र उनकी गज़लों में मिलते हैं।वशिष्ठ अनूप की गज़लों में मनुष्य की हालत को प्रभावित करने वाली प्राकृतिक, नैतिक,और आध्यात्मिक शक्तियों का अहसास है, वशिष्ठ अनूप का जीवनानुभव व्यापक व गहन है,उन्होंने गज़लों में सार्वजनिक दुनिया, राजनैतिक व सामाजिक विचारों का पुनर्वास किया है। इनके शब्दों की शक्ति इन विचारों की शक्ति को गज़लों में जीवंत बनाती है। इनकी गज़लों की दुनिया चरित्रों, प्रतीकों, बिम्बो के एक बड़े परिवार जैसी है और यह उसके समावेशी होने का प्रमाण है। बिना विशेषणों या बिम्बो के अतिरेक के अनुभव के ऐंद्रिक ग्रहण को भाषा मे चरितार्थ कर पाना सीधे सीधे बयान या बखान द्वारा कठिन काम है वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें हिंदी में अंतर्निहित इस शक्ति का अहसास कराती हैं और हमारे समय मे कविता की संभावना को आगे बढ़ाती हैं।शब्द बहुलता, अतिरेक और दुरुहताओं का अतिक्रमण कर वह एक ऐसा शिल्प अर्जित करती हैं जो मनुष्य की हालत के बारे में, समय समाज के बारे में अत्यंत सघन और मार्मिक बखान करने में समर्थ हैं

वशिष्ठ अनूप की गज़लों की अलग से रेखांकित करने योग्य विशेषता यह भी है कि इनमें सहज भाषिक विन्यास में विराट भावबोध है, यह समय जटिलताओं व बौद्धिक सख्ती से बच कर कुछ सामान्यीकरणों से अपने समय को समझने की चेष्टा करने का है, वशिष्ठ की यही कला साधना उनकी गज़लों को संवादधर्मी बनाती है व वे एक साथ "क्लास" व"मास" से सम्वाद स्थापित करने में वे कामयाब होते हैं।उनकी भाषा जितना कहती है उससे अधिक देखती है अतः उसके प्रभाव में हमारी देखने की दृष्टि में अभिवृद्धि होती है इन अर्थों में वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें पढ़ना मानो दृष्टिवर्ती रचनाएं रचनाओं से गुजरना है।

होठ तेरे भले बन्द हों पर मन का हर भेद यह खोलती हैं।।
किस मदरसे में इनको पढ़ाया, तेरी आंखे बहुत बोलती हैं।।

इसे वशिष्ठ अनूप की काव्य भाषा के सन्दर्भ में भी समझ सकते हैं। आशा है "तेरी आंखे बहुत बोलती हैं" की ग़ज़लें सुधी पाठकों को आकर्षित करेंगी व हमारी दुनिया मे कविता की संभावना को आगे बढाने में सहयोगी होंगी।

ജ★ഋ

प्रेम-सौन्दर्य और संघर्ष-प्रतिरोध की आवाज बनती कविताएँ
(संदर्भ–'इसलिए' (गीत संग्रह) : डॉ. वशिष्ठ अनूप)

ओम धीरज

कविता अपने आरम्भिक काल से ही श्रुति के पंखों पर सवार होकर यात्रा करती रही है। छन्द मुक्त (फ्रीवर्स) होने के पूर्व तक उसकी वाचिक शक्ति का ही वर्चस्व रहा परन्तु बाद में मुद्रण की अतिशय सुलभता और पश्चिमी वैचारिक प्रवाह के युग में यह पठित होती हुई धीरे–धीरे मुद्रित रूप के कब्जे में जकड़ती गयी और आज यह स्थिति हो गयी है कि फ्रीवर्स का 'आधुनिक कवि' बिना किताब या कापी लिए अपनी कविता की दो–चार पंक्तियाँ भी आम जनता के बीच नहीं रख पाता। समय साक्षी है कि श्रुति या वाचिक परम्परा की कविताएँ मुख– प्रतिमुख होती हुई सहस्त्रशीर्षा होकर लोकगीत के रूप में ही अपनी सिद्धि–सार्थकता पायी हैं, जहाँ कवि का नाम भुलाकर भी वह जन–जन का कंठहार बन गयीं। इन अमर कविताओं की श्रृंखला में आज भी कुछ कविताएँ रची जा रही हैं जिनकी पंक्तियाँ मुद्रण से पूर्व लोगों के जुबान पर चढ़ जाती हैं। जन–गीत के रूप में लोगों के बीच ये कविताएँ कभी–कभी कवि के नाम–बिना भी इतनी मशहूर हो जाती हैं कि इनके मालिकान का नाम खोजने हेतु इनकी खतौनी देखनी पड़ जाती है। डॉ वशिष्ठ अनूप ऐसे ही विरल कोटि के कवि हैं जिनकी कई रचनाएँ आमजन के जुबान पर चढ़कर दशकों से यात्रारत रही हैं। संग्रह का शीर्षक गीत 'इसलिए' (पृष्ठ–23) इसी कोटि की एक विशिष्ट रचना है, जिसे 1985 में लिखा गया और तब से यह कई जन–आन्दोलनों से जुड़कर, भारत ज्ञान–विज्ञान समिति का मुख्य गीत बन कर, दूरदर्शन के सीरियल के शीर्षक गीत के रूप में गाया जाकर, राज्य शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद, उ० प्र० की पुस्तक 'शिक्षण–प्रशिक्षण संदर्शिका' में आवाहन–गीत की शक्ल में शामिल होकर मुकाम–दर–मुकाम हासिल करती गयी।

सच तो यह है कि यह गीत एक पच्चीस वर्षीय तरुण कवि के स्वप्नदर्शी मन का शिला–लेख है, उसके जीवन का 'मोटो' है जिसके सहारे वह एक 'बेहतर कल' के निर्माण की कल्पना करता है। वह एक ऐसी व्यवस्था चाहता है जिसमें कोई शोषित न हो, किसी के मुँह से निवाले न छिने, कोई किसी का हक न मारे, श्रमजीवी का सम्मान हो, बेचारगी और दरिद्रता में नारी को शोषण न हो, कोई दुल्हन दहेज के लिए जलाई न जाय। अपने इस शिला–लेखीय गीत का ही विस्तार उसकी अन्य कविताओं में देखा जा सकता है। इस परिकल्पना को संकल्पना में साकार करने हेतु उसे हथियार भी उठाना पड़े तो वह नहीं हिचकेगा–

'वक्त ने फिर पुकारा है अहले वतन / जागिए और सितमगर से टकराइए
हिटलरी रोब दिन–दिन बढ़ा जा रहा / फिर नई जंगे आजादी लड़ जाइए।
• •
देश सारा है दुर्योधनों के लिए / है ये एलान धृतराष्ट्र ने कर दिया
फिर जरूरी है टंकार गांडीव की / खींचिए तीर, तलवार चमकाइए। '

(वक्त ने फिर पुकारा है– पृष्ठ–25)

इसी तरह वह अपने शिलालेखीय गीत का एक और विस्तार कुछ यूँ करता है–

'पयाम भेजा है गोलियों का / कहा जो तुमने वही करेंगे / लड़े थे पहले फिरंगियों से / तुम्हारे जुल्मों से भी लड़ेंगे।' (अथाह सागर उबल रहा है– पृष्ठ–26)

किसलिए संघर्ष की राह हम चुनें ? वह बताता है– 'जिंदगी आँसुओं में नहाई न हो / शाम सहमी न हो, रात हो न डरी / भोर की आँख फिर डबडबायी न हो। '

उसका यह आवाहन कितना प्रभावकारी है कि सदा से शान्त–सौम्य मजदूर–किसान भी बौखला उठता है– "हम खेत न हरगिज छोड़ेंगे। यह खेत है पुरखों की थाती / इसमें है हमारी परिपाटी / इससे ही सुबह हमारी है / इससे है हमारी सँझवाती। इस खेत को जो छीने हमसे / उससे हर हाल में है लड़ना / यह खेत बचाने की खातिर / हमको जीना है, मरना है / जो इसे छीनने आयेंगे / उनके पंजों को मरोड़ेंगे। हम खेत न हरगिज छोड़ेंगे।" (पृष्ठ–28)

कहना न होगा कि सिंगूर, नोएडा, ही नहीं अब तो गाँव–गाँव में खेती की जमीनों का अधिग्रहण फोरलेन्थ– सिक्सलेंथ हाइवे के नाम पर किया जाने लगा है। हाईटेक सिटी और औद्योगिक आस्थानों के लिए किसानों की जमीन अब सुप्रीमकोर्ट के दखल और शायद जगह–जगह हुए आन्दोलनों के कारण कुछ अधिक मूल्यांकन पर प्रतिकर–क्षतिपूर्ति किसानों को मिलने लगी है लेकिन क्या किसानी–खेती की यह रत्नगर्भा–अन्नप्रसवा जमीन पूँजी के एक निश्चित परिमाण में भविष्य की जीवनदायिनी बन सकेगी ? यह प्रश्न आज भी जिन्दा है। कवि एक सचेत जनधर्मी व्यक्तित्व है। वह आँख मूँद कर यह सब होते हुए नहीं देख सकता। तभी तो वह पूँजीवादी ताकतों और राजनीतिज्ञों के गठजोड़ की ओर मात्र संकेत नहीं, सीधे ललकारती भाषा में चुनौती देता है –

"मौसम अगर गरम होगा तो होंठों पर अंगारे होंगे / हाथों में होगी मशाल और हर जबान पर नारे होंगे /.... पर्वत, झील, नदी, जंगल सब पर हैं उनकी लगी निगाहें / आदमखोर अजगरों की दिन–दिन बढ़ती ही जाती चाहें / अपनी झोपड़ियों से अब बेदखल सभी बंजारे होंगे। " (पृष्ठ–46)

इस तरह अनेक जनधर्मी गीत इस संग्रह की पूँजी हैं। बताने की आवश्यकता नहीं कि वशिष्ठ अनूप, फैज अहमद शंकर शैलेन्द्र, शलभ श्री राम सिंह, रमेश रंजक, की परम्परा के कवि हैं जो हिन्दू–उर्दू की समावेशी भाषा 'हिन्दुस्तानी जुबान' के कायल हैं। वे हिन्दी गीतों की परम्परा में जनवादी या जनगीतकारों की कोटि में भी परिगण्य हैं। ये रमेश रंजक, नचिकेता, शान्ति सुमन, महेन्द्र नेह, अश्वघोष, ब्रजमोहन, विजेन्द्र कौशिक, हरीश मादानी जैसे लोकप्रिय जनगीतकारों की श्रृंखला की एक मजबूत कड़ी हैं। इनकी भाषा सहज, सरल, सुबोधगम्य तथा लय–छंद युक्त प्रवाहपूर्ण रवानगी से भरपूर हैं। एक विश्वविद्यालयीय प्रोफेसर होने के बावजूद इन पर कविता का छान्दसिकता से इन्हें सहज लगाव है। अभिजात्य–भाव नहीं चढ़ पाया है। आज तो अकादमिक संस्थानों में छन्दमुक्तता की आड़ लिए गद्य कविताओं का आविर्भाव ज्यादा होने लगा है। जहाँ कविताएँ लिखी तो जाती हैं– शोषित, पीड़ित, हाशिये के लोगों की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति के नाम पर परन्तु भाषा–शिल्प, प्रतीक–बिम्ब में आलोचकों और अभिजात्य मानसिकता के गंभीर पाठकों पर ही उनकी दृष्टि टिकी होती है। वैचारिक शब्द जाल में उलझी कविता जहाँ स्वतंत्र साँस लेने को तरस रही है। विचार भी, प्रवाह हीन होकर अचल शिला की तरह मात्र जगह घेरते हैं, हासिल कम दे पाते हैं। इस बेचारगी भरी वैचारिक कविताओं के महासागर में गीत–कविता का द्वीप बनकर भटकते जल–यात्रियों को सुरक्षा का बोध कराने वाले बहुत कम ही व्यक्ति इन अकादमिक संस्थानों में हैं। अंगुलियों पर भी शायद गिनने योग्य संख्या विश्वविद्यालयीय कवियों में नहीं मिलेगी जो गीत–कविता के सृजनधर्मी हों। प्रोफेसर वशिष्ठ अनूप एक अपवादस्वरूप व्यक्तित्व हैं जो गीत–कविता, ग़ज़ल लिखते ही नहीं, समीक्षा–कर्म में लगकर छान्दस कविता की पुरजोर वकालत भी करते हैं। अनेक समीक्षा ग्रन्थों के प्रणयक इस कवि की यह भी विशेषता है कि यह कविता को आमजन के बीच ले जाने के लिए सदा तत्पर भी रहते हैं। आज मंचीय कवि–सम्मेलनों की तमाम सद्गति–दुर्गति, चुटकुले–फूहड़ हास्य–व्यंग्य के लिए कुख्यात घोषित किए जाने के बीच भी वशिष्ठ अनूप की मंच पर उपस्थिति ही मंचीय कवियों की अनुशासित और मर्यादित काव्य–पाठ की गारण्टी होती हैं। आज कवि सम्मेलनों के वर्तमान समीकरण में सार्थक कवियों को मंच से पलायन करने की जरूरत नहीं है बल्कि अपने जनधर्मी–संवादी कविताओं से आम श्रोतावर्ग को जोड़ते रहने की पुरजोर कोशिशें जारी रखना भी आज का कवि कर्म है–युग धर्म है। इस दृष्टि से प्रोफेसर वशिष्ठ अनूप अनुवर्ती पीढ़ी के लिए एक आदर्श मानक कवि भी हैं।

ऊपर उद्धृत किए गये गीतों से स्पष्ट है कि डॉ वशिष्ठ अनूप एक लोकप्रिय–जनवादी कवि हैं। इस संग्रह की बहुतेरी कविताएँ इसी कोटि की हैं। प्रसिद्ध आलोचक रामनिहाल गुंजन ने जनवाद की व्याख्या कुछ यूँ की है– "'जनवादी' शब्द का अर्थ क्रान्तिकारी या मार्क्सवादी नहीं; बल्कि जन–साधारण के पक्ष या हित में लेना सिद्घ होता है। इसका अर्थ यह है कि जनसाधारण में लोकप्रिय होने के कारण कोई भी रचना जनवादी हो सकती है, लेकिन इसके साथ–साथ उसकी अन्तर्वस्तु का लोकहित में होना आवश्यक है।" (शिनाख्त–संपादक नचिकेता–पृष्ठ–77) यहाँ अन्तर्वस्तु के जनवादी होने पर जोर दिया गया है। इस दृष्टि से वशिष्ठ अनूप के गीतों में पर्याप्त साक्ष्य देखे जा सकते हैं। कण–कण है बारूद बन रहा (पृष्ठ 38) बहुत मुश्किल में है खेतिहर (पृष्ठ–30) जनगण की ललकार है (पृष्ठ–40) जैसी तमाम कविताएँ इसके प्रमाण हैं। इंकलाब लिख दें (पृष्ठ–44) नामक कविता में कवि की प्रश्नाकुलता तो देखिए– "मासूम होटलों में क्यों प्लेट धो रहे / माएँ हैं भूखी प्यासी नवजात रो रहे / बहुओं की–बेटियों की क्यों जल रही चिताएँ / क्यों गर्भ से ही उनको मिल रही सजाएँ / होठों पे जिंदगी के हँसता गुलाब लिख दें / आओ लहू से अपने हम इंकलाब लिख दें।"

यहाँ सिर्फ प्रश्नाकुलता नहीं है बल्कि जन–साधारण से संवाद करते हुए उनकी समस्याओं से अपना जुड़ाव भी है। यह जुड़ाव यथार्थ बोध से पूरी तरह संपृक्त है। वास्तव में गीतों में यथार्थ की संवेदना को गूँथना एक सधे शिल्पकार का कौशल है। यह आसान काम नहीं है– एक ओर भाव प्रवण सघन आनुभूतिक संवेदना है तो दूसरी तरफ लय–प्रवाह–छन्द से जुड़ी शिल्पकारिता। इसी तथ्य को प्रसिद्ध जनगीतकार रमेश रंजक ने कुछ यूँ उद्घाटित किया है– "वस्तुतः रचनाधार्मिता एक दुहरी अभ्यास प्रक्रिया है। उसकी पहली शर्त समाज से जुड़े रहने की है और दूसरी सार्थक अभिव्यक्ति की। केवल विचारों को शब्दों का लिबास पहना देने मात्र से रचना–धर्म पूरा नहीं हो पाता। जरूरत है, विचार को भाव तक लाने की। जब तक कोई विचार हमारे जीवन–जगत का अंग नहीं हो जाता, तब तक वह एक अजनबी से अधिक कुछ भी नहीं हो सकता। हमारे जीवन–जगत से जब उसकी जान–पहचान बढ़ती है तभी वह हमारे भाव–जगत को प्रभावित कर पाता है।" (हिन्दी नवगीतःसंदर्भ और सार्थकता–संपादक–वेद प्रकाश अमिताभ–पृष्ठ–21) कहना न होगा कि इस संग्रह में कवि का कोई अनुभव ऐसा नहीं है जो हमारे जीवन–जगत से जुड़ा हुआ न हो। दूरारुढ़ बिम्ब, अबूझ प्रतीक एवं अस्पष्ट–गूढ़ वैचारिक अन्तर्वस्तु जैसी कोई सृष्टि इनके गीतों में नहीं दिखती। यही कारण है कि ये गीत–कविताएँ सहज–सम्प्रेषणीय एवं पाठक श्रोता से तत्क्षण तादात्म्य स्थापित करने में सक्षम हैं। इसीलिए ये शीघ्र ही स्मरणीय हैं और देर तक अविस्मरणीय रहने की माद्दा रखती हैं। इनकी कविताओं के बारे में सहज ही कहा जा सकता है कि ये किताब में बन्द पड़ी रहने वाली कविताएँ नहीं, बल्कि जुबान पर चढ़ने वाली कविताएँ हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो प्रो. वशिष्ठ अनूप किताब के नहीं जुबान के कवि हैं।

जनवादी कवियों के बारे में आम धारणा है कि ये मार्क्सवाद से प्रभावित होते हैं, जिनके सोच की डोर हिन्दुस्तान के बाहर से जुड़ी रहती है। विश्वमानवतावाद, समाजवाद की आड़ लिए इनके भीतर भारतीय संस्कृति और परम्परा के प्रति अश्रद्ध भाव रहता है। किन्तु इस धारणा के विपरीत डॉ वशिष्ठ अनूप अपनी भारतीयता–बोध, राष्ट्रीय–गौरव–परम्परा के साथ जनधर्मी कविताओं का सृजन करते हैं। कुछेक उदाहरण ही काफी हैं, इस दृष्टि बोध के साथ–

"वो राम–कृष्ण–बुद्ध के विचार खो गए कहाँ / उदात्त सारे मूल्य वो विलीन हो गए कहाँ / प्रताप के, शिवा के वीर–वंशजों को क्या हुआ / हमीद–भगत सिंह के शेर–शावकों को क्या हुआ / समाज के प्रबुद्ध वर्ग से प्रबल सवाल है / ये आग कब बुझेगी जिसमें जल रही हैं बेटियाँ / हर रोज क्यों गरल निगल रही हैं बेटियाँ।" (पृष्ठ–34)

यह राष्ट्रीय गौरव–बोध अमर्ष के वाणों में बिंधा होकर आगे अन्य गीत में कुछ और पूछने लगता है– "कम नहीं होती अभी दुर्भाग्य की लपटें / आज भी सीता के हिस्से आग की लपटें / राम को अपनी

अयोध्या मिल ही जाती है / पर भटकना दर–बदर हनुमान के हिस्से (सुख समूचे हो गए शैतान के हिस्से–पृष्ठ 64)

राष्ट्रीयता बोध के भीतर भी वह अन्ध भक्त नहीं होता इसीलिए धार्मिक आस्था पर चोट करने में भी कवि नहीं चूकता, जन–चेतना यहाँ भी मुखर हो उठती है–

"जुते हैं इंसान हर पल बैल–घोड़ों से / है गुजरती जिंदगी कुछ अजब मोड़ों से / कर्म पर अधिकार केवल, चतुर बतलाते / कर्मफल सारे हुए भगवान के हिस्से। (वही–पृष्ठ 63)

प्रो. वशिष्ठ अनूप मात्र वर्ग–चेतना के कवि नहीं है, यद्यपि आज की सामाजिक विसंगतियों यथा– ऊँच–नीच, अमीर–गरीब, सरकार–प्रजा, पुरुष–नारी, अधिकारी–सेवक जैसे द्वन्द्व–युग्मों के बीच शोषित–पीड़ित के प्रति अपने संवेदनात्मक आवेग को प्रतिरोध की आवाज बना कर उन्हें जीवन–संघर्षों में सामूहिक लड़ाई के लिए संकल्पबद्ध करने की कोशिश, इनके बहुत सारे गीतों में है, तथापि एक 'शिक्षक' का कोमल–सचेत मन समय–समय पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराता मिलता है। बताने की आवश्यकता नहीं है कि पी एच–डी, डी–लिट जैसी उपाधियों का हेतु कहीं बाबूगिरी या अफसरी करना नहीं हो सकता। आजीवन एक शिक्षक की भूमिका इन्होंने अपनायी। चाहे क्लास में हो, काव्य गोष्ठी में हो या सामान्य औपचारिक–अनौपचारिक वार्ताओं में, इनका यह रूप सामने वाले को दीख ही जाता है। इस गीत संग्रह में बहुत सारे गीत हैं जो एक शिक्षक–मन के कवि ने जैसे अपने छात्रों को समझान–बुझाने, एक योग्य नागरिक बनाने, एक बेहतर समाज की निर्मिति के लिए तत्पर रहने को, प्रेरणा स्वरूप लिखा है। 'किताब ने कहा' (पृष्ठ 52), पढ़ना बहुत जरूरी (पृष्ठ 54), उस चिड़िया घर का नाम बताओ (पृष्ठ 82), नजरों से गिरना ठीक नहीं (पृष्ठ–94) जैसी गीत–कविताएँ सीधे बोधात्मक शैली में लिखी गयी हैं। कवि को पता है कि आज की पीढ़ी किताबों से भाग रही है, मनोरंजन और ज्ञानार्जन के अन्यान्य 'डिजिटल डिवायस' भी उन्हें उपलब्ध हैं तथापि किताबों की अपनी महत्ता सर्वोपरि है। बालिका–शिक्षा के लिए तो जैसे उत्प्रेरण–गीत ही लिख दिया– "जीवन में कुछ करना है, तो पढ़ना बहुत जरूरी है / सचमुच आगे बढ़ना है, तो पढ़ना बहुत जरूरी है / बिना पढ़े माँ–बाप को कैसे / सुख–दुख बतलाओगी / बिना पढ़े सखियों को कैसे पाती भिजवाओगी / करने काम चला जायेगा दूर देश जब साजन / बिना पढ़े उसको तुम कैसे चिट्ठी लिख पाओगी / अमन–चैन से रहना है तो, पढ़ना बहुत जरूरी है। "

यहाँ वह (कवि) शिक्षक की 'फ्रेन्ड, फिलासफर एण्ड गाइड' तीनों भूमिकाओं में उतर आया है–

"पढ़ने से इस बंद हृदय की कलियाँ खिल जाती हैं / पढ़–लिख लेने से इन्साँ को मंजिल मिल जाती है / पढ़े–लिखे लोगों से हरदम डरते हैं अन्यायी / ज्ञान–शक्ति होने से जुल्म की चूलें हिल जाती हैं / हक की खातिर लड़ना है तो, पढ़ना बहुत जरूरी है। (पृ.54)

कवि एक व्यापक दृष्टि–सम्पन्न व्यक्ति है। आधुनिकता का पक्षधर कवि यद्यपि दहेज हत्या, बलात्कार, भ्रूण हत्या, नारी–अपमान जैसे मुद्दों पर प्रायः आक्रोशित होता रहता है, उनके शोषण से वह प्रायः चिन्तित भी है किन्तु किसी भी हालत में नारी को पुरुष से कमतर मानने को तैयार नहीं। नारी शक्ति के लिए (पृष्ठ–32) नामक कविता में कवि नारी को कुछ यूँ शब्दवान बनाता है कि वह शक्तिमान बन जाती है–

"ऐसी मंजिल तो कोई जहाँ में नहीं / जो डरकर हमारे कदम मोड़ दे / कोई ऐसी चुनौती बनी ही नहीं / सख्त अपने इरादों को जो तोड़ दे / ठीक है नाजुकी अपनी फितरत में है / प्यार से मोम जैसी पिघल जाती हैं / पर चुनौती मिले गर कहीं से हमें / सख्त फौलाद में हम बदल जाती हैं / कोई बेटी अगर ठान ले मन में तो / बढ़ के इतिहास में कुछ नया जोड़ दे /" ...."हम चढ़ी जब तो एवरेस्ट बौना हुआ / हम उड़ी जब तो आकाश छोटा पड़ा / शक्ति बनकर खड़ी हो गयी जब कभी / कोई दुश्मन नहीं देर तक है अड़ा / रौंद कर हर मुसीबत को बढ़ती रहीं / कोई ऐसा कहाँ जो हमें होड़ दे /"

कहना न होगा कि आज की बेटियाँ कवि के संकल्प को साकार कर रही हैं। आज सामान्य वायुयान ही नहीं फाइटर राफेल को भी बेटियाँ उड़ाने लगी हैं।

'लड़ना है अब हमें' (पृष्ठ–68) शीर्षक कविता भी इसी आशय की कविता है। जहाँ वह कहती है– "यह जिंदगी का तौर बदलना है हमें / जीने के लिए मौत से लड़ना है अब हमें /..झाँसी की रानी बन के निकलना है हमें /...दुःशासनो के शीश कुचलना है हमें /...हाथों में खुद मशाल ले बढ़ना है अब हमें" ये गीत–कविताएँ पूरे उद्धरण की हकदार हैं मगर स्थान–संकोच में थोड़ा उल्लेख करना ही यथेष्ट है। इन बोलती कविताओं के लिए व्याख्या की जरूरत नहीं है। वशिष्ठ अनूप निःसंदेह बोलती कविताओं के जादूगर शिल्पी हैं। 'बात बोलेगी हम नहीं, भेद खोलेगी बात ही' जैसे शमशेर बहादुर सिंह के आर्ष–वाक्य को हृदयंगम कर लिया है, इन्होंने।

यह कहा जा चुका है कि वशिष्ठ अनूप प्रतिरोध के कवि हैं। किन्तु यदि और सूक्ष्म अनुशीलन किया जाय तो कहा जा सकता है कि वे निर्भयता के कवि हैं। वे पूरी मनुष्य जाति को, चाहे वह स्त्री हो, बालिका हो या किसान–मजदूर, सबको निर्भयता का पाठ पढ़ाते हैं। वे अनाचार–अत्याचार–शोषण से डरने नहीं लड़ने की ताकत पैदा करना चाहते हैं। इस निमित्त वे सत्ता एवं मीडिया से भी दो–दो हाथ करने को तैयार होते हैं और पाठक को सदैव अपने विचारों से, भावों से बाँधे चलते हैं। पाठक कहीं भी और कभी भी कवि से अपने को अलग नहीं कर पाता। वह जैसे उनकी कविताओं के टेक की 'टेरी' भरने लगता है। इस भावानुभूति में डूबा आम–आदमी धीरे–धीरे मुट्ठी बाँधने लगता है। यह 'मुट्ठी बाँधने' का साहस उसमें निर्भय–भाव की आश्वस्तिपरक संचेतना से उत्पन्न होता है। यहाँ कवि श्री नरेश मेहता का 1992 में ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करते समय दिया गया वक्तव्य याद आना लाजिमी है– "वस्तुतः मनुष्य को निर्भय बनाया जाना चाहिए, तभी उसे अपने चिद् रूप की प्रतीति संभव है। धर्म या राजनीति उसे निर्भय नहीं आश्रित बनाती है जबकि काव्य ही ऐसी सर्जनात्मक सत्ता है जो उसे न केवल शास्त्रों और शस्त्रों से मुक्त करवाती है बल्कि निर्भय बनाने के लिए वह धर्म या राजनीति का कोपभाजन बनने के लिए भी तैयार रहती है। आज का मनुष्य भयाक्रान्त है, इसी कारण वह इतना हिंसक और आक्रान्ता हो उठा है कि वह सब कुछ पादाक्रान्त कर डालना चाहता है। भय के वलयों में व्यष्टि और सृष्टि ही नहीं बल्कि समष्टि के अस्तित्व का भी प्रश्न उत्तरोत्तर गहराता जा रहा है। यह मदान्ध स्थिति आज के सर्जक से सर्जनात्मकता के किसी भी पूर्वकाल के संकल्प और प्रतिश्रुति से भी बड़ा संकल्प और प्रतिश्रुति चाहती है। और यह तभी संभव है, जब स्वयं कवि या सर्जक निर्भय हो। "

कहना न होगा कि तब से (1992) अब तक इस 'मदान्धता' का वलय कई गुना विस्तृत हो चुका है। नदी, पहाड़, महासागर ही नहीं, पाताल और आकाश तक आधिपत्य जमाने की होड़ वैश्विक पूँजीवाद एवं अधिनायकवादी संप्रभुओं के बीच एक खतरनाक स्तर तक पहुँच चुकी है। जिससे कवि वशिष्ठ अनूप भली–भाँति भिज्ञ हैं, सचेत हैं और पूरे निर्भय एवं निडर होकर अपनी आवाज उठाते हैं, 'हर जुल्म की कहानी पर इंकलाब लिखने की बात करते हैं। ' (पृष्ठ–44) 'ऐसी भ्रष्ट व्यवस्था बदले जनगण की ललकार है' (पृष्ठ–40) यहीं नहीं रुकते, वे आज की मीडिया को सीधे चेतावनी दे उठते हैं– "हत्यारों का महिमामंडन बन्द करो / चोर उचक्कों का अभिनन्दन बंद करो। " ऐसे तमाम गीत इस संग्रह की विशिष्ट सौगात हैं।

वशिष्ठ अनूप सिर्फ आग और क्रान्ति, विरोध और प्रतिरोध, ललकार और दुत्कार के ही कवि नहीं हैं बल्कि एक कोमल भावनाओं के–वात्सल्य–प्यार–दुलार, नेह–छोह की सहज अनुभूति के साथ–साथ प्रकृति, प्रेम, प्रणय और श्रृंगार जैसी रागात्मक संवेदना के भी कवि हैं। एक उजली हँसी (पृष्ठ–36) की पंक्तियों में आज के सामान्य व्यक्ति का कामकाजी जीवन, तमाम विसंगतियों में भी घर में नन्ही बेटी की दंतुल हँसी से रससिक्त हो उठता है। सूर, तुलसी की बाल–लीलाओं की यह अधुनातन कड़ी है–

"एक बेटी के पाँवों की रुन–झुन बजी / और घर देर तक गुनगुनाता रहा / एक उजली हँसी ने बढ़ाए कदम / प्यार से हर अधर मुस्कराता रहा। "

इसी तरह 'सपनों के वारिस' (पृष्ठ 88) में भी आधुनिकता बोध का वात्सल्य–रस छलकने लगता है। बाल क्रीडा–कौतुक ही नहीं सामान्य सी बतकही मम्मी–पापा को सारे सुखों से भर देती है–

"तुम आये तो यह धरती खुशियों से किलक उठी / तुम आये तो सारी अभिलाषाएँ चहक उठीं / अच्छा लगता जब घर की चीजें बिखराते तुम / अपनी मोहक किलकारी से गगन गुँजाते तुम। मम्मी से सारी बातें गुपचुप कर लेते हो / दिन भर की सारी थकान पल भर में हर लेते हो / बहुत मजा आता जब छिपते या शरमाते तुम / इस रीते जीवन को हो सम्पूर्ण बनाते तुम /"

आज के पूँजीवादी आर्थिक– युग में संयुक्त परिवारों का विघटन, एकल या 'न्यूकिलियर फेमिली' का होते जाना, गाँव के खेत–खलिहान, बाग–बगीचे से दूर होती शहरी पीढ़ी का कंक्रीट के जंगल में खोते जाना एक ज्वलन्त समस्या है। प्रकृति और मनुष्य के आपसी सम्बन्धों के बीच बढ़ती दूरी का प्रभाव निश्चित ही मानव–समाज पर पड़ रहा है। कवि इस चिन्ता से पूरी तरह अपने को जोड़ते हुए, प्रकृति की ओर लौटने का जैसे निमन्त्रण दे रहा है। पारिवारिक रागात्मकता की याद भी दिलाता है ताकि जो कुछ बचा हो, उसे ही सहेज लिया जाय। प्रकृति साहचर्य के वे पुराने दिन उसे याद आते हैं और जैसे अपने–आप से, अपनी पीढ़ी से वह पूछता है–

"फूलों पर इतराती शोख तितलियाँ कहाँ गयीं / फुदक–फुदक कर गीत सुनाती चिड़ियाँ कहाँ गयीं / बस्ते के बोझों के नीचे / बचपन नहीं रहा / घर तो ऊँचे बने, घरों में आँगन नहीं रहा / बजड़े के पत्तों वाली वो घड़ियाँ कहाँ गयीं / शहरों में बच्चों सँग बूढ़ी दादी नहीं रहीं / खेलों में गुड्डे–गुड़िया की शादी नहीं रही / दादी के किस्सों वाली सब परियाँ कहाँ गयीं /......... इठलाती–बलखाती प्यारी गुड़िया कहाँ गयीं / ....होली, चैता, लोरी और कजलियाँ कहाँ गयीं। " (पृ.–84–85)

बताने की आवश्यकता नहीं कि विकास की दौड़ में, गाँव को शहर बनाने की होड़ में हमने बच्चों का बचपन छीन लिया। प्रकृति की गोदी में खेलने, धूल–माटी में घरौंदे बनाते, बाजरे के पत्तों से हाथ में कलाई–घड़ी सजाते, गुड्डे–गुड्डियों का ब्याह रचाते, दादी की लोरी सुनते–सुनते, होरी–चैता के गुनगुनाते दिन अब ख्वाबों के दिन ही हो गए हैं।

प्रकृति–प्रेम के इन रागात्मक गीतों में ही कुछ कथा–रस से भरे गीत भी बन गये हैं जो भवानी प्रसाद मिश्र और नागार्जुन की याद दिलाते हैं। भेड़ी ताल (पृ.–75) तथा 'यहाँ जो एक महुआ था' (पृ.–96) विशेष उल्लेखनीय हैं। महुआ का पेड़ कवि को बुर्जुगों की निशानी ही नहीं कई इतिहास समेटे एक जीवित कहानी लगता है। पूरे गीत को पढ़कर इसकी रससिक्तता एवं भाव प्रवणता में डूबा जा सकता है।

कवि प्रेम, प्रणय–श्रृंगार के गीतों में भी पूर्णतया रससिद्ध है। प्रकृति के उपादानों से कविता का श्रृंगार करते हुए अपने प्रणय–निवेदन को शील का संस्कार देने में भी कवि समर्थ है–

"आम के बाग महमह महकने लगे / गंध बौराई अब तो चले आओ ना !
हर तरफ फूल ही फूल इठला रहे / चाह मुस्काई अब तो चले आओ ना !
है फज़ा में अजब–सी शरारत भरी / फूल आपस में करते हैं सरगोशियाँ
कोयलें सारी पागल हुई जा रहीं / सोच शरमाई, अब तो चले आओ ना !" (पृ.–105)

कितनी सादगी से मनुहार किया जा रहा है, सहज ही दृष्टव्य है–

"रंग उड़ने लगा फागुनी–फागुनी / जाने क्या कर रही है वसन्ती हवा / सिर्फ यादे हैं, गम हैं, खयालात हैं / और है तनहाई, अब तो चले आओ ना ! ......शाम भी है बदलने लगी पैरहन / आँख भर आई, अब तो चले आओ ना !"

सन्ध्या–सुन्दरी का पैरहन (वस्त्र) बदलना कहीं निराला की याद दिला दे तो नामुमकिन नहीं परन्तु यहाँ 'परी' नहीं है, साधारण मानवी प्रेयसी है। यही है आज का युग–बोध, कवि का सचेत राग–बोध।

इसी प्रकार का एक गीत है– मनवाँ अपनी मनमानी करे (पृ.–106) लेकिन यह मनमानी हर समय नहीं, सिर्फ फागुन में ही, जब बाबा देवर लगने लगते हैं। इस गीत में भी प्रकृति के उपकरणों से रति–भाव उत्पन्न किया गया है। यहाँ न सिर्फ प्रकृति बल्कि लोक भी पूरी मुस्तैदी से जमा है। एक पद के उद्धरण का लोभ संवरण नहीं हो पा रहा है–

"सरसों के, तीसी के फूल खिले हैं / गेहूँ मटर को लगाए गले है / महुए से मोती बरसने लगे हैं / आमों के मोजर महकने लगे हैं / बच्चों सी बातें ज्ञानी करें / मनवा अपनी मनमानी करें / फागुन में यह नादानी करे।"

डॉ. वशिष्ठ अनूप भले ही अपनी भूमिका में कहें– '....इसमें कुछ गीत प्रेम और सौंदर्य से भी बावस्ता हैं, जो तरुण मन के सहज उद्‌गार हैं' लेकिन लोक श्रुति है कि कवि कभी बूढ़ा नहीं होता तथा ज्ञानी कभी जवान नहीं रहता और जब कवि ज्ञानवान हो तो दोनों सीमाएँ टूट जाती हैं। सच तो यह है कि प्रेम और सौंदर्य व्यक्ति, समाज ही नहीं पूरी सृष्टि की अस्थि–मज्जा है। इसके बिना तो जीवित संसार की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इतिहास गवाह है कि विश्व के महान क्रान्तिधर्मी कवियों ने प्रेम–श्रृंगार के श्रेष्ठ गीतों का प्रणयन किया है। वायरन, शेली, सदे ही नहीं जन कवि लोर्का, ब्रेन्जामिन मोलाइस, पाब्लोनेरुदा, नाजिम हिकमत ने भी तमाम प्रेम–कविताएँ लिखी हैं। यहाँ तक कि हिन्दी के राष्ट्रदृकवि दिनकर और महाप्राण निराला ने भी प्रेम और श्रृंगार की श्रेष्ठ कविताओं का सृजन किया है।

जनवादी–आन्दोलन धर्मी कविताओं की तरह अनेक प्रेम एवं श्रृंगार के गीतों की उपस्थिति इस संग्रह में हैं। युवा कवि की स्वप्नदर्शी प्रेम कविताओं के अलावा सद् गृहस्थ कवि की स्वकीया–प्रेम की अभिव्यक्ति भी बहुत हुई है। तुम मिली तो (पृ.–112) दुल्हन की तरह (पृ.–113) के साथ ही मजदूर का पत्र (पृ.–99) विशेष उल्लेखनीय है। मजदूर के पत्र में परदेश गये एक श्रमिक को गाँव में छूटी पत्नी और बच्चों की सुधि उसे बेचैन करती है। शील युक्त इस गीत में प्रेम की इस व्यथा को कुछ यूँ शब्द मिलते हैं–

"तन से तो हूँ दूर बहुत / पर पास तुम्हारे मन है / कसम तुम्हारी अब तुम बिन / लगती हर घड़ी चुभन है / दिल का दर्द बहुत गहरा है / इसमें काफी दम है / किन्तु पेट की व्यथा प्रिये / सोचो क्या इससे कम है / जी करता उड़कर आ जाऊँ / लेकिन बँधे पखन हैं / कभी–कभी सपनों में सुनता / नन्हें–मुन्ने की किलकारी / उड़ जाती है नींद अचानक / छा जाती मुझ पर लाचारी / याद बहुत आता तब मुझको / अपना घर आँगन है। "

सारांशतः कहा जा सकता है कि इस संग्रह की कविताएँ लय–छन्द से सधी–बँधी सहज प्रवाहपूर्ण गीत–कविताएँ हैं, इनकी सम्प्रेषणीयता एवं श्रोता से तादात्म्य करने की क्षमता ने इन्हें सहज ही स्मरणीय बना रखा है जिससे ये किताबों में कैद रहने वाली नहीं बल्कि जुबानों पर आजाद भ्रमण करने वाली कविताएँ हैं। इन गीतों को किसी आलोचक–समीक्षक के प्रमाण–पत्र की जरूरत नहीं है बल्कि ये स्वतः प्रेम–सौंदर्य की रागात्मकता को सहेजे आम–आदमी के जीवन में प्रतिरोध–संघर्ष की आवाज बनकर उन्हें निर्भय बनाने के लिए संकल्पित संवादधर्मी भूमिका में सदैव जन–जन के बीच गूँजायमान कविताएँ है, जो अपना प्रमाण स्वयं हैं।

★

उम्मीद जगाती वशिष्ठ अनूप की .ग़जलें

प्रो. अमरनाथ

वशिष्ठ अनूप मेरे शिष्य हैं, गुरु भाई हैं, विभागीय सहयोगी रहे हैं और आज देश के सर्वाधिक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में से एक के सर्वाधिक समृद्ध विभाग के आचार्य एवं विभागाध्यक्ष हैं। वे नेशनल पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, बड़हलगंज, गोरखपुर में मेरे पहले बैच के बी०ए० के विद्यार्थी रहे हैं। उन्होंने भी गोरखपुर विश्वविद्यालय के उन्हीं गुरुओं से शिक्षा ली हैं जिनसे मैंने कुछ दिन तक– नेशनल पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, बड़हलगंज में वे मेरे सहयोगी शिक्षक रहे हैं। एकाधिक बार मैं उनके गाँव जा चुका हूँ और उनके परिवार के अन्य सदस्यों से भी बहुत आत्मीयता के साथ जुड़ा रहा हूँ। मुझे खुशी है कि आज भी यह आत्मीयता बनी हुई है। किन्तु इतनी भूमिका के बाद अब मैं जो कुछ कहने जा रहा हूँ, वह उनके सिर्फ सृजन कर्म और खासतौर पर ग़ज़लों को लेकर है और उसमें एक आलोचक की नैतिकता और दायित्व का ख्याल रखते हुए ही कहूँगा।

आज के जिन .ग़जलकारों नेग़ज़ल को यथार्थ से रूबरू कराया है उनमें वशिष्ठ अनूप अग्रणी हैं। उनके अब तक आधा दर्जन से अधिकग़ज़ल संग्रह आ चुके हैं। वेग़ज़ल को नई परिभाषा देते हैं और उसके लगातार बदल रहे तेवर को रेखांकित करते हैं। बहुत पहले उन्होंने घोषित किया था–

कल गुफ्तगू थी हुस्न और इश्क की मगर
भूखी जमात की पुकार आज है .ग़जल।

यह सच है कि ग़ज़ल ने इश्क और हुस्न को, वफा और जफा को न जाने कब से और किन–किन तरीकों से व्यक्त किया है। किन्तु उसमें इश्क और हुस्न के अलावा भी बहुत कुछ है। इसके बावजूदग़ज़ल को जो व्यापकता और ठोस .जमीन पिछली सदी में मिली वह सर्वथा नई और बेमिसाल थी।ग़ज़ल एक सामन्ती परिवेश की विधा है किन्तु .जमाने के बदलने के साथग़ज़ल ने अपना सरोकार भी बदल लिया है। अब वह रोटी की लड़ाई में शरीक होती है, तानाशाहों से जवाब तलब करती है, जनतंत्र की हिफ़ाजत में सन्नद्ध रहती है, पर्यावरण की रक्षा के लिए सचेत रहती है, मल्टीनेशनल कम्पनियों के इरादों को पहचानती और इसीलिए उससे सतर्क रहने के लिए बार–बार आगाह करती है, सत्तासीनों के चरित्र का पर्दाफाश करती है, किसानों के हक का ख्याल रखती है, मजदूरों के हक की लड़ाई लड़ती है, गमों से उबरने की राह बताती है, प्रेमीजनों को आश्वस्त करती है और हमें अच्छा मनुष्य बनाती है ताकि हम मनुष्य से प्रेम करना सीख सकें।

वशिष्ठ अनूप की .ग़जलों में वह सब कुछ है जो आज के समाज में दिखायी देता है और हमें ठहरकर सोचने को मजबूर कर देता है। वशिष्ठ अनूप की .ग़जलों को समझने के लिए किसी तीसरे की जरूरत अमूमन नहीं पड़ती। उनकी भाषा इतनी सरल और कथ्य इतने संप्रेषणीय होते हैं किग़ज़ल के भाव सहज ही .जेहन में उतरते चले जाते हैं। यही तोग़ज़ल की .खासियत होती है। किसी ने कहा भी है कि– शेर दर अम्ल है वही यारो/सुनते ही दिल में जो उतर जाए। आज एक रचनाकार के लिए सिर्फ कलम की ताकत और संवेदनशीलता ही अपेक्षित नहीं होती। उसके लिए सबसे .जरूरी है कि वह वक्त को पहचाने और आज के दौर में यह बहुत कठिन काम है। अब आ़जादी के पहले का वह दौर नहीं है जब सात समंदर पार से आने वाला और गोरी चमड़ी वाला दुश्मन आसानी से पहचाना जा सकता था। आज दुश्मन हमारे ही बीच में है, हमारे बीच का है, मगर इतना चालाक है कि उसे पहचान पाना बहुत कठिन है। वह दोस्त बनकर ही हमारा गला काटता है। दोस्त और दुश्मन की पहचान अब बड़ों–बड़ों को नहीं होती, फिर कलम की धार किस पर हो यह आसानी से समझ में नहीं आ सकती। हमें यह कहते हुए बेहद खुशी हो रही है कि वशिष्ठ अनूप को दोस्त और दुश्मन की पहचान है। वह अच्छी तरह समझते हैं कि–

हदों के पार होता जा रहा है/समय खूँखार होता जा रहा है।

और

समझना उसको मुश्किल है बड़ा शातिर खिलाड़ी है
वो ख़ंजर बेचने वाला अहिंसा का पुजारी है। इतना ही नहीं,
दिखाता है ये सपने और आँखें छीन लेता है
हमारा रहनुमा है या कि यह शातिर मदारी है।

उन्हें साफ लग रहा है कि–

चलो बा़जार से घर आ गये पर/ये घर बा़जार होता जा रहा है।

आज देश के कई हिस्से माओवाद से प्रभावित हैं। सरकार उसे बन्दूक के बल पर जितना ही दबाने की कोशिश कर रही है उतनी ही यह समस्या बढ़ती जा रही है। वशिष्ठ अनूप इसके कारणों को अच्छी तरह समझते हैं। जंगलों का जैसे–जैसे सफाया हो रहा है यह समस्या उसी अनुपात में बढ़ती जा रही है। इतना ही नहीं, इससे पर्यावरण की भी गंभीर क्षति हो रही है। जंगल काटकर मनुष्य अपने ही विनाश की ओर दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। वशिष्ठ अनूप सवाल करते हैं,

क्यों उठ रही हैं लपटें, क्यों हुआ है लाल जंगल
देना पड़ेगा उत्तर करता सवाल जंगल।

सुनते हैं कि एक पूँजीवादी लोकतंत्र की संसद को कार्ल मार्क्स ने सूअर–बाड़े की संज्ञा दी है। यह लोकतंत्र सिर्फ कहने के लिए है। ऐसे लोगों के लिए आ़जादी का क्या अर्थ? तथाकथित आ़जादी के इतने वर्ष बाद जब देश की यह दशा है तो इसे लोकतंत्र क्यों कहा जाए? ऐसे लोकतंत्र को यदि वशिष्ठ अनूप बंदरों का बाड़ा कहें तो बुरा क्या है?

कभी कुर्सी के ऊपर से कभी टेबुल के नीचे से
हमारे देश की संसद में बंदर बात करते हैं।

इस संसदीय व्यवस्था से कवि का विश्वास पूरी तरह उठ चुका है। वह बिना किसी संकोच के कहता है–

जो मुजरिम हैं वही सब बन के पहरेदार बैठे हैं
वहाँ संसद में कितने देश के गद्दार बैठे हैं।
किसी अजगर–से ये हर ओर फेटा मार बैठे हैं
समूचे देश की छाती पर कुछ परिवार बैठे हैं।

आज दुबारा देश गुलामी की ओर बढ़ रहा है। मल्टीनेशनल कंपनियों की गिरफ्त में पँहसता जा रहा है। वशिष्ठ अनूप को चिन्ता है कि–

बारी–बारी सबको खाता जाएगा/धीरे–धीरे मुँह पैह्लाता जाएगा।
हम तो उसके पैरों को सहलाएंगे/वह हमको हरदम लतियाता जाएगा।

सहलाना और लतियाना जैसे शब्दों का इतना सहज और सार्थक प्रयोग कम देखने को मिलेगा। इसमें निराशा नहीं, यह चेतावनी है। जिसने समझौता करना नहीं सीखा, जिसने संघर्ष की राह चुनी है उसे धक्के तो लगेंगे ही–

आँखें टिकी हैं जब भी दहकते सवाल पर/थप्पड़ लगे हैं त़ेज विचारों के गाल पर।
इक प्रश्न बार–बार कौंधता है ़जेहन में/कब तक जियेंगे ़कातिलों की देखभाल पर?

महान रचनाएँ संघर्षों के दौरान ही जन्म लेती हैं। बड़े रचनाकारों को संघर्षों से ही ऊर्जा मिलती है। जो तपता नहीं, वह कुंदन नहीं बन सकता। वशिष्ठ अनूप लिखते हैं,

''कोई अंगार दिल को दग्ध करना है, बहुत दिन तक,
न हो यह आग तो शब्दों में चिंगारी नहीं आती।''

वशिष्ठ अनूप के नएग़ज़ल संग्रह का शीर्षक ही है, ''गर्म रोटी के ऊपर नमक–तेल था।'' यह शीर्षक देकर वे अपना संदेश पाठकों तक सहज ही संप्रेषित कर देते हैं।

हमारे समय की इस पूँजीवादी व्यवस्था में सबसे ज्यादा दुखी, देश का पेट भरने वाले किसान हैं। आ़जादी से पहले उनकी जो दशा थी वैसी ही दशा आज भी है। प्रेमचंद के पात्रों का बेहतरीन प्रयोग करके इस तथ्य का सुन्दर अंकन किया है. ग़जलकार ने–

''छोड़कर घर चल पड़ा हल्कू मजूरी के लिए,
पेट तक भरता नहीं, खेती के कारोबार में।''

दरअसल बड़े पूँजीपतियों का यही लक्ष्य भी है। उन्हें सस्ता श्रम चाहिए जो गाँवों में ही मिलेगा। इसीलिए उनके निर्देश पर संसद में ऐसे कानून बन रहे हैं जिनसे किसान खेती छोड़ दें और शहरों में आकर मजदूरी करें। वशिष्ठ अनूप का एक मार्मिक शेर है–

''हर ओर खट रहे हैं यू.पी. बिहार हैं हम,
हर रोज पिट रहे हैं, सबके शिकार हैं हम।''

यू.पी. बिहार के मजदूरों के दर्द को रेखांकित करने वाली कविता मुझे पहली बार देखने को मिली। सैकड़ों वर्ष से यू.पी. और बिहार के श्रमिक देश–विदेश में अपना श्रम बेचते आ रहे हैं। कई देशों को उन्होंने समृद्धि के शिखर तक पहुँचा दिया।

वशिष्ठ अनूप का बचपन गाँवों में बीता है। गाँव बार–बार और तरह–तरह से उनकी .ग़जलों में आता है। माँ का आँचल, बहन की गोद, भैया के कंधे की सवारी, बाबा के किस्से, मिट्टी के खिलौने और घरौंदे, कोल्हुआड़े में पकते गुड़ की खुशबू, चने और कच्चे मटर का होरहा, गट्टे और बतासे– न जाने कितनी स्मृतियाँ वशिष्ठ के जेहन में बार–बार कौंधती रहती हैं। उन्हें याद आती है–

महुए के दोनों में बकरी के दूधों से भरे हुए
रोज–रोज एक नई शरारत वाले वे मुस्काते दिन।

जड़ों से जुड़ाव के चित्र तो देखते ही बनते हैं–

फास्ट फूड और चमक–दमक वाले इस युग में भी
अम्माँ के हाथों का खाना अच्छा लगता है।
फूलों की घाटी में तितली के पीछे–पीछे
दूर देश तक उड़ते जाना अच्छा लगता है।

होली के अवसर पर गाँवों की सामूहिकता देखते ही बनती है। यह एक ऐसा त्योहार है कि जब लोग अपने सारे गिले–शिकवे भूलकर आपस में गले मिलते हैं, रंग खेलते हैं और एक–दूसरों को गले लगाते हैं। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से अब दिन प्रतिदिन होली की रौनक फीकी होती जा रही है। इसके बावजूद अब भी गाँवों में इस त्योहार की रौनक काफी कुछ बरकरार है। कभी नजीर अकबरबादी ने दो दर्जन से अधिक .ग़जलें सिर्फ होली पर लिखी थीं। हमें बेहद खुशी है कि आज वशिष्ठ अनूप ने भी होली पर बहुत ही सुन्दरग़ज़ल लिखी है–

रंग हँस–हँस के लगाओ कि आ गई होली
प्यार के गीत सुनाओ कि आ गई होली।
तोड़कर जाति–धर्म, ऊँच–नीच की सरहद
सभी को दिल से लगाओ कि आ गई होली।

इस संग्रह में इश्क और हुस्न को बयान करने वाली .ग़जलें भी कम नहीं हैं। वशिष्ठ अभी युवा हैं और उनसे ऐसी आदि भी है–

तुम्हें जो देखूँ तो दिल की धड़कन से एक मीठी–सी चाह बोले,
कहाँ से सीखा हुनर ये तुमने. जबान चुप और निगाह बोले।

खुलें जो आँखें तो तुमको देखूँ हों बन्द पलकें तो दिल में तुम हो,
हजारों अरमाँ मचल रहे हैं, .खामोशी भी बेपनाह बोले।

मुंबई, कोलकाता, पंजाब आदि की अर्थव्यवस्था यूपी और बिहार के श्रमिक ही संभाले हुए हैं किन्तु ये ही सबसे ज्यादा दुत्कारे भी जाते हैं। इन्हें मारने–पीटने की घटनाएँ आए दिन सुनने को मिलती हैं।

कवि अमूमन अपने बचपन को याद करते हैं। वशिष्ठ अनूप अपने विद्यार्थी जीवन को, विश्वविद्यालय में पढ़ते समय और छात्रावास में बिताए गए जीवन को अपने जीवन के स्वर्णिम काल की तरह याद करते हैं। इसी क्रम में वे गुरु गोरखनाथ की साधना स्थली के रूप में, कबीर की कर्मस्थली के रूप में, प्रेमचंद की अमर रचना 'ईदगाह' और फिराक के 'गुल–ए–नगमा' की सृजन स्थली के रूप में याद करते हुए कहते हैं–

''वे छात्रावास के दिन स्वर्ग से भी खूबसूरत थे,
खुशी के रंग छलकाता वो मधुबन याद आता है।''

इसी तरह उनका एक शेर है–

''मुझे पतझड़ भी फूलों का नगर मालूम होता है,
रहो तुम साथ तो जंगल भी घर मालूम होता है।''

कहीं–कहीं वशिष्ठ अनूप का 'अन्दाज–ए–बयां' मुग्ध कर देने वाला है। जब वे कहते हैं कि–

''आँखें चुरा रहे थे जो मिलने पे रूबरू,
अब देखिए न आँख से सपने चुरा लिए।''

तो अपनी जबांदानी के लिए विख्यात रीतिकालीन कवि घनानंद याद आते हैं–

''यूँ झटककर जो जुल्फों को बिखरा दिया,
यक–ब–यक सारा आकाश काला हुआ।''

वशिष्ठ अनूप का यह बिम्ब तो लाजवाब है–

''झपकने से इनकार करती हैं पलकें,
कमल झील से एक निकला नहाकर।''

फिलहाल, वशिष्ठ अनूप की .ग़जलों की खूबी यह है कि वह हमें, रिझाती है, पुचकारती है, यथार्थ से रू–ब–रू कराती है और इन सबके साथ ही भविष्य के प्रति उम्मीद जगाती है। उनके .ग़जलों का मूल स्वर है–

''समुन्दर है अगम लेकिन किनारा ढूँढ़ लेंगे हम,
उम्मीदों के मुसाफिर हैं उजाला ढूँढ़ लेंगे हम।''

वशिष्ठ अनूप की .ग़जलों की एक बहुत बड़ी विशेषता उसकी सहजता और बोधगम्यता है। कहीं भी उन्होंने अनावश्यक विद्वत्ता बघारने की कोशिश नहीं की है। चूँकि विषय उनके मन में स्पष्ट हैं इसलिए अभिव्यक्ति में भी स्पष्टता है। कथ्य और शिल्प का सन्तुलन उनकी .ग़जलों की लोकप्रियता का सबसे महत्वपूर्ण कारण है। हमें अभी उनसे बहुत उम्मीदें हैं।

★

'गर्म रोटी के ऊपर नमक-तेल था' में प्रेम और सौन्दर्य

डॉ. सुधाकर मिश्र

.ग़जल अरबी, फारसी तथा उर्दू के पश्चात् आज हिन्दी में भी जन–चेतना को आन्दोलित करने वाली एक सशक्त काव्य–विधा बन गयी है। उसके विशिष्ट आकर्षण तथा हृदय–रंजन की शक्ति के माध्यम से कवियों ने धूमिल होते हुए भारतीय जीवन मूल्यों, वर्तमान महानगरीय सभ्यता की विकृतियों, अशोभनीय जीवन जी रहे पिछड़े तबके की दयनीयता, नेताओं के स्वार्थ तथा धार्मिक उन्मूलन आदि के वर्णन में अद्भुत सफलता प्राप्त की है। इसके भाव–विधान तथा शिल्प–विधान के प्रति रचनाकारों की जागरूकता दर्शनीय है। हिन्दी .ग़जलों को आज की स्थित तक लाने एवं निखारने में भारतेन्दु, निराला, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन शास्त्री एवं दुष्यन्त कुमार आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दुष्यन्त कुमार ने अपनी .ग़जलों में जिस तरह सामाजिक विकृतियों–विरूपताओं आदि का चित्रण किया, उससे काव्य–रसिकों एवं रचनाकारों में एक नया उत्साह पैदा हुआ। दुष्यन्त के पश्चात् अच्छी .ग़जलें लिखने वालों की संख्या लगातार बढ़ती रही। ऐसे ही .ग़जलकारों में एक नाम है डॉ० वशिष्ठ अनूप का जो एक सफल प्राध्यापक के साथ–साथ एक उत्कृष्ट कवि और .ग़जलकार भी हैं।

'गर्म रोटी के ऊपर नमक–तेल था' उनका सद्यः प्रकाशित .ग़जल–संग्रह है। इस संग्रह में किया गया प्रेम तथा सौन्दर्य का वर्णन बहुत कलात्मक एवं रोचक है। उनके विचार से किसी को देखने अथवा किसी के बारे में कुछ आकर्षणभरी बातें सुनने से हृदय में जो आनन्द उत्पन्न होता है, उसे प्रेम कहते हैं। प्रेम–पात्र के प्रति सम्पूर्ण समर्पण प्रेम को महनीय बना देता है। प्रेम का सार्थक विकास अधिकतर प्रबन्ध काव्यों में ही होता है। मुक्तक संग्रहों में प्रेम को प्रबन्धवत पूर्णता प्राप्त नहीं होती। अनूप जी के इसग़ज़ल संग्रह में बिजली की कौंध के समान प्रेम के कुछ चित्र सामने आये हैं। इन्हें प्रेम का क्षणचित्र कहा जा सकता है। परन्तु ये क्षणचित्र भी प्रेम को विचित्र अथवा अद्भुत बना देते हैं। प्रेम के लिए यह आवश्यक नहीं कि प्रेम–पात्र से प्रेमी का पुराना सम्बन्ध हो ही। कभी ऐसा भी हो सकता है कि कोई प्रेम–पात्र प्रेमी के नगर में आकर रहने लगे और प्रेमी का हृदय उस लावण्यमूर्ति से जुड़ जाए। ऐसी ही घटना से यहाँ प्रेम का प्रारंभ होता है–

जब से तुम आके रहने लगे हो यहाँ,
यह शहर मुझको जन्नत से प्यारा लगे। (पृ० १११)

प्रेम–पात्र के प्रति लगाव हो जाने के कारण वह शहर जिसमें कवि रहता है कवि को जन्नत से प्रिय लगने लगता है। कवि अनुभव करता है कि प्रेम–पात्र की आँखों में निश्चित रूप से जादू–टोना करने की शक्ति है, जिससे उसे देखते ही वह अपने आपको भूल जाता है–

जब से देखा है खुद को भूल गया,
तेरी आँखों में जादू–टोना है। (पृ० ११२)

ऐसा तो होना ही है, क्योंकि प्रेम–पात्र का सौन्दर्य अद्भुत आकर्षणयुक्त है। उसमें असाधारण छवि–गुंफन है। उसका शरीर एकदम मुरमुरा (नाजुक) है। कभी लगता है वह समुद्र मंथन से निकली है, तो कभी लगता है कि वह मानव की संतान नहीं अपितु स्वर्ग की कोई अप्सरा है। उसकी हँसी फूलों–सी है। उसकी आँखों में मीन, खंजन और हिरन की आँखों का वैशिष्ट्य है। उसकी गुनुनाहट अप्सरा–जैसी और स्वर को किला–जैसा है। उसका शरीर आरती के दीप की शिखा के समान छरहरा और पवित्र है। उसका रंग भी दीपशिखा के रंग जैसा है–

कोकिला के स्वरों में सुना आपको,
आरती के दिये में शिखा की तरह। (पृ० ६२)

तुलसीदास ने भी सीताजी के शरीर को छवि–गृह में जलती हुई दीप–शिखा के समान बताया है–

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छवि गृहँ दीपसिखा जनु बरई।। ('मानस', बालकाण्ड)

उसकी हँसी से चाँदनी उज्ज्वल है, और सावनी घटाओं में उसी के जुल्फों का रंग–रूप व्याप्त है। उसके अधर गुलाब–जैसे और कांति सुवर्ण–जैसी है। वह जब जुल्फों को झटक कर बिखेरती है तो सारा आकाश काला हो जाता है–

यूँ झटक कर जो जुल्फों को बिखरा दिया,
यक–ब–यक सारा आकाश काला हुआ। (पृ० ५७)

कवि का प्रेम ऐसी सौन्दर्यमूर्ति के आकर्षण से उत्पन्न हुआ है जो कभी गदोली पर लगी मेंहदी के कारण उसे अपनी ओर खींचता है, कभी कान की सामान्य पीतल वाली बाली से मुग्ध कर देता है। कभी प्रेम–पात्र का शरीर उसे फूलों से लदी डाली–सा प्रतीत होता है। आज के इस निर्लज्जता के दौर में वह युवती कवि को गाँव की सलीकेदार नारी के समान लगती है। यही नहीं कभी–कभी वह अप्सराओं की समझ में खुशी बिखेरती परियों के मध्य एक सीधी–सादी ऋषिकन्या जैसी प्रतीत होती है। उसमें प्रेम विभोर करने की अपार शक्ति है जो उसकी सादगी में छिपी हुई है–

अप्सराओं की सभा में, चहकती परियों के बीच,
एक ऋषि कन्या–सी तेरी सादगी अच्छी लगी।'' (पृ० १३)

कवि के अनुसार प्रेम उफनते सिन्धु के समान दो हृदयों से प्रवाहित स्नेहधारा के सदृश होता है। उसे उस अद्भुत राग के समान समझना चाहिए जिसे सुनकर लोग सब कुछ भूल जाते हैं। उसकी व्याप्ति सर्वत्र है। कवि को अपनी सरस की लय तथा धड़कनों की रवानी में उसी के दर्शन होते हैं–

तुम्हीं तुम हो साँसों की जद में हमेशा,
मेरी धड़कनों की रवानी में तुम हो। (पृ० २५)

सुबह झील में खिले कमल निशा में पुष्पित रातरानी में उसी की छवि झलकती है। धीरे–धीरे प्रेमोन्मत्त कवि उस रमणी को नारी की तमाम आराध्यमूर्तियों में और प्रकृति की दुर्लभ शक्तियों में विद्यमान पाता है। जैसे भक्त को भगवान सर्वत्र दिखायी पड़ते हैं, उसी प्रकार प्रेमी कवि को प्रिया का स्वरूप सर्वत्र दृष्टिगत होता है। यही तो प्रेम की एकनिष्ठता और श्रेष्ठता है। हो सकता है ऐसे वर्णन में किसी को बौद्धिकता की झलक मिले, परन्तु है यह लौकिक का अलौकिकत्व को स्पर्श करने का एक सुन्दर प्रयास। इन वर्णनों में सम्मोहकता तो है ही, मधुरता एवं कलात्मकता भी है।

प्रेम की सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थिति वहाँ होती है, जहाँ प्रेमी प्रिय को को प्राप्त कर लेता है, परन्तु उसे अपने आपको रखना पड़ता है। आत्मविस्मृति की यह स्थिति प्रेम का उत्कर्ष है। कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ इसी स्थिति को अभिव्यक्त करती हैं–

जानता हूँ ये राह है मुश्किल
तुमको पाना है, खुद को खोना है। (पृ० ११२)

बहुत कम लोग ऐसे होते हैं जिनका प्रेम जीवन भर एकरूप बना रहता है। अधिकतर तो प्रेम जुड़ता है, फिर टूट जाता है। कभी–कभी मान–मनौबल का क्रम जीवन भर चलता रहता है। शायद इसी कारण प्रेम में जीवन्तता बनी रहती है। कवि के अनुसार–

प्यार की उम्र ओस के मोती,
टूट जाना है फिर पिरोना है। (पृ० ११२)

मुझे लगता है कि अनूप जी स्वच्छन्द प्रेम के मापक हैं। अनुवरुद मनोवेगों के चित्रण में वे उक्त परम्परा के वणिकों से कुछ मिलते–जुलते हैं। ऐसे कवि अपने हृदय को मुक्त रखने में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। उनके यहाँ प्रेमी के सौन्दर्यगत प्रभाव के वर्णन में कहीं भी लुकाछिपी नहीं रहती। सौन्दर्य के प्रति लगाव–झुकाव और प्रेम की एकपक्षीयता उनकी पहचान है। स्वच्छन्द प्रेम के गायक कालिदास के प्रेम को दो

आत्माओं के बीच जन्म–जन्मान्तर का बन्धन भी लिए है। अनूप जी की ़गज़लों में इसकी अनुगूँज साफ सुनाई पड़ती है। एक जगह वे लिखते हैं– कितने युगों, सदियों और जन्मों से तुझे खोज रहा हूँ। मुद्दतों से मैं तुझे चाहता हूँ। सिंधु से, धरती से, जंगल–पर्वतों से तुम्हारे सम्बन्ध में पूछकर तुम्हारा पता लगाने की कोशिश मैंने की है। बादलों से भी तुम्हारी जानकारी लेने का प्रयत्न मैं कर चुका हूँ–

कितने जन्मों से, कितनी सदियों से, युगों से,
मैं तुझे ही चाहता हूँ मुद्दों से।
मैंने किस–किस से नहीं पूछा था तुमको सिंधु से, धरती से, जंगल–पर्वतों से। (पृ० ८०)

प्रेम–पात्र को सर्वाधिक सुन्दर चित्रित करना भी इस धारा के कवियों के प्रेम–वर्णन का एक हिस्सा है। अनूप जी की इन ़गज़लों में भी प्रिया को विधाता की अनुपम कल्पना कहा गया है–

विधाता के ह्रदय की एक/अनुपम कल्पना हो तुम,

तुम्हारा रूप ही जग में,/सुघर मातरम होता है। (पृ० ७२)

उसका देखने के बाद शरीर तो प्रेमी के साथ–साथ आता है, परन्तु उसका दिल पीछे छूट जाता है–

ये एक जिस्म है जो साथ में चला आया,
वो एक दिल था ़जरा बावरा–सा छूट गया। (पृ० १०१)

कोई लाख समझाये मगर प्रेमी के बाबर मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता–

लाख समझाओ सुनता नहीं यह,
मेरा मन भी बड़ा बावरा है। (पृ० ६८)

कवि के अनुसार प्रेम ईश्वर की सर्वोत्तम भेंट है। यदि मिल जाये तो उसका निर्वाह करना चाहिए–

प्रेम ईश्वर का अनमोल उपहार है,
गर मिला है, तो इसको निभाया करो। (पृ० ६०)

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनूप जी के इस संग्रह में कवि और सौन्दर्य का अत्यन्त कलात्मक तथा अनुभूतिपरक चित्रण हुआ है, जिसमें मन के सुख एवं दुःख की संश्लिष्टता आनन्द देने की शक्ति और यत्र–तत्र रहस्यात्मकता की झलक भी है।

जनगीत के प्रमुख हस्ताक्षर : प्रो. वशिष्ठ अनूप

डॉ. विनम्र सेन सिंह

गीत का विकास भारतीय परंपरा में वेदों से हुआ है, किन्तु आधुनिक गीत या प्रगीत अंग्रेजी के लिरिक के आधार पर विकसित हुआ है। छायावादी आत्मपरक सौंदर्य प्रेम के गीतों के बाद प्रगतिशील युग में गरीबों और शोषितों की समस्याओं को लेकर गीत लिखे गए किन्तु वे गीत मार्क्सवाद और भारतीय साम्यवादी पार्टी से जुड़े हुए होने के कारण भारतीय साहित्य में बहुत स्वीकृति नहीं पा सके किन्तु उन्ही के सामानांतर कुछ ऐसे बड़े– बड़े कवि हुए जिन्होंने स्वतन्त्र रूप से प्रगतिशील गीतों की रचना की। उसी की विकास परंपरा में समकालीन गीत और आज के जनगीत आते हैं। इसी गीत के नए कलेवर नवगीत में प्रो. वशिष्ठ अनूप नें कलम चलाई और उससे अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। उनके गीतों को आम जन ने अपनाया। जनगीत की सफलता की कसौटी भी यही है कि उसे कितना जनता ने अंगीकार किया और शोषण के विरुद्ध पर्यावरण को बचाने के लिए नशाबंदी आदि अभियानों के लिए इन गीतों के माध्यम से देश के आम जन ने कितनी आवाज़ लगाई।

प्रो. वशिष्ठ अनूप ने 1985 ई. में लिखे अपने एक गीत 'इसलिए' को रेखांकित करते हुए यह लिखा है– " इसमें हर शोषित, वंचित और संवेदनशील व्यक्ति को अपने मन की आवाज सुनाई पड़ी। इस एक गीत पर पूरे– पूरे लेख लिखे गए। सबसे पहले इसे गोरखपुर के साथियों ने गाया, फिर यह बनारस, इलाहबाद, लखनऊ, भोपाल, दिल्ली और मुंबई होते हुए पूरे देश में फ़ैल गया। इसे छत्तीसगढ़ और झारखण्ड के आदिवासियों ने गाया, नर्मदा बचाओ आन्दोलन का मुख्यगीत बना, नेपाल के माओवादियों को इसमें अपना दर्द दिखा, दिल्ली दूरदर्शन पर स्त्रियों से सम्बंधित एक सीरियल का शीर्षक गीत बना, सहारनपुर की महिलाओं ने शराबबंदी आन्दोलन में इसे गाते हुए धरना प्रदर्शन किया, बडहलगंज(गोरखपुर) की जनता ने एक धनपशु द्वारा अपनी वधू को जलाये जाने के बाद इसे गाते हुए मशाल जुलूस निकाल कर थाने का घेराव किया और अपराधियों को गिरफ्तार कराया। कुछ स्कूलों के बच्चे इसे प्रार्थना के साथ गाने लगे, भारत ज्ञान विज्ञान समिति ने इसे अपना मुख्य गीत बनाया। उनके सभी कार्यक्रम इसी गीत से आरंभ होते हैं। यह गीत बिहार और झारखण्ड के उन सुदूर दुर्गम इलाकों में भी पंहुचा जहाँ विकास के तमाम संसाधन अभी नहीं पहुच सके हैं। "

इस प्रकार उनके इस गीत ने और उनके तमाम गीतों में जनस्वर सुनाई पड़ता है। इसीलिए जनता ने इसे मुक्तभाव से अपनाया भी।

उन्होंने गाँव और किसानों की समस्याओं को विशेष रूप से इसमें रेखांकित किया है। गाँधी जी अपने सर्वोदय सिद्धांत में बताते हैं कि जिस–जिस ज़मीन को जो–जो जोतता बोता है उसपर उसका स्वामित्व होना चाहिए, किन्तु आजतक 70 वर्षों की आज़ादी के बाद भी ऐसा नहीं सो सका। आज भी मजदूर बंटाई पर या कूट पर खेती करता है और उसमें एक हिस्से का ही हकदार होता है, जबकि भूमि का मालिक शहर के बंगले में रहता है और कभी गाँव में झाँकने भी नहीं आता। ऐसे लम्बे समय तक खेत पर काम करने वाले किसानों में अपने हक़ की लड़ाई लड़ने के लिए किसान तैयार हो जाता है। जब भूमि का मालिक उसे अपना खेत छोड़ने के लिए कहता है। किसानों में दर्द और उसके लड़ाकू तेवर को कवि ने अपने गीत 'हम गीत न हरगिज़ छोड़ेंगे' में लिखा :–

इस खेत से जान हमारी है,
इस खेत से शान हमारी है,
इस खेत से है इज्ज़त अपनी,
यह खेत न हरगिज़ छोड़ेंगे।
हम खेत न हरगिज़ छोड़ेंगे।

यह खेत है पुरखों की थाती,
इसमें है हमारी परिपाटी,
इस खेत को जो छीनें हमसे,
यह खेत बचाने की खातिर,
हमको जीना है मरना है।

इस प्रकार कवि में गाँव और गाँव के किसान की संवेदना का स्वर बार–बार फूटता हुआ दिखाई पड़ता है। आज किसानों की हालत कितनी ख़राब है कि वो भूखमरी और आत्महत्या तक का शिकार हो रहा है। ऐसे में किसानों की आवाज को बुलंद करने में प्रो. वशिष्ठ अनूप का एक बड़ा नाम है। अपनी कविता 'बहुत मुश्किल में है खेतिहर' में वशिष्ठ अनूप लिखते हैं कि किसान को–

कभी इंसान छलता है,
कभी भगवान छलता है,
कभी हैं बैंक धमकाते
कभी धनवान छलता है,
सभी मुंह फेर लेते हैं
जिसे समझे सहारा हैं।
' ' '
पढाई नौकरी कपड़ा
दवाई खेत के बल पर
बुना है ख़्वाब बेटी की बिदाई
खेत के बल पर
मगर खेती किसानी से
न हो पाता गुजारा है।

ऐसा नहीं कि किसानों खेतिहरों मजदूरों तक ही उनके नवगीतों में आवाज़ उठी है बल्कि नारी सशक्तिकरण के लिए कवि लिखता है :–

चूड़ियों की खनक में है ममता भरी
लोरियों थपकियों और मनुहार है
पायलों की छमाछम में भी रागिनी
मन में गंगा की शीतल मधुर धार है।

लेकिन यही नारी जब संकल्प करके आगे बढती तो वह शक्तिपुंज बन जाती है या आग का गोला बन जाती है–

हम चढ़ीं जब तो एवरेस्ट बौना हुआ
हम उड़ीं जब तो आकाशा छोटा पड़ा
शक्ति बनकर खड़ी हो गई जब कभी
कोई दुश्मन नहीं देर तक है अड़ा
रौंद कर हर मुसीबत को बढती रही
कोई ऐसा कहाँ को हमें छोड़ दें।

गीतकार जब कभी आदमी के नाजुक रिश्तों को रेखांकित करता है तब उसकी भाषा भी बड़ी भावपूर्ण और सरस बोधात्मत बन जाती है। बेटी घर में अपनी उपस्थिति से अपनी हंसी से कितनी खुशियाँ लाती है इसे बड़े ही भावुक स्वर में कवि ने लिखा है–

एक बेटी के पावों की रुनझुन बजी

और घर देर तक गुनगुनाता रहा
एक उजली हंसी ने बढ़ाये कदम
प्यार से हर अधर मुस्कराता रहा।
\+ + +
सूर्य ने फूल की पंखुड़ी को छुवा
और सारा बदन थर–थारा सा गया

बूंद शबनम की मोती सी लगने लगी
गंध बोझिल पवन डगमगा सा गया
घोसलों से परिंदे लगे झाँकने
और वातावरण चहचहाता रहा।

इसी तरह बिगड़ते पर्यावरण पर भी गीत बड़े ही असरदार ढंग से लिखे गए हैं। पानी में संकट पर और प्रकृति के ऊपर प्रहार पर आदमी की क्रूरता का वर्णन करते हुए लिखा–

हमने लूटी जल की धरा
उसका कर डाला बंटवारा
नदियाँ सूख रही हैं सारी
पानी बिन फैली बीमारी
' ' '
जंगल जो जीवन दाता है
जीते मरते साथ निभाता
बनकर कवच करे रखवाली
हमने उसे मौत दे डाली

इन सारी मुश्किलों में भी कवि आशावादी है और अँधेरे में एक मशाल जलाने का आह्वान करता है–

अँधेरा बलवान होता जा रहा है,
यह मशालों को जलाने का समय है।
भेडियों की फ़ौज हमलावर हुई है,
अब तो दीपक राग गाने का समय है।
और इसीप्रकार एक दीपक शीर्षक गीत में कवि कहते हैं–
हमने माना बड़ी मुश्किलें हैं,
गम का बादल बहुत है घनेरा।
एक दीपक अगर जल उठे तो,
कांप जाता है सारा अँधेरा।

क्योंकि वशिष्ठ अनूप पेशे से अध्यापक हैं इस लिए वह शिक्षा के महत्व को ठीक ढंग से समझते हैं। अपने गीतों में वह समाज को केवल उसके सामाजिक उत्तरदायित्व पर ही सचेत नहीं करते अपितु वह समाज को शिक्षित होने का भी सन्देश देते हैं। वह अपने एक गीत 'पढना बहुत जरूरी है' में कहते हैं–

जीवन में कुछ करना है तो पढना बहुत जरूरी है,
सचमुच आगे बढ़ना है तो पढना बहुत जरूरी है,
पढने से इस बंद ह्रदय की कलियाँ खिल जाती हैं,
पढ़ लिख लेने से इंसा को मंजिल मिल जाती है।
पढ़े लिखे लोगों से हरदम डरते हैं अन्यायी,
ज्ञानशक्ति होने से जुल्म की चूलें हिल जाती हैं।
हक की खातिर लड़ना है तो पढना बहुत जरूरी है।

यहाँ वह पढ़े लिखे होने के कई फायदे बताते हैं। वह एक तरफ तो शिक्षा को मनुष्य के विकास की सीढ़ी बताते हैं वहीं दूसरी तरफ वह क्रांति के लिए भी शिक्षा की आवश्यकता बताते हैं।

समाज की अनेक विद्रूपताओं में एक वीभत्स विद्रूपता दहेज़ प्रथा भी है। दहेज़ पर अनेक कवियों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। प्रो. वशिष्ठ अनूप ने भी इस समस्या पर अपनी दृष्टि डाली अपने गीतों के माध्यम से। 'दहेज क दानव' शीर्षक से इन्होने एक भोजपुरी गीत लिखा है। इनका यह गीत एक सामान्य परिपाटी के गीतों से मुझे कुछ भिन्न लगता है। इन्होंने इस गीत में मिथकों के माध्यम से ऐतिहासिक पात्रों की सहायता लेकार इसके समापन के लिए किसी वीर महापुरुष के अवतार की कामना की है। वह इस गीत में कहते हैं कि–

फूल जइसन बदन से लापतिया उठे,
आगि इ कहियो पे आखिर बुताई कि ना।
रोज हुंकार एकर बढ़ल जात बा,
इ दहेजवा क दानव मरे कि ना।
\+ + +
द्रौपदी आज के के कन्हैया कहे'
हर तरफ जब दुशासन नजर आवता।
कृष्णा कुर्सी के माया में बाँटे फसल,
लाज अबला के केहू बचाई की ना।

और इसी गीत में आगे वह कहते हैं और कहते है कि औरत अपनी कोख से जन्म देती है एक पुरुष को और ऐसी स्त्री को ऐसे पुरुष भला उस ममता को, उस मातृशक्ति को, उस देवी को भला क्यों पीड़ित करता है–

मर्द के जन्म दे के जियावेला जे,
दूध अंचरा में ढक के पियावेला जे,
सबके भईले प सोहर सुनावेला जे,
ओकरे भईले प सोहर गवाई कि ना।

प्रो. वशिष्ठ अनूप के गीत संग्रहों में ऐसे अनेक गीत मिल जाएंगे जो एक अदद भी उसकी रचनाधर्मिता उनके विचार प्रवणता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। प्रो. अनूप के गीतों में कहीं मुझे भवानी प्रसाद मिश्र जैसा तेवर दिखता है तो कहीं गोपाल दास नीरज जैसी प्रेममयी वाणी। यह प्रेम और तेवर का मेल उनके रचना संसार में चार चाँद लगाता है।

प्रो. वशिष्ठ अनूप एकांकी गीतकार नहीं है उन्होंने सामाजिक सरोकार के गीतों के साथ साथ प्यार मोहब्बत के भी बड़े अनूठे गीत लिखे हैं। उनके जनगीत किसान मजदूर के शोषण पर केन्द्रित हुते हुए भी वह किसी राजनीति के मतवाद से प्रतिबद्ध नहीं लगते हैं। वह एक उन्मुक्त बंधनहीन और स्वतंत्रचेता कवि हैं। उन्होंने गीतों में जनगीतों के साथ ही साथ लोकधुन के अनेक गीत मातृभाषा भोजपुरी में भी बड़े ही सहज और लोकप्रिय गीतों की रचना उन्होंने की है। मेरी दृष्टि में वशिष्ठ अनूप हिंदी के पांक्तेय रचनाकार हैं और विभिन्न सम्मानों द्वारा उनकी रचनाधर्मिता को स्वीकृति भी मिली है।

★

जीवन-राग और जीवन की लय-छन्द के .ग़जलकार

राजदेव सिन्हा

''मुखमंडल की दीप्ति मनोहर / आकर्षक वह मुस्कान मधुर
दर्शन पा उस अमरित मन का / भावों के उगते नव अंकुर।''

दिव्य दीपित मुखंडल, वैदुष्य विमंडित उन्नत ललाट, चमकती करुणार्द्र आँखें सुसंयमित केश, शोणित प्रभा से दमकती देह–यष्टि, अधरों पर मंद–मंद मृदु मुस्कान, वाणी में मिास, मस्तिष्क में चिंतन का आकाशकृयही है प्रो० वशिष्ठ अनूप जी की लालिमा युक्त बाह्याकृति जो प्रभूत प्रभा बिखेरती, व्यापक वितान बुनती साहित्याकाश को भास्वर कर जाती है।

संवेदना–संपृक्त, पाटल सुरभि सिक्त चंदनचर्चित, विवेक–विभा–विभासित, राष्ट्रहित–जनहित–समर्पित, साहित्यज्ञ–काव्यमर्मज्ञ, वत्तृह्रत्व–कला–विशारद, प्रभावोत्पादक प्राध्यापक, माँ वीणापाणि के वरद्पुत्र प्रखर–प्राज्ञ डॉ० वशिष्ठ अनूप जी के अन्तस् से स्फुरित सारस्वत वाणी साहित्यिक मंत्रों से संप्रेषित होकर श्रोताओं के मन–मानस को तरंगायित कर देती है। गंभीर चिंतन, मनन और पांडित्य से प्रांजल विषयानुकूल तथ्याधारित वक्तव्य की विरलता–विलक्षणता ही उन्हें औरों से विलग और लोकप्रिय बनाती है। इनके ऊर्जस्वित व्यक्तित्व में समर्पित साहित्य–साधना, अखण्ड रचनाधर्मिता तथा वैषयिक पांडित्य का अपूर्व संगम श्लाघनीय, अभिवंदनीय है। तभी तो पूरी तल्लीनता, तन्मयता, सजीवता–सजगता के साथ सापेक्ष दृष्टि रखते हुए युगद्रष्टा–युगस्रष्टा की भाँति अपने समय और श्रम की समिधा देकर प्रेमालेपित भाव से लगभग चार दशक से सतत् सृजनरत हैं।

इनके प्रभामंडल के अन्तर्गत हर वर्ग के विविध रुप–रस–गंध से समन्वित सजग–सचेत रचनाकारों की एक लम्बी श्रृंखला है और वे अपने शब्दों–आशीर्वाद से उन सबों के भाव को अभिसिंचित करते रहते हैं। युवा ऊर्जा से ओत–प्रोत इनके व्यक्तित्व में जो सहज स्नेहशीलता, समाज सजगता, संस्कृति उद्गाता, साहित्यचेता और राष्ट्रचेतना का भाव है वह स्पृहणीय–अनुकरणीय है।

बहुआयामी व्यक्तित्व और बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ० वशिष्ठ अनूप जी जीवन के विविध संदर्भों से जुड़े बहुपक्षीय रचनाकार हैं। वे एक ही साथ कवि–गीतकार–.ग़जलकार, गद्यकार, समालोचक, समीक्षक, भारतीय वाङमय के व्याख्याकार–टीकाकार, संपादक, संगठनकर्त्ता, संस्कृतिकर्मी, कुशल आयोजक, समर्थ संयोजक निष्णात वक्ता, दुर्लभ मित्र और संवेदनशील सामाजिक प्राणी हैं। इनके गीतों–.ग़जलों का व्यापक वितान विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों से गुजरते हुए विभिन्न प्रसारण–स्थलों–केन्द्रों से होकर धारावाहिकों और फिल्मों तक विस्तारित है। यह सुखद है और गौरव का विषय भी कि इनकी कविताएँ अन्य भाषाओं में भी अनूदित हुई हैं।

वशिष्ठ अनूप जी का साहित्यिक–सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भ इतना बड़ा और व्यापक है, इनकी कार्यशैली इतनी संतुलित और सुपरिणामपरक है, व्यवहार ऐसा कि जिसने इनके दर्शन किए, इनका अपना हो गया, कि सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक संस्थाएँ, साहित्य प्रेमीगण यत्र–तत्र–सर्वत्र इन्हें सम्मानित, समादृत कर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं। सम्मानों की एक लंबी श्रृंखला इनके व्यक्तित्व के आईने के रूप में दर्शनीय, संग्रहणीय और संरक्षणीय है। इन्हें दो दर्जन से अधिक राष्ट्रीय–अन्तरराष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हैं।

अनुभूत अतीत, भोगते वर्तमान, भविष्य का सपना सँजोये रंगों में भटकते हुए चेतना में प्रविष्ट होने का उपक्रम हैं वशिष्ठ अनूप की .ग़जलें। चेतना जीवन का यथार्थ है, जीवन का बिंब विधान है जिनसे जीवन के राग बनते हैं, जीवन के छंद रचे जाते हैं। जब समाज और देश पतन के गर्त्त में, विषमता की आग में धू–धू कर जल रहा हो, शासन–व्यवस्था तार–तार होती जा रही हो, संवेदन–शून्यता चरमोत्कर्ष पर हो,

जनसमूह दिग्भ्रमित हो चौराहे पर ठिठक गया हो, नैतिकता गिरवी पड़ गई हो, चाँदी के चंद टुकड़ों के लिए ईमान बेचे जा रहे हों, लोकतंत्र भ्रष्टतंत्र में तब्दील हो जाए, मनुष्य पशुवत् जीवन जीने को विवश हो, तब देश और समाज के दुःख–दर्द को विस्मृत कर कल्पना के स्वर्गलोक में विचरण नहीं किया जा सकता। रंगों, उमंगों, हास–परिहास–विलास में डूबा नहीं जा सकता। बहिर्जगत् का हाहाकार और क्रन्दन अन्तर्मन में भूचाल पैदा करेंगे ही और कल्पनाओं के नील गगन निश्चय ही यथार्थ की सृजनस्थली बन जाएँगे। इसी परिप्रेक्ष्य में प्रकृति और समाज के रूप के आकर्षण में डूबने–उतराने के बदले उसके अंतर में समाविष्ट होकर उसकी चिंता से संवाद करने के क्रम में वशिष्ठ अनूप जी की ग़ज़लें प्रकाश में आयी हैं।

वस्तुतः डॉ० वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों के लिए प्रकाश–किरणें स्वर्ग की आभा से नहीं वरन् जर्जर एवं जटिलताओं के ज्वालपुंज बन गए जीवन, विग्रह और विच्छेद से उत्पन्न सड़ांध से तार–तार होती सामाजिक संस्कृति, रागहीन राजनीति, कुटिल कूटनीति, दिशाहीन पथ–प्रदर्शन, आत्मदाह करते किसान और फूल–फल रहे जोंक, ढाबा में पलते बच्चों, महानगर की सँकरी गलियों में हैवानों के बीच दो जून की रोटी का जुगाड़ करती महिलाओं, बाँझ होती सृजन–कोख, मरती हुई संवेदना, चरित्र–विद्रूपता, समय की क्रूरता, पेट की आग, माटी की गंध, मरती धरती, नदी, जंगल और पहाड़ की पीड़ा, पशु–पक्षियों की भूख–प्यास–आवास और उनकी विलुप्त होती तमाम प्रजातियों, विलुप्त होते बिरहोर और सबर, साम्राज्यवादी लूट, बाजारवाद और भूमंडलीकरण के खतरों, विज्ञापनों के षडयंत्र, मूल्यों का क्षरण, पीड़ित–प्रताड़ित–पददलित–वंचित वर्ग की समस्याओं, समाधान की दिशा तलाशते अनबूझ अनगिन सवाल, विकास की उलटी प्रक्रिया आदि का जीवंत चित्रण अनूप जी की ग़ज़लों में देखा जा सकता है।

इसी समय सत्य को स्वर देने का संकल्प है– वशिष्ठ अनूपजी का सृजन–संसार। यहाँ पर इनके सम्बन्ध में मुझे प्रसिद्ध काव्यशास्त्री जॉन क्लेयर की पंक्तियाँ पूरी तरह प्रासंगिक जान पड़ती हैं–

"I found the poems in the fields and only write them down."

पुनश्च आंग्लभाषा के श्रेष्ठ रचनाकार विलियम वड्र्सवर्थ की निम्न पंक्तियाँ भी रचनाकार की राग–अनुराग रंजित रचनाओं के लिए उद्धृत करना चाहूँगा–

"If them ended desire thy light from heaven. They to the measure of that heaven-born light shine poet in thy place, and be content."

द्रष्टव्य हैं ग़ज़लकार की कुछ पंक्तियाँ–

''जहाँ भी डाल भी दो नज़रें, वहीं खुशरंग जीवन है,
रहो तुम जिस जगह वह ठाँव बरसाना है, मधुवन है,
अगर है नेह तो साँसों की वंशी बज रही हर पल;
तुम्हारा रूप राधा है, हमारा भाव मोहन है।''

अंतःकरण के विस्तृत आयतन की शुचिता–दिव्यता के स्वरुप–अनुरूप, अनुभूत सौन्दर्य का संप्रेषण सर्वथा सुखकारी, मनोहारी और आह्लादक होता है। नैसर्गिक सौन्दर्य की सृष्टि करती, रुचि को परिष्कृत करती और सौन्दर्य–बोध का परिचय देती प्रस्तुत हैं ग़ज़लकार की ये पंक्तियाँ–

तुम्हें देखा तो आँखों ने तुम्हें ही देखना चाहा,
बताना भी बहुत चाहा, बहुत कुछ पूछना चाहा,
हमारे दिल की उलझन को समझ पाना नहीं मुमकिन;
ज़बाँ ने कह दिया जाओ, नज़र ने रोकता चाहा।
....
ये मन का भेद सारा एक पल में खोल देती हैं,
तुम्हारे होठ चुप रहते, तो आँखें बोल देती हैं।

संवेदना के घनीभूतीकरण का ऐसा द्रवण जिसके प्रबल प्रवेग में पूरी तरह प्रवाहित हो पाठक वर्तमान की विडम्बनाओं, विद्रूपताओं, विच्छृंखलताओं को खुली आँखों से देख पाता है। समय–संदर्भ को उकेरती सत्तानशीनों के ढोल की पोल खोलती, मर्म को संस्पर्शित करती ये उत्कृष्ट ग़ज़ल–पंक्तियाँकृ

'सुख–दुख दोनों ही आते हैं, एक साथ त्योहार में,
मिल जाएँगे कितने हामिद, डरे हुए बाज़ार में।
गाँव–शहर में मौत टहलती, मातम है, सन्नाटा है,
फिर भी खुशियाँ चहक रही हैं, टीवी पर, अखबार में।
भूख भेजती शहर रोज़ ही लेकिन मिलता काम नहीं,
लौट रहे मजदूर उदासे, वापस घर–परिवार में।''

जीवन–कानन में रक्त संबंध को जीता, घूमता, भटकता व्यक्ति ठहर–ठिठक जाता है जब किसी खास मोड़ पर मिलती है उसे फूलों की मीठी महक और उस मादक–मोहक मिठास से मह–मह हो उठता है उसका मन–मानस, पा लेता है अपना–सा सुरभि–सौन्दर्य उस फूल में वह। वय, विचार, वृत्ति, परिवृत्ति, परिस्थिति में साम्यता, एकरूपता, अंकुरित होती है तब वह बीज एक अनमोल रतन के रूप में जहाँ जलन नहीं, गलन नहीं, फिसलन नहीं, होता है विश्वास, भरोसा, संकट–मोचन की आशा। नाम होता है मित्रता। तो देखिए मित्रता से संबंधित ग़ज़ल–

''दोस्ती की तो निभा भी लेना, / मेरी सुन लेना, सुना भी लेना।
नेक राहों पर चलाना मुझको, / और फिसलूँ तो बचा भी लेना
मेरा सब कुछ तो तुम्हारा ही है / मुझको चाहो तो चुरा भी लेना।
मेरी ग़ज़लें हैं तुमसे वाबस्ता / अपने होठों पे सजा भी लेना।''

मित्रता का एक दूसरा पहलू भी है जो आज अत्याधुनिकता की भेंट चढ़ती नजर आती है। स्वार्थपरता की संकीर्ण परिधि में दम तोड़ता, पवित्र रिश्ते को कलंकित करता मानवता को शर्मसार करता, मैत्री–संबंध पर ग़ज़लकार की जश्न पड़ताल। बदलते मौसम में मित्रता का सिमटता आयतन और अर्थ खोते शब्द का चित्रण दिल को छू जाता है–

''हर घड़ी, हर पल फिसल जाने के ख़तरे बढ़ रहे,
दोस्ती के बीच अब बाजार की आहट–सी है।
कर्ण–दुर्योधन, सुदामा–कृष्ण की यारी भी है,
किंतु इन रिश्तों में कपटाचार की आहट–सी है।''

रचनाकार को अपनी मातृभूमि से अपार प्रेम है। उसे राष्ट्रीय अस्मिता, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय गौरव–गरिमा को अक्षुण्ण बनाए रखने की चिंता है। यहाँ पर हमें वायरन की यह पंक्ति समीचीन प्रतीत होती है– "He who loves not his country can love nothing."

"Let our object be our country and nothing but our country."

वस्तुतः स्वदेश–प्रेम एक स्वर्गिक गुण है और राष्ट्रप्रेम ही नागरिकता की प्रथम कसौटी है। राष्ट्र की छवि को विभिन्न रूपों में देखकर वह व्यथित है और आक्रोशित भी। द्रष्टव्य है वतन पर शब्दांकनकृ

''जाति–धर्मों में इसको न बाँटे कोई
प्रेम की पाठशाला हमारा वतन।
इसके जैसा नहीं है कोई दूसरा
सारे जग से निराला हमारा वतन।''

बेटियों की महत्ता, आवश्यकता–अनिवार्यता सर्वयुगीन तो है किंतु विडंबना यह है कि आज भी वे अपनी देशीय परिधि में सभी समाज में सर्वस्वीकृत नहीं हो पा रही हैं। आज भी बहुत–से परिवारों में उन्हें बराबरी का दरजा प्राप्त नहीं है। सिद्धांत के सुनहले धरातल पर 'बेटी बचाओ' का नारा देने वाले भी बेटियों

को कमतर आँकते देखे जाते हैं। बीमार मानसिकता के दोहरे व्यक्तित्वों के लिए औषधि सदृश ये विधाता की सर्वोत्तम कृति को रूपायित करती, भाव–सौन्दर्य को व्याख्यायित करती पंक्तियाँकृ

''किसी पावन किरण से घर समूचा जगमगाता है,
दिलों में प्यार का, ममता का दीपक टिमटिमाता है,
बिना बतलाए ये सबकी ज़रूरत जान लेती हैं,
घरों में बेटियाँ होती हैं तो घर गुनगुनाता है।''

प्रत्येक शब्द की अपनी पृथक सत्ता होती है जिसका बहुगुणित व्यंजनार्थ बरबस बहुकोणीय संदभों से हमारा साक्षात्कार कराता है और नम संवेदना के तारों की झंकृति की प्रतीति से विशिष्ट भावभूमि सृजित होती नज़र आती है। उदाहरणस्वरूप देखें ये उत्कृष्ट कोटि की ग़ज़ल–पंक्तियाँ–

''मरा हर रोज, पर हर हाल में जीना नहीं छोड़ा,
तुम्हारे वास्ते मैंने मगर क्या–क्या नहीं छोड़ा।
थके ये पाँव, मंज़िल दूर थी, राहें थीं पथरीली,
वचन खुद को दिया था, इसलिए चलना नहीं छोड़ा।
शजर ने पत्थरों की चोट खाई हर बरस लेकिन,
कभी छाया नहीं छोड़ी, कभी फलना नहीं छोड़ा।''

संवेदना के सैलाब को शब्दों में ढाल तार–तार होती मनुष्यता, चीखते परिवेश, क्षत–विक्षत कारुणिक परिदृश्य, सत्ता प्रतिष्ठानों के दुर्भाव, दुर्नीति, दुराशय तथा दुर्भाषा को चिह्नित करती, विद्रूप व्यवस्था एवं वैचारिक स्खलन को चित्रित करती, व्यापक वितान पर उभरते सवालों को समावेशित कर शैली और शिल्प के असाधारणीकरण के साथ चारणी सत्ता को कटघरे में खड़ा करती अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति को इसग़ज़ल में देखा जा सकता है–

''था कहाँ तैयार झुकने को किसी दरबार में,
पर ग़रीबी ले गई, अपमान के संसार में।
फिर किसी बुधिया की काया बेक़फन रखी रही,
फिर किसी होरी की बेटी, बिक गई बाज़ार में।
छोड़कर चल पड़ा हल्कू मजूरी के लिए,
पेट तक भरता नहीं, खेती के कारोबार में।
चारणी सत्ता की, विज्ञापन की हैं रंगीनियाँ,
सच कहाँ तुमको मिलेगा, आज के अखबार में।''

मानव का उद्भव और विकास प्रकृति की सुखद गोद में ही हुआ है। आदिकाल से प्रकृति मानव के विकास की गाथा को बुनती–सहेजती रही है। किन्तु, लालची मानव ने सोना उगलती शस्य श्यामला धरती का बार–बार लगातार दोहन, उत्पीड़न किया है। अपनी खुशी के लिए उसकी पीड़ा को नकारकर उसे बीमार ही नहीं निष्प्राण–सा बना दिया है। मनुष्य के दुष्ट भाव, क्रूर स्वभाव, लालची प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप उपस्थित हुआ पर्यावरणीय संकट। आज प्रदूषण गंभीर समस्या और गूढ़ पहेली बन मानव जीवन को चुनौती दे रहा है। पर्यावरण–प्रदूषण की यह बढ़ती समस्या किसी राष्ट्र विशेष की समस्या न होकर वैश्विक समस्या बन गई है। तद्विषयक वशिष्ठ अनूप जी की अन्तर्दृष्टि से स्फुरित, नम संवेदना से संपृक्त जनभाषा में असाधारण चित्रात्मक अभिव्यक्ति विशिष्ट वैश्विक रचना के रूप में इन शेरों में देखी जा सकती हैकृ

''यह न समझो कि काटता जंगल,
सबकी साँसें चुरा रहा है वह।
मोड़ पर, समतलों पर, चढ़ावों पे है,
दृष्टि मेरी पहाड़ों के घावों पे है।
पानी जब अपनी औकात दिखाता है
बूँद–बूँद की खातिर नाच नचाता है।

अखिल ब्रह्माण्ड की सारी खबर तो जान–सुन लेते
नदी गर माँ है, तो माँ की रुलाई क्यों नहीं सुनते।

प्राणवान ग़ज़लकार वशिष्ठ अनूप जी के कहन का अंदाज बड़ा ही निराला है। आवेग, आवेश, उद्विग्नता और असंयतपूर्ण अभिव्यक्ति से सर्वथा अलग सर्वदा स्वाभाविकता से ओतप्रोत विषयगत संदर्भों का चित्रण उनकी विलक्षणता है। उन्हें जब जैसा क्षण छू गया,ग़ज़ल फूट पड़ी। समय–सच को बयाँ करती, ताज में जड़े नगीने की तरह एक–एक शब्द की पृथव्ह सत्ता स्थापित करती, अप्रतिम बिंबात्मक प्रस्तुति निम्न पंक्तियों में देखते ही बनती है–

''अचानक लोग घबराने लगे हैं,
लकड़बग्घे नजर आने लगे हैं।
अजब सी सनसनी है आसमाँ में
घरों पर गिद्ध मँड़राने लगे हैं।
अचंभित कर रहे हैं ये नज़ारे,
बचा को बाज दुलराने लगे हैं।
निकल आए हैं विषधर सब बिलों से,
फनों को खोल लहराने लगे हैं।
वनों में अब न आदमखोर मिलते,
सभाओं में वे गुर्राने लगे हैं।''

जनपदीय चेतना से चैतन्य इस रचनाकार को गाँव की सोंधी मिट्टी की महक, गाँव का भोलापन, मधुगंध बिखेरती मदमस्त बयार, दीपोत्सव में मिट्टी के दीये की कतार, अत्याधुनिकता की छाँव में तंग होते वस्त्रों की जगह गाँव की सलीकेदार औरत, और गाँव के घर की ममता भरी थाली, जिसकी समता अन्यत्र संभव ही नहीं, बहुत याद आती है। हृदय–वीणा के तारों की झंकृति की प्रतीति इन पंक्तियों में अनुभूत की जा सकती है–

''गदोरी पर रची मेंहदी की लाली याद आती है,
मुझे अक्सर वो लड़की भोली–भाली याद आती है।
किसी कुन्दन–जड़ी गुड़िया को जब भी देखता हूँ मैं,
किसी के कान की पीतल की बाली याद आती है।
बहुत–सी बिजलियों की झालरें आँखों में जब चुभतीं,
वो मिट्टी के दियों वाली दिवाली याद आती है।
नई तहज़ीब जब निर्वस्त्र होती जा रही दिन–दिन
सलीकेदार औरत गाँव वाली याद आती है।
शहर के होटलों में रोटियों के दाम जब बढ़ता
मुझे ममता–भरी वो घर की थाली याद आती है।''

जीवन जीने में जब अवरोध पैदा होता है तो विरोध–प्रतिरोध सर्वथा स्वाभाविक हो जाता है। आज जीवन जटिलताओं का ज्वाल–पुंज बन गया है। आज शासक प्रजा का सेवक नहीं, शोषण के साम्राज्य का स्वामी है। वह स्वयं को जनप्रतिनिधि मात्र न मानकर नियंता घोषित कर चुका है। अनूप जी की ग़ज़लें इन आघातों का पुरजोर प्रतिरोध करती नजर आती हैं। देखें कुछ पंक्तियाँकृ

''जगा है भाव सेवा का, बड़ी श्रद्धा उमड़ आई,
कटोरा ले के ये मनबढ़ भिखारी फिर चले आए।
जो अपने बाप–भाई के कभी अपने नहीं होते,
वे बनकर आज जनता के पुजारी फिर चले आए।''

प्रख्यात साहित्यकार–समालोचक डॉ० शिवकुमार मिश्र ने अनूप जी की ग़ज़लों के संबंध में लिखा है

''वशिष्ठ अनूप की ग़जलें उर्दू–हिन्दी शायरी में प्रतिरोध की इसी परंपरा को आगे बढ़ाने वाली, उसे शक्ति और ऊर्जा प्रदान करने वाली ग़जलें हैं। वशिष्ठ अनूप मानते हैं कि समय का वह दौर जिसे आज हम जी रहे हैं, शायद सबसे कठिन दौर है।'' प्रो० रामचंद्र तिवारी, प्रो० रामदरश मिश्र पंकज गौतम, नचिकेता, प्रो० जितेन्द्र श्रीवास्तव सहित अन्य साहित्य–साधकों ने भी इनकी ग़जलों की भूरी–भूरी प्रशंसा की है।

इस तरह हम देखते हैं कि आम आदमी की धड़कनों को सुनने, गुनने और बुनने में सिद्धहस्त ग़जलकार डॉ० वशिष्ठ अनूप का व्यापक, विस्तृत, सारगर्भित, तथ्यात्मक, यथार्थपरक, समय–संदर्भित लेखन हिन्दी साहित्य की धरोहर है। रचनाकार जीवन की बहुविध विसंगतियों से उत्पन्न संकटों के शराघात की पूरी तरह पड़ताल करते हुए उसे मूल कारण के रूप में मानता है।

व्यथित, तृषित जन–जीवन के लिए ग़जलकार एक जीवंत संसार बनाना चाहता है जहाँ प्रेम और समता के फूल खिल सकें, त्याग और करुणा की सरिता तथा आनंद की मंदाकिनी प्रवाहित हो सके। तभी तो शोषण और उत्पीड़न से विकल समाज की पीड़ा को अपनी पीड़ा बना वह उनसे उनकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है, जो उसकी ग़जलों को सार्थक, समीचीन, सर्वप्रिय और सर्वग्राह्य बनाता है। यहाँ पर स्वयं ग़जलकार के कथन को मैं उद्धृत करना चाहूँगाकृ ''अभी तक मेरी ग़जलां के आठ संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी लोकप्रियता और प्रसिद्धि से मेरी पहचान बनी है। मेरी ग़जलों ने मुझे ग़जलकार बनाया है। सारे भाव–विचार और लय–छंद–भाषा समाज ने दिए हैं। मैं उन्हें ही थोड़ा–सा हृदय का स्पर्श और एक व्यवस्था देकर प्रस्तुत कर देता हूँ। यही मेरीग़ज़ल हो जाती है।''

विलक्षण शिल्प और विशिष्ट शैली में समय–सत्य के सर्जक वशिष्ठ अनूप जी की ग़जलें जीवन के परिवर्तित–परिदृश्य–परिप्रेक्ष्य की एक प्रामाणिक प्रस्तुति हैं। जीवन के ताप–संताप–उत्ताप का वर्णन, पारिवैशिक यथार्थ का चित्रण, समय–संघर्ष का अंकन एवं भावों का आकुल उद्वेलन इनकी ग़जलों में प्रतिमान बनकर उभरा है। लोक उपादानों को ग़जलों में प्रयुक्त कर शब्दों को भाषा का नया परिधान पहना, भाषा के द्वारा भाव की यात्रा कर विगलित व्यवस्था को बदलने का ग़जलकार ने जो संकल्प किया है, वह स्तुत्य है। ''ग़जल जब जीवन से फूटती है तब वह जी को छूती है। अनूप जी की ग़जलें हृदय से निकलकर हृदय का संस्पर्श करती हैं और यही संस्पर्शन ग़जलकार का समृद्ध संस्करण है।'' सौम्यता एवं सहिष्णुता के साकार स्वरूप वशिष्ठ अनूप की ग़जलें सामाजिक सरोकार से सन्नद्ध हो जनमानस में नयी ऊर्जा का संचार करती हैं।

अनूप जी का प्रभावशाली वक्तव्य, सुन्दर प्रस्तुति, व्यापक लोकप्रियता, विशद् ज्ञान, पांडित्य की प्रखरता, अभिव्यक्ति की प्रभविष्णुता, वाणी की मधुरता, विचार की गहनता, विविध विषयगत अध्ययन की परिधि का व्यापक वितान, आमंत्रण–क्षेत्र के आयतन का विस्तार, प्रकृत आकृति की चारुता, संवेदना की सान्द्रता संभ्रांत सज्जन–विद्वत–समूह पर अपनी अमिट छाप अंकित कर जाता है।

अंत में, मैं यह कामना करता हूँ कि अनूप जी की विलक्षणता–विशिष्टता सदैव असंदिग्ध बनी रहे, आसेतु हिमालय से सुदूर दक्षिण तक इनका शब्द–सुगंध प्रसरित होता रहे, अपनी सारस्वत वाणी से ये जन–जन का मन–प्राण सुरभित–सिंचित करते रहें और नित नूतन कलेवर धारणकर साहित्य–पथ को अपने महनीय व्यक्तित्व की विकीर्ण रश्मियों से आलोकित करती रहें, इन्हीं सदिच्छाओं के साथ।

★

गाँव किसान की ग़ज़ल : छंद तेरी हँसी का

प्रो. चंद्रभान सिंह यादव

आज की हिंदी ग़ज़ल का दायरा प्रेम और सौन्दर्य तक सीमित नहीं है। उसमें निम्न वर्ग का श्रम, मध्यवर्ग का जीवन संघर्ष और उच्च वर्ग का भोग–विलास भी देखा जा सकता है। यहाँ गांव के किसान–मजदूर हैं तो शहरी नौकरीपेशा लोग भी। हिंदी ग़ज़ल हुस्न और इश्क से बहुत आगे निकल चुकी है। उसमें खेत खलिहान के साथ युद्ध भूमि का भी जिक्र है। यह विधा हिंदी के महाकवियों की ऋणी है। इसमें परंपरा के प्रति श्रद्धा का भाव है तो आधुनिकता का आह्वान भी –"तुलसी के, जायसी के, रसखान के वारिस हैं, / कविता में हम कबीर के ऐलान के वारिस हैं। / हम सीकरी के आगे माथा नहीं झुकाते,/ कुम्भन की फकीरी के, अभिमान के वारिस हैं। " (पृ.–13) इन पंक्तियों से वशिष्ठ अनूप के ग़ज़ल संग्रह 'छंद तेरी हँसी का' का आगाज होता है। आधुनिक काल का प्रगतिशील रचनाकार अपने को मध्यकाल के भक्त कवियों से जोड़ना चाहता है। जबकि, भक्त कवियों के स्वाभिमानी और सत्ता विरोधी स्वर को स्वीकार करना आसान नहीं है। वशिष्ठ अनूप न सिर्फ अपने को भगत सिंह का वारिस बताते हैं अपितु उनके सीने में चंद्रशेखर आज़ाद का दिल भी धड़कता है।

वशिष्ठ अनूप ग़ज़लों के माध्यम से धर्म और राजनीति के नग्न रूप को समाज के समाने लाते हैं। इनकी ग़ज़लें धर्म के ठेकेदारों और राजनीति के मठाधीशों का मुखौटा उतार देती हैं, बड़े सहज ढंग से–"हमारे दौर में अच्छे बुरे का फर्क है मुश्किल, / यहाँ हर बदचलन अब आचरण की बात करता है। / जो बाबा बैठता है सोने चाँदी के सिंहासन पर,/ वो इस संसार को माया–हिरन की बात करता है। "(पृ.–15) संग्रह की गज़लें रहनुमाओं के दोहरे चरित्र को बेनकाब करने में समर्थ हैं। यहाँ पौराणिक मिथकों का समकालीन संदर्भ में सटीक उपयोग किया गया है। समकालीन विसंगतियों से ग़ज़लकार न सिर्फ रूबरू है बल्कि पाठक को भी रूबरू कराता है। स्त्री–उत्पीड़न और कन्या हरण आदमी का आदिम चरित्र है। उत्तराधुनिक युग में भी स्त्री को सामंती युग का जुल्मोसितम सहना पड़ रहा है। युद्धक विमान उड़ाने के बाद भी वह समाज में सुरक्षित नहीं है, यहाँ तक कि वह माँ के गर्भ में भी असुरक्षित है। सुरक्षा का सवाल, घर परिवार में भी है क्योंकि, दुराचार में सगे– सम्बन्धियों का नाम प्रायः आता है। वशिष्ठ अनूप अकारण नहीं कहते हैं कि–"नहीं महफूज हैं अब बेटियां अपने घरों में भी,/ जनकपुर में कोई सीताहरण की बात करता है। / मुखौटे में छिपे हर रहनुमा चेहरे का ये सच है,/ वो छूकर बर्फ़ तेजाबी जलन की बात करता है। "(पृ.–15)

इसमें कोई दो राय नहीं कि सत्ता के शीर्ष पर बैठे रहनुमाओं का चरित्र दोहरा है। उनके चाल–चरित्र–चेहरे में विषमता है। राजनीतिक भ्रष्टाचार और आर्थिक घोटाले लोकतंत्र के माथे पर कलंक हैं। राजनीति में अपराधी और बाहुबलियों की संख्या बढ़ रही है, यह भारत ही नहीं विश्व की राजनीति का सच है। वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में विषयवस्तु की विविधता है। किन्तु, इसके केंद्र में किसान–मजदूर का श्रमशील जीवन है। मध्यवर्गीय समाज अपने संघर्षशीलचरित्र के साथ उपस्थित है। प्रेम और सौन्दर्य की बात करते–करते कवि सामाजिक यथार्थ की बात करने लगता है। वह कल्पना की दुनियां में देर तक विचरण नहीं करता है। उसे गांव, घर का नजारा अच्छा लगता है। प्रेमिका के आकर्षण से अधिक उसे माँ का दुलार पसंद आता है–"गर्म रोटी के ऊपर नमक तेल था,/ माँ ने हँस कर दुलारा तो अच्छा लगा। / अजनबी शहर में नाम लेकर मेरा,/ जब किसी ने पुकारा तो अच्छा लगा। "(पृ.–27) गरीब,मजदूर के लिए शहर आजीवन अजनबी रहता है।

इस सच से इंकार नहीं किया जा सकता कि गांव की अपेक्षा शहरों में अजनबीपन अधिक है। मध्यम वर्ग और शहरी जीवन का चित्रण दुष्यंत कुमार के ग़ज़लों की याद दिलाने में समर्थ है। गांव और गरीबी का चित्रण आखों देखा हाल की तरह है। इस प्रकार का चित्रण लेखक की सामाजिक प्रतिबद्धता का

प्रमाण है। अनेक ग़ज़लों में अभाव और आर्थिक तंगी का दृश्य उपस्थित है। 'जय जवान जय किसान' का नारा लाल बहादुर शास्त्री द्वारा बहुत पहले दिया गया था। देश के नौजवान और किसान को ग़ज़ल का विषय बनाना जनवादी सोच का परिचायक है–"हमारे देश के बच्चों की आखों में उदासी है,/ बुढ़ापा घेर लेता है, अचानक नौजवानी में। / हमारे अन्नदाता अन्न की खातिर तरसते हैं,/ गुजारा हो नहीं पाता अब खेती–किसानी में। " (पृ.–62)

भारतीय कृषि घाटे का सौदा है। खाद, बीज, जुताई,सिंचाई पर मंहगाई की मार है। इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है कि अन्नदाता ही अन्न के लिए तरस रहे हैं। अभाव और बेरोजगारी के कारण युवाओं के चेहरे पर वृद्धावस्था का लक्षण देखा जा सकता है। युवाओं के लिए बेरोजगारी में मंहगाई कोढ़ में खाज की तरह कष्टकारी है। परिवार के मुखिया पर मंहगाई का कैसा प्रभाव होता है उसे ग़ज़ल 'दरवाजे के पीपल जैसे सब सहते थे बाबू जी' में देखा जा सकता है। बाबू जी पढ़ाई, दवाई, त्यौहार और मेला जैसे हर खर्च उठाते हैं। आर्थिक कठिनाई के बाद भी बाहर से खुश दिखते हैं बाबू जी। उक्त ग़ज़ल में बाबूजी का सजीव रेखाचित्र खींचा गया है–"अम्मा तो कह भी देती थीं, कभी–कभी मन की बातें,/ कम खाते थे, गम खाते थे, चुप रहते थे बाबू जी। / पैरों में चप्पलें हमेशा, हर मौसम में धोती–कुर्ता,/ दुबले तन पर मजबूती से, सब सहते थे बाबू जी। "(पृ.–31) सबकी जरुरत को पूरा करने वाले बाबू जी अपनी जरुरत को पूरा करना तो दूर उसे व्यक्त भी नहीं कर पाते हैं। बच्चों के विकास में दादा–दादी की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इस भूमिका का बखूबी निर्वाह बाबू जी करते हैं। कवि को परिवार और गांव से विशेष लगाव है। गांव का लोकजीवन अभाव में भी आकर्षक होता है। खेत में घूमते जानवर, मिट्टी में खेलते बच्चे,गांव की बोली और वहां की स्वच्छ हवा शायर को अच्छी लगती है। मोटी रोटी, बथुए का साग और चटनी का स्वाद अवर्णनीय है। यहाँ का जीवन अभाव में भी आनन्द और खुशहाली से भरा है। सादे पोशाक में ग्रामीण युवतियां आकर्षक लगती हैं। ग्राम्य जीवन का यथार्थ दृश्य अदम गोंडवी की शायरी को टक्कर दे रहा है–"हुई हर चीज महँगी तब कहा होरी से धनिया ने,/पता करते कि कैसे अपना घर 'गोबर' चलाता है। /फँसी है जिंदगी की बैलगाड़ी विकट दलदल में,/बड़ी मुश्किल से घर–परिवार अब खेतिहर चलाता है। "(पृ.–122)

शायर वशिष्ठ अनूप को सामंती–संभ्रांत वर्ग के सौन्दर्य से अधिक आमजन की सादगी अच्छी लगती है। यह जनमानस के प्रति शायर की वैचारिक प्रतिबद्धता का प्रमाण है। समीक्ष्य संग्रह में अनेक ग़ज़ल आमजन की आवाज को स्वर प्रदान करने वाली हैं। ग्रामीण परिवेश के चित्रण में शायर सिद्धहस्त है–प्रेमचंद की तरह। किसान जीवन और मजदूर का श्रम अनूप जी की ग़ज़लों में अनुस्यूत है। शायर के हाथ में कलम के साथ फावड़ा भी आता है–'कलम के साथ ही हाथों में मेरे फावड़ा आया,/ सबब यह है कि मुझको अब भी गुलकारी नहीं आती। ' गुलकारी (चित्रकारी) का न आना श्रमजीवी होने का प्रमाण है। 'हर ओर खट रहे हैं,यूपी बिहार हैं हम' शीर्षक ग़ज़ल में श्रम करते मजदूरों के सच का आँखों देखे बयान है। उत्तर प्रदेश और बिहार के मजदूर देश में ही नहीं बल्कि विदेश में भी रोजी–रोटी के लिए भटकते हैं। इसके मूल में पूर्वांचल में रोजगार का अभाव है तो सघन जनसंख्या घनत्व भी कम उत्तरदायी नहीं है। शहरों में जिन अट्टालिकाओं का निर्माण मजदूर अपने खून, पसीने से करते हैं उसमें एक दिन भी ठहर नहीं पाते हैं। शायर अनूप अकारण नहीं लिखते हैं कि "हम सबके खून–पसीने से जगमगाती दुनिया,/ हम गाड़ियों के पहिये, कहते गँवार हैं हम। /यूँ भूख ने तोड़ा,घर–गाँव से शहर तक,/हर हाँ में हाँ मिलाते पिछले कहार हैं हम। "(पृ.–96)

समीक्ष्य ग़ज़ल संग्रह में विषयवस्तु और भाव का वैविध्य है। किसान,मजदूर हैं तो कहीं–कहीं कमसिन सुंदरियाँ भी। जिनकी नजाकत, कमसिन अदाएं और हुस्न का जादू पाठकों में नशा घोल देता है। इस प्रकार के वर्णन में शायर द्वारा अतिशयोक्ति से बचने का प्रयास दर्शनीय है–"कभी सीता–सी लगती हो कभी राधा–सी लगती हो/मुझे सौन्दर्य की तुम पूर्ण परिभाषा–सी लगाती हो। "(पृ.–103) इसमे कोई दो राय नहीं कि युवती का सौन्दर्य हर युग में कविता का विषय बनता रहा है। शायरी का तो जन्म ही हुस्न और इश्क के मेल से होता है। 'नन्हें–मुन्नों से ममता का आँगन मत छीनो' ग़ज़ल में बालश्रम पर सवाल खड़ा

किया गया है। बचपन श्रम की नहीं, खेल और पढ़ाई की उम्र होती है। रोना, हँसाना, जिद करना बच्चों के स्वभाव का अंग तभी बनेगा जब उन्हें श्रम से दूर रखा जाय। अनूप जी का आह्वान है–"सारा जीवन तो तपना है जेठ–दुपहरी में,/तितली वाली उम्र में उनसे सावन मत छीनो। /कठिन काम पर मत भेजो, दो कॉपी–कलम उन्हें, /इसी उम्र में उनके सर से दामन मत छीनो। "(पृ.–97)

संग्रह के केंद्र में किसान–मजदूर का श्रम और दर्द है। इनके साधनहीन जीवन का ऐसा चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। इसके समानांतर सत्ता के शीर्ष पर आसीन लोगों पर व्यंग्यात्मक प्रहार है। जल,जंगल और जमीन के लिए आज का आदिवासी समाज लड़ाई लड़ रहा है। प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा पर प्रशासन का ध्यान नहीं है। प्राकृतिक संसाधनों का बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ दोहन कर रही हैं। इन संसाधनों की सुरक्षा के लिए आगे आये आदिवासियों को नक्सलवादी कह कर मारा जा रहा है। आदिवासियों की राष्ट्रीय समस्या पर मीडिया मौन है। इन संसाधनों की सुरक्षा का प्रश्न अनूप जी उठाते हैं–"जंगलों,नदियों,पहाड़ों के निधन का प्रश्न है,ही/अपने घर में पिट रहे वनवासियों का प्रश्न है। "(पृ.–106) शायर को शहर से अधिक गांव से स्नेह है। लोक और लोकगीत में वशिष्ठ अनूप का मन रमता है। अकारण नहीं संग्रह में फाग और अन्य लोकगीत उमड़– घुमड़ कर आते हैं। अनेक स्थानों पर गाँव का दृश्य सजीव है–"मटर में फूल आये हैं निकल आयी हैं फलियाँ भी / सलोना रूप सरसों का बहुत मन को सुहाता है। / मैं अपने गांव की यादों में अक्सर डूब जाता हूँ / कहीं ढोलक की थापों पर कोई फगुवा जो गाता है। "(पृ.–120)

कहना न होगा कि ये गज़लें नये तेवर और कलेवर की हैं। जिन्हें ड्राइंग रूम में बैठ कर नहीं खेत–खलिहान में खड़ा हो कर रचा गया है,श्रमिक–किसानों के कंधे से कंधा मिलकर। अकारण नहीं इसमे दलित–शोषित, पीड़ित–प्रताड़ित, स्त्री–आदिवासी की पक्षधरता है। निःसंदेह समीक्ष्य संग्रह 'छंद तेरी हंसी का' व्यापक विमर्श की मांग करता है।

व्यापक जीवन-बोध के ग़जलकार : प्रो. वशिष्ठ अनूप

डॉ. कमलेश राय

मनुष्य प्रकृतितः चिन्तनशील, उद्यमी और प्रयोगधर्मी होता है। आत्मोत्कर्ष और आत्म परिष्कार की प्रक्रिया में समय की गति के साथ वह अपने विचार और चिन्तन का परिमार्जन करता है तथा युगबोध के दायरे में भाषा, साहित्य और कला की दुनिया रचता है। पुराने मानदण्ड और पुरानी मान्यताएँ टूटती हैं और नयी स्थापनाएँ सृजन की अग्रयात्रा का मानदण्ड बनती हैं। इस प्रकार समाज में परिवर्तन के साथ साहित्य में भी प्रयोग और परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। हिन्दी साहित्य की विकास–यात्रा को यदि देखा जाय तो सबसे ज्यादा आन्दोलन और प्रयोग कविता के क्षेत्र में ही लक्षित होते हैं। एक समय था जब छान्दसिक कविता अभिव्यक्ति की केंद्रीय विधा के रूप में सर्वमान्य तथा ग्राह्यता के स्तरपर लोक में पूरी तरह प्रतिष्ठित थी। धीरे–धीरे समय बदला। आधुनिक वैज्ञानिक विकास के साथ भाव–बोध के स्तर पर आगे परिवर्तन के क्रम में साहित्यकारों के एक वर्ग ने कविता के पुराने छन्द–विधान को अपनी अभिव्यक्ति क्षमता के विस्तार के लिए नाकाफी माना और छन्दों का बन्धन तोड़कर कविता का नया कलेवर गढ़ा। फलस्वरूप छन्दों के बन्धन से मुक्त होकर कविता अपने रास्ते चल निकली। उसकी लोक स्वीकृति पर क्या प्रभाव पड़ा? उसके कवितापन का क्या हुआ? तथा वह जनरुचि के कितने करीब और कितनी दूर हुई, यह अलग विमर्श का विषय है। लेकिन आज की कविता का सच यही है कि समकालीन समालोचना की दृष्टि में छन्दमुक्त कविता ही मुख्यधारा की कविता है।

यह तो निर्विवाद है कि कोई भी विकासशील विधा अपने जातीय संस्कारों से रसगंध ग्रहण कर आगे की यात्रा के लिए अपनी ज़मीन खुद तैयार करती है। अपने सृजन कर्म में वह आलोचकीय–स्थापनाओं की परवाह नहीं करती और अपनी सामर्थ्य के बल पर आगे बढ़ती है। छन्द कविताएँ इन्हीं अर्थों में विकासमान हैं कि आलोचकीय उपेक्षा का शिकार होकर भी पूरी ताज़गी और तन्मयता के साथ निरंतर सृजनपथ पर अग्रसर हैं। जहाँ तक हिन्दी मेंग़ज़ल का प्रश्न है, मुख्यतः यह उर्दू अदब की एक चर्चित विधा है, जो तेरहवीं सदी में 'हिन्दवी' अथवा 'हिन्दुस्तानी' जुबान में अमीर खुसरो द्वारा कही गयी और एक लम्बा सफर तय करती हुई १६७५ में जब दुष्यंत कुमार तक आयी तो इसे व्यापक सन्दर्भों की एक नयी ज़मीन मिली। यहाँ इसके पारंपरिक स्वरूप में बदलाव आया और हिन्दीग़ज़ल के रूप में इसकी विशिष्ट पहचान बनी। युगीन सृजन–संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में समय के साथ इसने स्वयं को अपडेट किया है तथा हिन्दी की एक सशक्त एवं प्रभावशाली काव्य–विधा के रूप में हिन्दी कविता की श्रीवृद्धि में योगदान कर रही है।

ग़जल अपने अन्दाज–ए–बयां के लिए विशेष रूप से जानी जाती है। हिन्दीग़ज़ल इस मायने में भी बहुत समृद्धशाली काव्य–विधा का रूप ले सकी है कि इसमें उर्दू और हिन्दी दोनों के संस्कार सम्मिलित रूप से समाविष्ट हैं। समय के सुलगते सवालों, विसंगतियों, विडम्बनाओं, संघर्ष और जद्दोजहद को पूरी ईमानदारी से अभिव्यक्ति देती हुई हिन्दीग़ज़ल आज की सर्वाधिक चर्चित और सर्वप्रिय काव्य–विधा है। अब यह पायलों की छम–छम में नहीं, पाँवों की बिवाइयों में अपना मुकाम तलाशती है। प्यार–मुहब्बत की रंगीन वादियों में नहीं, फुटपाथों पर ठोकरें खाती बदहाल ज़िन्दगी के कोने–कोने झाँकती है। कभी आँखों में आँसू तो कभी हाथ में पत्थर लिए निकलती है। कालीनी फर्श पर थिरकती नहीं, खुरदुरी जमीन पर ठोकरें खाती है। अब यह दरबारों की गुलजार गलियों की बाँदी नहीं, ज़माने भर का दर्द सीने में छुपाये किसानों, मजदूरों मजलूमों और बेबसों के दिलों की राजरानी है। सच तो यह है कि उर्दू शायरी की हसीन दुल्हन के रूप में जानी जाने वालीग़ज़ल हिन्दी में आकर नये कलेवर और नये तेवर के साथ अपने युग की सच्चाइयों को तथ्यतः अभिव्यक्त करती हुई हिन्दी कविता के क्षेत्र में एक आन्दोलनकारी काव्य विधा के रूप में अपनी पहचान बना चुकी है। दुष्यन्त के बाद की पीढ़ी के जिन ग़जलकारों ने हिन्दीग़ज़ल को रूप एवं कथ्य के स्तर पर समृद्ध करते हुए समय की हर आहट को पहचान कर अपने अभिव्यक्ति कौशल से इसे विशिष्ट अर्थवत्ता प्रदान किया है, उनमें अदम गोण्डवी, बल्ली सिंह 'चीमा' कमल किशोर 'श्रमिक' कमलेश भट्ट 'कमल' जहीर कुरैशी, राजेश रेड्डी आदि सुचर्चित ग़जलकारों के साथ प्रो० वशिष्ठ अनूप का नाम बहुत आदर के साथ लिया जा सकता है।

प्रो० वशिष्ठ अनूप एक सचेत वर्ग–दृष्टि–सम्पन्न ग़ज़लकार हैं। वे अपनी वैचारिक प्रतिबद्धत्व की घोषणा नहीं करते, अपनी रचनाओं में उसे जीते हैं। यही कारण है कि उनकी ग़ज़लों में जनता के सवाल बहुत साफ़गोई और सादगी के साथ स्वाभाविक रूप में उभरकर सामने आते हैं, जिसमें जनता होती है, उसका पक्ष होता है और रचनाकार की विचारदृष्टि होती है। न कोई उलझाव, न कोई बनाव। सीधे–सीधे जनसंवाद करती हुई सहज काव्याभिव्यक्ति। यह सहज भाव–बोध ही उनकी सबसे बड़ी ताकत है। सहजता एक साधना है। निरन्तर तपते रहने की प्रक्रिया ही सहज होने की साधना है। कबीर ने सहजता की साधना की थी– 'चढ़िये हाथी ज्ञान का सहज दूलीचा डार', प्रो० वशिष्ठ अनूप यह साधना करते हैं। समय के जलते सवालों की आँच पर तपते हैं और समय के सच को तीव्र अनुभूति और सहज संवेदना के साथ अभिव्यक्त करते हैं। वे समय की विडम्बनाओं से घबराते नहीं, उन्हें चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं। उन्हें पता है कि व्यवस्था आवाज़ पर अंकुश लगाने की हमेशा कोशिश करती है इसीलिए रचनाकार के रूप में वह बहुत साफ़गोई से अपना पक्ष प्रस्तुत करते हैं–

तुलसी के जायसी के रसखान के वारिस हैं
कविता में हम कबीर के ऐलान के वारिस हैं।
हम सीकरी के आगे माथा नहीं झुकाते
कुम्भन की फकीरी के, अभियान के वारिस हैं।

यह कबीराना अन्दाज ही रचनाकार की असली ताकत है। वह काशी छोड़ सकता है लेकिन सत्य की बुनियाद नहीं छोड़ सकता। वह अपने सांस्कृतिक–सामाजिक बोध के साथ अपनी शब्द–सत्ता में जिस प्रतिष्ठा के साथ रहता है, उसमें किसी भी तरह की दखलंदाजी उसे बेचैन कर देती है। वह सच का नुमाइन्दा है और सच के लिए कोई भी कुर्बानी देना उसे सहज ही स्वीकार्य है। प्रो० वशिष्ठ अनूप बहुत ही दृढ़ता के साथ सत्य के पक्ष में खड़े होते हैं तथा आत्मोत्सर्ग की पराकाष्ठा तक सच बयानी के कायल हैं–

सत्य कहता हूँ, कहूँगा सत्य ही हर हाल में
दो मुझे फाँसी या चुनवाओ मुझे दीवार में

प्रो० वशिष्ठ अनूप की ग़जलों का संसार बहुआयामी है। जीवन के हर क्षेत्र से वे अपनी ग़जलों की जमीन चुनते हैं। सूक्ष्म अनुभूति के स्तर पर तथ्यों की पड़ताल करते हैं तथा गहरे जीवन–बोध के साथ उन्हें यथातथ्य अभिव्यक्ति देने का प्रयास करते हैं। इस प्रक्रिया में वे पाठक की मनोवृत्तियों और अपने साहित्यिक सरोकारों का पूर्ण सामञ्जस्य बनाये रखते हुए जटिल से जटिल और उलझी हुई परिस्थितियों का भी बहुत ही सहजता से अंकन करते हैं। उनके यहाँ विषय की तलाश का प्रयास नहीं है। परिवेश और परिस्थितियों का गहरा बोध ही उन्हें विभिन्न विषयों से जोड़ता है। यदि वे एक ओरग़ज़ल की मासूमियत को उसकी नाज़ुक–मिज़ाजी के साथ प्रस्तुत करते हैं, तो दूसरी ओर समय की चुनौतियों के रूबरू प्रतिरोध की पूरी ताकत के साथ खड़े दिखते हैं। उनके यहाँ सौन्दर्य का स्निग्ध मादक रूप यदि देखने को मिलता है–

खुशी के प्यार के ये पल ठहर जाते तो अच्छा था
हमारे दिन अगर यूँ ही गुजर जाते तो अच्छा था।
तेरी ज़ुल्फों को जब देखा घटाओं ने तो ये सोचा
तुम्हारी ही तरह हम भी सँवर जाते तो अच्छा था।

तो, समय के सवालों की तल्खी भी अपनी स्वाभाविक भंगिमा के साथ अभिव्यक्ति पाती दृष्टिगत होती है–

हमारे रहबरों के आचरण में रहजनी क्यों है
यहाँ जम्हूरियत की जड़ में बैठी हिटलरी क्यों है?
इरादा है अगर सचमुच अँधेरों को मिटाने का
तुम्हारे घर में फिर इतनी डरी–सी रोशनी क्यों है?

प्रो० वशिष्ठ अनूप अपने समय से पूरी तरह बा–ख़बर ग़जलकार हैं। आधुनिक वैज्ञानिक विकास के साथ–साथ पूँजीवाद के प्रसार ने मनुष्य के संवेदनात्मक रिश्तों को बहुत क्षति पहुँचायी है। कभी समय था जब अभाव में जीवन जीते हुए भी लोगों के भीतर एक–दूसरे के प्रति अपनापन, लगाव तथा एक–दूसरे के दुःख–दर्द में स्वाभाविक रूप से सम्मिलित होने की प्रवृत्ति थी। तकलीफें बाँटना लोगों ने धर्म माना था। परस्पर सहयोग की

भावना मनुष्यता को उदात्त रूप प्रदान करती थी। आज के समय में जैसे–जैसे आदमी सुसभ्य होता गया है, लोगों के जीवन में अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्नता आती गयी है, मानवीय रिश्तों में दूरियाँ भी बढ़ती गयी हैं। भौतिकता की चकाचौंध में आत्मीय अनुराग की रोशनी धुँधली हुई है। बाजार के व्यापक प्रसार ने जीवन का सन्दर्भ पूरी तरह बदल दिया है। इन तमाम स्थितियों पर प्रो० अनूप की नज़र है। मानवीय मूल्यों तथा परस्पर सम्बन्धों के छीजने से वे आहत हैं और अपनी ग़जलों में बहुत शिद्दत के साथ इस पीड़ा को व्यक्त करते हैं–

फूल की ख़ुशबू हवा की ताज़गी ख़तरे में है
लोकगीतों की खनकती रोशनी ख़तरे में है।
सभ्यता इस दौर की है निर्वसन होने लगी
आदमीयत गुम रही है, आदमी ख़तरे में है।

प्रो० अनूप अपनी रचना–यात्रा में बार–बार अपनी परंपरा और संस्कारों की ओर लौटते दिखते हैं। उनका संवेदनशील मन पथरीले–समय के धक्के से बार–बार चोटिल होता है। उनका मन सुकून की तलाश में हमेशा अपनी जड़ों की ओर लौटने को अभिप्रेरित करता है। उनको लगता है कि उनका स्वाभाविक सुख–चैन बाहर की तेज़ रोशनी में नहीं बल्कि घर की मद्धिम और शीतल रोशनी तथा सम्बन्धों के उन्मीलन की आर्द्रता में है, जिसकी चाह उन्हें घर की याद दिलाती रहती है। उनका युगबोध यदि व्यवस्था की विडम्बनाओं के बरक्स प्रतिरोध का स्वर लेकर खड़ा होने के लिए अभिप्रेरित करता है तो उनका रचनाकुल कविमन अपनी परंपराओं, मान्यताओं, स्नेह–सम्बन्धों और अपनी मिट्टीकी ओर खींचकर ले जाता है, जहाँ वे असीम संतृप्ति पाते हैं–

खेलते मिट्टी में बच्चों की हँसी अच्छी लगी
गाँव की बोली हवा की ताज़गी अच्छी लगी।
मोटी रोटी साग बथुए का व चटनी की महक
और ऊपर से वो अम्मा की ख़ुशी अच्छी लगी।

यह सच है कि साहित्य की विभिन्न विधाएँ युग और जीवन का ही साक्षात्कार कराती हैं, लेकिन कविता अभिव्यक्ति की एक युगान्तकारी विधा है जो जीवन और युग की बारीकियों को कलात्मक और भावपूर्ण अभिव्यक्ति देती है। मनुष्य की सुप्त भावनाओं को झकझोरकर जगाती है तथा चेतना को संस्कारित करती है। मैथ्यू अर्नल्ड ने कविता, को 'जीवन की समीक्षा' कहा है और मार्क्स ने 'मनुष्यता की मातृभाषा'। यह सम्भव नहीं है कि हर कोई काव्य का सामान्य–सा संस्कार लेकर इन महान दार्शनिकों की कसौटी पर कवि–धर्म का पालन कर पाने में सक्षम हो। सच तो यह है कि जिस रचनाकार के भीतर युग–बोध के साथ–साथ जितना ही सघन रूप में संस्कृति–बोध एवं परंपरा–बोध होता है वह रचनाकार अपनी रचना के साथ उतने ही सच्चे अर्थों में न्याय कर पाता है। टी०एस० इलियेट ने अपने निबन्ध 'ट्रेडिशन एण्ड इन्डीवीजुवल टैलेण्ट' में कहा है कि– 'कवि के लिए व्यक्तिगत प्रज्ञा की अपेक्षा परंपरा–बोध का होना अधिक महत्वपूर्ण होता है।'

कहना न होगा कि प्रो० अनूप का युगबोध जितनासमृद्ध है उतना ही समृद्ध परंपराबोध और संस्कृतिबोध भी है।इसीलिए वे अपनी ग़जलों मेंग़ज़ल के रोमानीपन के साथ–साथ मिथकों, परंपराओं तथा लोकजीवन से आयत्त रूप–छवियों को उनकी स्वाभाविकता में चित्रांकित कर अभिव्यक्ति का एक नया वितान रचते हैं। यह प्रतिभा विरल होती है। एक साथ कई सन्दर्भों से जुड़करग़ज़ल कहना वशिष्ठ अनूप की निजी विशेषता है। उनकी ग़जलों का कोई निश्चित स्वर अथवा अँधी–बँधाई परिपाटी नहीं है। विषय के अनुरूप वे शब्द एवं स्वर का संधान करते हैं तथा पूर्ण प्रामाणिकता के साथग़ज़ल की विभिन्न बहरों में अपना मनोद्गार व्यक्त करते हैं।ग़ज़ल का स्वरूप निर्धारित करते हुए वे कहते हैं–

राजमहलों में पाला गया था इसे, आज है झोपड़ी की दुलारी ग़जल,
मनचलों ने पिन्हाये थे घुँघरू इसे, आज है माँ–बहन की–सी प्यारी ग़जल।
तीर चलते थे कल मद भरे नैन से, जाम होठों से आकर छलकते रहे,
ज़ुल्फ के ख़म से वावस्ता थी कल मगर ज़ुल्म के रूबरू है हमारी ग़जल।

सचेत रचनाकार वही होता है जिसे अपने समय की हर आहट सुनाई देती है। चाहे वह भ्रष्टाचार हो, शोषण हो, नाइन्साफी हो, व्यवस्था का मनमानापन हो अथवा पर्यावरण पर मंडराते खतरे। प्रो० अनूप इन तमाम स्थितियों पर नजर रखते हैं। शहरीकरण के बहाव में ग्राम संस्कृति के तिरोहित होते जाने, प्रकृति के साथ होते

व्यापक छेड़–छाड़ और प्रदूषित होते वातावरण को वे खुली आँखों से देखते हैं तथा पूरी संवेदना के साथ इसे केवल चित्रांकित ही नहीं करते, बल्कि इसके ख़तरों से आगाह भी करते हैं–

वनस्पतियाँ हमारी धरती माता की सहेली हैं
उन्हें मारा अगर तो माँ के हत्यारे कहाएंगे।
हवाओं में ज़हर घुलता रहा गर दिन ब दिन यूं ही
तो एक दिन साँस लेने के लिए हम छटपटाएंगे।
कट जाएँगे जब सारे शजर वैह्सा लगेगा
पत्थर के जंगलों का शहर वैह्सा लगेगा।
धरती पे हमने आग लगा दी है हर तरफ
आकाश से बरसा जो शरर, वैह्सा लगेगा?

जीवन की आपाधापी में एक–दूसरे से आगे निकल जाने की होड़ में कहाँ क्या टूट रहा है और कहाँ क्या छूट रहा है, इसकी परवाह शायद आज किसी को नहीं है। आधुनिक जीवन–बोध ने जीवन–रस को ही सोख लिया है। एक जीवन–विहीन जीवन जीने के लिए सभी अभिशप्त हैं और विडम्बना है कि इसे ही वास्तविक जीवन माना जा रहा है। अब माँ के आँचल में मचलते बचपन की बातें पुरानी हो चली हैं। बच्चों के अबोध बचपन, उनकी ठनगन और बाल सुलभ चेष्टाओं पर असमय ही छा रहे ग्रहण की छाया प्रो० अनूप बहुत शिद्दत से महसूस करते हैं–

बच्चों के जीवन से जाने बचपन कहाँ गया
वह रोना–धोना, जिदियाना वह ठनगन कहाँ गया?
बच्चे भी अब बच्चों जैसी बात नहीं करते
खेल खिलौनों दूध–भात का आँगन कहाँ गया?

वस्तुतः प्रो० वशिष्ठ अनूप ऐसे सचेत ग़जलकार हैं जिन्होंने अपनी ग़जलों में आज के सच वेह्र साथ ही समय की हर आहट और जीवन के विभिन्न संदर्भों को पूरी प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्ति दी है। उनकी सहज सम्प्रेष्य भाषा, कथन की भंगिमा के अनुरूप शब्द–चयन तथाग़ज़ल कहने का अनूठा अन्दाज उन्हें हिन्दीग़ज़ल के शीर्ष ग़जलकारों की शीर्ष पंक्ति में प्रतिष्ठित करता है। उनकी रचनायात्रा निरंतर प्रवहमान है। अब तक उनके ७ग़ज़ल संग्रह २ गीत संग्रह, आलोचना–संपादन सहित कुल ४६ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके विपुल रचना–संसार का मूल्यांकन एक अलग स्पेश की माँग करता है। उनकी सृजनधारा के परिप्रेक्ष्य में प्रो० अवधेश प्रधान का अभिकथन है– ''प्रो० अनूप की कविता ने गेय कल्पना के पंखों पर उड़ान भरते हुए अहर्निश प्रकृति, व्यक्ति और समाज के जीवन्त जीवन का साक्षात्कार किया है। ...उनकी ग़जलों में सत्ता की राजनीति के शातिर शिकारियों की पहचान है, तो उनके ख़िलाफ़, असन्तोष, विरोध आन्दोलन और क्रान्ति का आह्वान भी है। ... सामाजिक पाखण्डों के विखण्डन का कबीराना अन्दाज है तो कहीं पर्यावरण की गहरी चिन्ता है।''

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रो० वशिष्ठ अनूप समकालीन समय के एक ऐसे महत्वपूर्ण ग़जलकार हैं जिन्होंने जीवन और युग की हर आहट को पहचानकर अपनी सर्जनात्मक कुशलता, अभिव्यक्ति की सरलता, तीव्र संवेदना तथा व्यापक जीवनबोध के साथ हिन्दीग़ज़ल को एक विस्तृत आकाश दिया है, जमीन से जुड़े तो वे हैं ही। भाषा और भाव की सहजता के चलते उनकी ग़जलें पाठक के साथ सीधे संवाद करने में पूर्ण सक्षम हैं। निश्चित ही ये ग़जलें अपने मूल संस्कार में लोक स्वीकृति और लोक प्रतिष्ठा प्राप्त करने की सामर्थ्य रखती हैं। अंत में प्रो० अनूप की इन संदेशवाही पंक्तियों के साथ मैं उनके सार्थक सृजन के प्रति अपनी अनुरक्ति प्रकट करता हूँ–

हदों के पार होता जा रहा है
समय खूंख़ार होता जा रहा है
मशालें फिर जलाने का समय है
बहुत अँधियार होता जा रहा है।

सामाजिक परिवर्तन की लौ को जिलाए रखती वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें

डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट

"ग़ज़ल को अब हिन्दी वाले ही जिंदा रखेंगे, उर्दू वालों ने तो इसका गला घोंट दिया है।"

– फैज़ अहमद फैज़

ग़ज़ल हिंदी साहित्य की एक सशक्त विधा है। इसका प्रारंभ हजारों साल पहले ईरान से माना जाता है। प्रारंभ में इसका उपयोग राजाओं के यश का गुणगान करने के लिए किया जाता था। धीरे–धीरे इसमें स्त्रियों के प्रेम प्रसंगों को प्राथमिकता दी जाने लगी। कहा जाता है कि जब ये शासक भारत आए तो यहाँ भी ग़ज़ल की परंपरा का सिलसिला चल निकला। यहाँ के कवियों ने फारसी सीखकर ग़ज़ल से हाथ मिला लिया। धीरे धीरे यह प्रथा उर्दू में भी प्रचलित हो गई। उर्दू के पहले शायर वली माने जाते हैं। इस परंपरा को मीर तकी मीर ने आगे बढ़ाया। आगे जाकर दर्द ने ग़ज़ल के इस पौधे को फलदार वृक्ष के रूप में विकसित किया। इसी बीच मिर्ज़ा असदुल्लाह खाँ 'गालिब' का नाम उभरकर आता है। इनके पश्चात जब भी शायरी की बात आती है तो गालिब सबसे पहले उपस्थित होते हैं। दाग देहलवी ने ग़ज़ल की भाषा को और शसक्तता प्रदान की। इसके बाद यह निर्णय कर पाना मुश्किल होने लगा कि यह ग़ज़ल हिंदी की है या उर्दू की, जिसकी एक बानगी इस प्रकार है–

यह जो है हुक्म मेरे पास न आए कोई
इसीलिए रूठ रहे हैं की मनाए कोई।

इस परंपरा को आगे बढ़ाने में फ़िराक़ गोरखपुरी (रघुपति सहाय) का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। इन्होंने ग़ज़ल के कलेवर को बदलने का महत्वपूर्ण काम किया। आज ग़ज़लों ने सुरा–सुंदरी के बखान को लाँघकर एक नए आयाम को हासिल किया है। आज ग़ज़ल कोठों और हवेलियों से बाहर निकल कर सामाजिक और पारिवारिक स्तर तक पहुँच चुकी है। अब इनमें एक तरफ माँ, बहन और बेटियों का जिक्र मिलता है तो दूसरी तरफ राजनीति, बेतहाशा बढ़ती महँगाई, बेरोजगारी, बदहाली, किसान की समस्या, मजदूर और समाज के दबे कुचले वर्ग को भी अभिव्यक्ति दी जाने लगी है। इस प्रकार हिन्दी ग़ज़ल यथार्थवादी जमीन पर पूरी मजबूती के साथ खड़ी दिखाई देती है। इसे खड़ा करने का श्रेय मुख्यतः राहत इंदौरी, निदा फाज़मी, बसीम बरेलवी, राजेन्द्र नाथ रहबर, कुँवर बेचैन आदि को जाता है।

दुष्यंत कुमार ने आज के जलते यथार्थ को ग़ज़लों के माध्यम से व्यक्त करना शुरू किया। जिसने उर्दू ग़ज़ल का रूप ही परिवर्तित कर दिया। उन्होंने स्वतंत्रता के पश्चात देश के आम आदमी की यथार्थ स्थिति को अपने ग़ज़लों के माध्यम से बेनकाब किया है। उन्होंने स्वयं इस बात को स्वीकर किया है कि– "उर्दू और हिंदी अपने–अपने सिंहासन से उतर कर जब आम आदमी के बीच आती है तो उसमें फर्क कर पाना बड़ा मुश्किल होता है, मेरी नियत और कोशिश यही रही है कि इन दोनों भाषाओं को ज्यादा से ज्यादा करीब ला सकूँ, इसीलिए यह ग़ज़लें उस भाषा में लिखी गई है जिसे मैं बोलता हूँ। "

अर्थात अब जन भाषा में ग़ज़लों का प्रादुर्भाव होने लगा है। इसी के परिणामस्वरूप अब ग़ज़लों को पढ़ना व समझना भी आसान हो गया है। इस कड़ी को आगे बढ़ाते हुए प्रसिद्ध ग़ज़लकार डॉ. वशिष्ठ अनूप ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। इनकी ग़ज़लों में एक तरफ जहाँ प्रेम और नारी सौंदर्य का उल्लेख मिलता है, वहीं दूसरी तरफ राजनीति, बेतहाशा बढ़ती महँगाई, बेरोजगारी, बदहाली, किसान की समस्या, मजदूर और समाज के दबे कुचले वर्ग को भी उकेरा है, साथ ही जन सामान्य की पीड़ा और आक्रोश को भी रेखांकित किया है। वे जहाँ एक ओर गाँव की समस्याओं को रेखंकित करते हैं वहीं शहर की गलजतपूर्ण जिंदगी और ऐय्यासी से भरी दुनियाँ को भी अनदेखा नहीं कर पाए हैं, जिसे उनके ग़ज़लों में यत्र–तत्र देखा जा सकता है।

एक दौर वह था जब अपने देश के लिए देशभक्तों ने अपनी जान की परवाह किए बगैर देश को आजाद कराने में अपना तन मन धन न्योछावर कर दिया था। इस दौरान उन्हें मिलने वाली यातनाओं की भी उन्होंने परवाह नहीं की। आजादी के पश्चात देश के नेताओं व देशवासियों की सोच में ठीक इसके विपरीत स्थिति दिखाई देने लगी है। व्यक्ति दिन–प्रतिदिन स्वार्थी होता चला गया। वह सिर्फ अपने और अपने परिवार तक सीमित रह गया था। उसके जीवन में धन ने महत्वपूर्ण स्थान ले लिया था। फिर चाहे वह किसी भी प्रकार से अर्जित किया जाए।

वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों को पढ़ने पर यह महसूस होता है कि ग़ज़लकार समाज में आ रहे इस भयावह विकृत परिवर्तन को लेकर चिंतित दिखाई देता है। आज व्यक्ति सच बोलने में भी खतरा महसूस कर रहा है। चारों तरफ झूठ का साम्राज्य फैलता ही जा रहा है। वे नागफनी की तरह फैलते जा रही भ्रष्टाचार को लेकर व्यथित दिखाई देते है। इसीलिए कहते हैं–

नागफनियों का बढ़ने लगा दायरा,
नाग लिपटा हुआ रातरानी में है।

(घरों पर गिद्ध मडराने लगे हैं, पृष्ठ –४)

यहाँ कवि रातरानी रूपी भ्रष्टाचार में लिप्त उस वर्ग का उल्लेख कर रहा है जिनके हाथों में इस देश की बागडोर सौंपी गई है। साथ ही उस अधिकारी वर्ग का संकेत किया है जो अपने वेतन से अधिक तवज्जो ऊपर की कमाई को देते हैं। आज समाज में सत्य का स्थान झूठ लेता जा रहा है जिसके विरुद्ध आवाज उठाने की हिम्मत अब किसी भी मठाधीश में नहीं रह गई है। सभी अपना स्वार्थ साधने के लिए जी हजूरी में जुटे हैं। इसीलिए ग़ज़लकार की अपेक्षा अब सिर्फ इस देश के नवयुवकों से है। वह कहता है कि आज देश को यदि इस स्थिति से कोई उबार सकता है तो वह सिर्फ इस देश का नवयुवक है। वह चाहे तो समाज में परिवर्तन की लौ को फिर से प्रज्वलित कर सकता है। इस हेतु उसे सिर्फ संकल्पित होने की आवश्यकता है –

ठान लें तो ज़माने का रुख मोड़ दें,
इतनी ताकत भरी नौजवानी में है।

इस तरह अब गज़लकार को सिर्फ नौजवानों से ज़माने के रुख को मोड़ने की अपेक्षा रह गई है।

गज़लकार हमारी सामाजिक व्यवस्था से काफी त्रस्त दिखाई देता है। वे समाज की दोहरी मानसिकता और स्थिति के द्वद्व को रेखांकित करते हुए कहते हैं कि एक तरफ व्यक्ति अपने स्वाभिमान को बचाए रखने की जद्दोजहद में लगा हुआ है तो दूसरी तरफ उसकी गरीबी उससे उसका यह हक भी छीन लेने के लिए उद्धत दिखई देती है। हमारे यहाँ गरीब जिस स्थिति में आजादी से पहले जीवन यापन करने के लिए अभिशप्त था, आज भी कमोबेश उसकी स्थिति में है। आज भी बुधिया की तरह ही गरीबों को कफ़न तक नसीब नहीं हो पा रहा है। आज भी बेटियाँ अपनी इज्जत को दाँव पर लगाने के लिए मजबूर हैं। खेतों को उपयुक्त खाद आदि न मिल पाने के कारण पर्याप्त अनाज उत्पन्न नहीं हो पा रहा है जिसके चलते, घर के मुखिया को अपना व अपने परिवार का पेट पालने के लिए घर छोड़ने को मजबूर होना पड़ रहा है। जो लगातार बढ़ते जा रहे पलायन की ओर संकेत करता है–

छोड़कर घर चल पड़ा हल्कू मजूरी के लिए,
पेट तक भरता नहीं खेती के कारोबार में।

हमारे मजदूर और किसान खेती करना तो चाहते हैं लेकिन खेती से जो अन्न उपजता है उसे बेचकर वह सिर्फ कर्ज ही उतार पा रहा है जिसके चलते उसके पास कुछ नहीं बचता। यही ग़ज़लकार की चिंता है–

हमारे अन्नदाता अन्न की ख़ातिर तरसते हैं,
गुजारा हो नहीं पाता है अब खेती–किसानी में।

ग़ज़लकार की चिंता यह है कि यदि समय रहते किसानों व मजदूरों की चिंता नहीं की गई और उन्हें उनकी समस्याओं से मुक्त नहीं किया गया तो समाज के सभी वर्गों की भूखों मरने की नौबत आ जाएगी। अतः हमें अपने साथ–साथ इनकी भी चिंता करना आवश्यक है जब ये सुखी रह पाएँगे तभी हम सुख पा सकेंगे। अतः उन्हें कृषि के उपयोग में आने वाले सभी साधन समय रहते उपलब्ध कराना आवश्यक है। इसीलिए वे कहते हैं–

बिना अन्न के, है नहीं कुछ भी मुमकिन,
सृजन के तो हथियार हल, फावड़े हैं।

जिस तरह हमारे देश की रक्षा के लिए हमारे सैनिक सीमा पर रात–दिन पहरा देते हैं और देश की रक्षा करते हैं। इस दौरान उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जिनकी चिंता किए बगैर वे ठंडी, गर्मी, बरसात व बर्फीले मौसम के बावजूद डटे रहते हैं। ठीक इसी प्रकार हमारे किसान रात दिन खेतों में फसल की परवरिश में लगे होते हैं ताकि इसके तैयार होने पर इस जीवन संजीवनी को जन–जन तक पहुँचाया जा सके। इसीलिए श्री लालबहादुर शास्त्री ने 'जय जवान, जय किसान' का नारा भी दिया था। और श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने इसके साथ विज्ञान को भी जोड़ दिया था। उन्होंने कहा था –– 'जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान'। अर्थात हमें जवान और किसन विज्ञान से जोड़ना आवश्यक है। डॉ. वशिष्ट अनूप भी किसानों और सैनिकों के त्याग से भली–भाँति परिचित हैं। वे इन दोनों को अत्याधुनिक संसधनों को उपलब्ध करवाने की वकालत करते हैं ताकि सैनिक को बॉर्डर पर और किसान को खेतों से पूरा प्रतिसाद मिल सके इसीलिए वे कहते हैं–

जिंदगानी यही समर्पित है,
सारी पूजा–अजान खेतों में,
सरहदों पर है ध्यान सेना का,
इनकी बसती है जान खेतों में।

आज व्यक्ति रोजगार की तलाश में एक शहर से दूसरे शहर, एक गाँव से दूसरे गाँव और गाँव से शहर की ओर पलायन कर रहा है। पलायन का दुख अपने आप में बहुत ही कष्टदायक होता है। इसके नाम मात्र से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। लेकिन व्यक्ति की मजबूरी उसे हर परिस्थिति से जूझना सिखा देती है। यदि व्यक्ति को अपने घर पर ही रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हो जाए अथवा खेतों से मेहनत करके इतना अन्न पैदा हो सके, जिससे उसकी गुजर बसर हो जाए। तब कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होगा जो अपने घर परिवार आस–पड़ोस वह गाँव को छोड़कर किसी दूसरे शहर में जाकर बसे। यहाँ भी पलायन को लेकर ग़ज़लकार वशिष्ठ अनूप की चिंता जायज लगती है। वे पलायन की पीड़ा को बहुत करीब से देख रहे हैं। वे इस बात को भी भली–भाँति महसूस कर रहे हैं कि पलायन के बाद व्यक्ति दोहरी मार झेलता है। एक ओर उसे अपने परिवार व सगे संबंधियों से बिछड़ने का दुःख होता है तो दूसरी ओर मेहनत मजदूरी करने के उपरांत भी अपमान और जलालत की जिंदगी जीने के लिए अभिशप्त है। जिसे इस प्रकार देखा जा सकता है–

हर ओर खट रहे हैं, यूपी–बिहार हैं हम,
हर रोज पिट रहे हैं, सब के शिकार हैं हम।

ग़ज़लकार मजदूर व श्रमिक वर्ग को लेकर काफी चिंतित दिखाई देता है। वे देख रहे हैं कि सदियों से महलों के निर्माण में जुटा मजदूर हमेशा ही घर से वंचित रहा है। वह खेतों में जीतोड़ मेहनत करने के उपरांत भी पेट भर दाने के लिए तरसता ही रहता है। दुनिया का भाग्य बदलने की क्षमता रखने वाला यह मजदूर इसी आशा में जीता है कि एक न एक दिन उसका भी भाग्य बदलेगा उसके जीवन में परिवर्तन आएगा–

अपनी मेहनत से बदलते, भाग्य ये संसार का,
इन अभागों का मगर, अपना मुकद्दर है कहाँ ?

इसी चिंता को दुष्यंत कुमार के यहाँ भी देख जा सकता है। वे कहते हैं–

न हो कमीज़ तो पाँवों से पेट ढंक लेंगे
ये लोग कितने मुनासिब हैं, इस सफर के लिए।

स्वतंत्रता के पूर्व देशवासियों ने अपना तन–मन–धन इस आशा से समर्पित किया कि जब इस देश में अपनों का साम्राज्य स्थापित होगा तो देश का कोई भी नागरिक भूखा नहीं सोएगा। किन्तु आजादी के बाद स्थितियाँ ठीक इसके विपरीत होती चली गई। चारों तरफ झूठ, मक्कारी और भ्रष्टाचार का बोलबाला दिखाई देने लगा। लोग स्वार्थी होते दिखाई देने लगे। उनकी सोच समाज को लेकर संकुचित होती चली गई। इसीलिए ग़ज़लकार कह उठता है–

गंदी है, पर कहिए निर्मल गंगा है,
कहते रहिए देश भला है, चंगा है।

इस तरह की गुहार जन सामान्य नहीं लगवता है बल्कि देश का वह नेता लगाता है जिसे गंगा को निर्मल रखने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। जो प्रत्येक वर्ष गंगा की सफाई के नाम पर करोड़ों रुपयों का खर्च तो दिखाता है, मगर गंगा की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। इसीलिए वशिष्ठ अनूप कहते हैं–

ऐ गंगा माँ, बड़ी बेशर्म संतानें तुम्हारी हैं।
तुम्हारे नाम पर अरबों का भ्रष्टाचार देखा है।

इसी के चलते आज समाज में नेताओं की छवि एक लफंगे से अधिक नहीं रह गई है, भले ही वह बड़े–बड़े महफिलों की शोभा ही क्यों न बढ़ा रहा हो। आज उसने अपनी पहचान दंगाइयों में करा ली है। वह चुनाव के वक्त घर–घर जाकर धर्म और जाति के नाम पर वोटों की भीख माँगता है। लोगों को झूठ बोलकर बरगलाता रहता है और जीतने के उपरांत वह उन्हीं लोगों को भिखमँगा बना देता है जिनकी बदौलत उसने सत्ता पाई है, जिसे ग़ज़लकार ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है–

एक बार नेता जन को स्वामी कहते,
पाँच साल वह जन रहता भिखमँगा है।

आज सच बोलने वाले को कोई महत्व नहीं दिया जाता। उसकी गिनती मूर्खों में की जाती है। लेकिन जो झूठ के पुलँदे बाँध–बाँध कर लोगों को उल्लू बनाता है और देश को लूटने पर तुला हुआ है उसे महत्व दिया जाता है। लोग एक दूसरे पर आरोप–प्रत्यारोप करने में संकोच करते हैं। महँगाई और गरीबी दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसकी चिंता न तो देशवासियों को है और न ही उनके संरक्षकों को। इसीलिए ग़ज़लकार कहता है–

गरीबी, टैक्स, महँगाई दिनों–दिन बढ़ रही है और,
हमारे रहनुमा इन सबको खुशहाली बताते हैं।

आज हमारे देश का नवयुवक रोजगार की तलाश में दर–दर भटकता दिखाई देता है। वह अपनी पूरी शक्ति रोजगार प्राप्त करने में लगा देता है किंतु तब भी वह उसे पाने में असमर्थ है। इसका कारण रोजगार का अभाव अथवा एक अनार सौ बीमार की स्थिति का होना है। लेकिन हमारा नौजवान हतोत्साहित हो जाता है कभी–कभी तो वह निराशा के उस छोर तक पहुँच जाता है जहाँ से जीवन उसे निरर्थक लगने लगता है। और वह गलत कदम उठाने लगता है। इस जद्दोजहद में वह युवावस्था में ही बूढ़े व्यक्ति की तरह लगने लगता है जिसे ग़ज़लकार ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

हमारे देश के बच्चों की आँखों में उदासी है,
बुढ़ापा घेर लेता है, अचानक नौजवानी में।

ग़ज़लकार दूसरी तरफ उन बच्चों को जो जीवन में सफलता न मिलने के कारण उदास और निराश हो गए हैं ऐसे बच्चों में साहस और आत्मविश्वास भरते हुए वे कहते हैं–

लकीरें हाथ में होती हैं यह तो सच है मगर,
लकीरें हाथ से बनती हैं, यह बड़ा सच है।

प्रारंभ में मनुष्य ने ही जंगली जानवरों से अपने आप को बचाने के लिए समूह में रहना शुरू किया। धीरे धीरे स्थितियों में परिवर्तन आया जंगल और घर एक दूसरे से अलग हो गए। अब जंगली जानवर अपने आप को जंगलों में महफूज समझ रहे थे तो इंसान अपने को घरों में। लेकिन आज परिस्थितियों ने ऐसी करवट ली कि जो इंसान अपनी सुरक्षा के लिए समूह बनाकर रहता था अब वही समूह उसके लिए जानवरों से भी ज्यादा खतरनाक हो गया है। वह समूह में रहते हुए भी अपने आप को असुरक्षित महसूस कर रहा है। आज इंसान को जंगली जानवरों से कम और इंसानों से अधिक डर लगने लगा है। ग़ज़लकार मनुष्य की इसी स्थिति को रेखांकित करता है–

वनों में अब न आदमखोर दिखते,

सभाओं में वे गुर्राने लगे हैं।

विचारणीय यह है कि इन स्थितियों का निर्माण किसने किया और क्यों ? क्या मनुष्य अब इसी तरह भय से आक्रांत जीवन व्यतीत करने के लिए अभिशप्त हो गया है।

आज हम देख रहे हैं कि हमारा देश भी अन्य विकासशील देशों की तरह विकास की दौड़ में कदम से कदम मिलाकर चलने की बात कर रहा है। आश्चर्य तब होता है जब हम एक तरफ लाखों करोड़ों रुपया खर्च कर तरह–तरह की मिसाइलों और लड़ाकू विमानों की खरीद–फरोख्त में लगे हुए हैं और दूसरी तरफ एक वह वर्ग भी है जो लगातार रोटी–रोटी के लिए जूझ रहा है। गज़लकार की चिंता यही है कि आखिर हमारे देश में गलाजत भरी जिंदगी जी रहे वर्ग की स्थिति में सुधार कब आएगा ? कब उन्हें भी दो वक्त की रोटी नसीब हो पाएगी ? इसी संदर्भ में ग़ज़लकार व्यंग्य करता है–

हमारी मुट्ठियों में चाँद–तारे आ गए लेकिन,
अभी भी दाल–रोटी को तरसता आदमी क्यों है।

विकास के नए–नए दावों के बीच आज भी हमारे समाज का एक वर्ग रोटी–रोटी के लिए तरस रहा है।

भारतीय संस्कृति 'वसुधैव कुटुंबकम' की रही है लेकिन आज समाज के चंद लोग इस धारणा को बदलने में तुले हुए हैं। वे अपने संकुचित विचारधारा व स्वार्थी प्रवृत्ति के चलते, समाज के लोगों को एक दूसरे के साथ कभी धर्म और जाति के नाम पर तो कभी मंदिर मस्जिदों के नाम पर लड़ाने का प्रयास करते हैं। ऐसे लोग कबीर दास की उन पंक्तियों को भी अनदेखा कर देते हैं। वे या तो उनके उस मर्म को नहीं समझ पाते जहाँ उन्होंने हिंदू और मुसलमानों को मंदिर और मस्जिद को तोड़े जाने पर भी एकजुट रहने के लिए, संकल्पित होने का संकेत किया था। इसी प्रेम की भावना को कमोवेश उसी रूप में हम 21 वीं शताब्दी के ग़ज़लकार वशिष्ठ अनूप के ग़ज़लों में देख सकते हैं। वे कहते हैं–

ज़मीं की फिक्र करो आसमान से पहले,
प्रेम का पाठ हो गीता–कुरान से पहले।

यहाँ वशिष्ठ अनूप समाज के उन लोगों के इरादों को विफल कर देना चाहते हैं, जो धर्म के नाम पर इंसान को बाँटने का प्रयास कर रहे हैं। वे हिंदू और मुसलमानों को ऐसे अवसरवादी लोगों की मनसाहत से आगाह कर देना चाहते हैं। साथ ही प्रेम से रहने नसीहत भी दे डालते हैं।

आज हमारे समाज में एक विचित्र स्थिति देखने को मिल रही है। समाज का जो वर्ग सदा से पूजनीय रहा है आज उसी का मुखौटा ओढ़े कुछ छली कपटी लोग अपना उल्लू सीधा करने में जुटे हुए हैं। ऐसी स्थिति में सामान्य जन इनका शिकार बन जाता है। जो लोगों का मानसिक शारीरिक व आर्थिक शोषण करने से भी नहीं चूकते। ग़ज़लकार वशिष्ठ अनूप समाज में व्याप्त इन सारी विसंगतियों को देख रहे हैं। वे समाज के ऐसे लोगों का पर्दाफाश कर देना चाहते जिसे उन्होंने बेबाकी से कहने का प्रयास इस प्रकार किया हैं–

ये नगर के हैं महाकवि स्वाभिमानी व्यक्ति है,
स्वस्तिवाचन करेंगे, विरुदावली भी गाएँगे।
कर रहे हैं जो अभी बातें अहिंसा–धर्म की,
देख लेना रात में कुछ बस्तियाँ जलवायेंगे। (पृष्ठ –३३)

आज समाज के किसी भी वर्ग पर विश्वास कर पाना मुश्किल होता जा रहा है। अब व्यक्ति के चेहरे पर कुछ और होता है तो भीतर कुछ और चल रहा होता है। ऐसी स्थिति में किसी पर भी विश्वास कर पाना टेढ़ी खीर बनता जा रहा है।

आज पर्यावरण को लेकर पूरा विश्व चिंतित है। कुछ वर्षों से विश्व के सभी देशों के बीच पेड़–पौधों को लगाने की एक मुहिम सी चल पड़ी है। हमारे देश ने कई दशकों पहले ही इस ओर विश्व का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की थी। जिसका सशक्त उदाहरण चिपको आंदोलन है। इस आंदोलन में उत्तराखंड की स्त्रियों ने जंगल माफियाओं से जंगलों को बचाने के लिए एक जंग सी छेड़ दी थी। और ऐसे कुत्सित मानसिकता वाले लोगों को खुली चुनौती भी दी थी कि इन पेड़ों को छूने से पहले आपको हमारी लाशों से गुजरना होगा। आज

भी हमारे समाज में पर्यावरण के दुश्मनों की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। अब इसमें हमारे राजनीतिज्ञ भी कूद पड़े हैं। इसी स्थिति को देखकर वशिष्ठ अनूप ऐसे राजनेताओं की पोल खोल देना चाहते हैं। इसीलिए वे संकेत करते हैं–

आज है जंगल पे भाषण, देखना इनका कमाल,
कल ये जाकर फिर वनों को, शान से कटवायेंगे। (पृष्ठ 33)

वशिष्ट अनूप एक तरफ राजनेताओं के दोहरे व्यवहार को लेकर चिंतित हैं तो दूसरी तरफ उन्हें इस बात की आश्वस्ति है कि एक न एक दिन इन स्थितियों से भी समाज को मुक्ति मिलेगी इसीलिए वे कह उठते हैं–

तिमिर रोक पायेगा सूरज को कब तक,
नहीं अब सवेरा बहुत दूर होगा। (पृष्ठ–34)

आज हम एक अजीब सी दौर में जी रहे। जहाँ प्रेम, आदर, सम्मान आदि दूर–दूर तक नहीं दिखाई देते। व्यक्ति दिन–प्रतिदिन स्व केंद्रित होता चला जा रहा है। धनी और धनी हो रहा है तो निर्धन और भी निर्धन होता चला जा रहा है। जिसके चलते बेरोजगारी शिखर चूम गई है। ऐसी स्थिति में नवयुवक अपना पेट पालने के लिए दर–दर भटक रहे हैं। उनकी ताकत और क्षमताओं का दुरुपयोग करने के लिए अवसरवादी लोग गिद्ध दृष्टि लगाए हुए हैं। जो इन लोगों के ही नहीं बल्कि पूरे समाज के लिए घातक हैं। समाज की इसी विकृति को लेकर वशिष्ठ अनूप परेशान दिखाई देते हैं। उनका मानना है यदि समय रहते इन स्थितियों पर लगाम नहीं लगाई गई तो आने वाला भविष्य भयावह बन सकता है। जिसे इस प्रकार अभिव्यक्ति दी है–

खाली हाथों में बहकाकर, कोई भी दे दे हथियार,
इनसे जो चाहे करवा लो, है तरुणाई मुफ्त हुई।

युवा अवस्था में व्यक्ति के भीतर दोहरा जोश होता है। अतः उसकी शक्तियों का सदुपयोग होना आवश्यक है। इसीलिए हम कह सकते हैं कि जिस देश के पास जितने अधिक युवा होंगे वह देश उतना ही युवा कहलाएगा। आज आवश्यकता है कि इन युवाओं को इनकी क्षमता के अनुसार कार्य मुहैया करवाया जाय। ताकि देश व समाज को इन युवाओं का लाभ मिल सके।

अंततः कहा जा सकता है कि वशिष्ट अनूप ने ग़ज़ल विधा को प्रेम के कटघरे से बाहर निकालकर जन सामान्य तक उसे पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। उनके ग़ज़लों की विशेषता यह रही है कि उन्होंने समाज व प्रकृति के लगभग सभी (नदी, पर्वत, गरीब, अमीर, शहर, गाँव व पर्यावरण आदि) विषयों को ग़ज़लों के माध्यम से उकेरने का प्रायास किया है और उनको इसमें सफलता भी मिली है। समकालीन हिन्दी ग़ज़लों के मर्मज्ञ अदम गोंडवी भी इस बात को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि "जो ग़ज़ल माशूक के जलवों से वाकिफ हो गयी उसको अब बेवा के माथे की शिकन तक ले चलो। " यदि हम डॉ. वशिष्ठ अनूप के ग़ज़लों का समग्र अध्ययन करते हैं तो पाएँगे कि इनकी ग़ज़लें समाज की विविध समस्याओं को उकेरने में सक्षम है। अस्तु !

हिन्दी ग़ज़ल और वशिष्ठ अनूप की ग़जलें (बंजारे नयन)

डॉ. देवेन्द्र उपाध्याय

ग़जल उर्दू और हिन्दी कविता की एक अत्यन्त लोकप्रिय विधा है और डॉ० वशिष्ठ अनूप हिन्दी के स्थापित ग़जलकार हैं। इनका सद्यः प्रकाशितग़ज़ल संग्रह 'बन्जारे नयन' हमारे सामने हैं।

उर्दू में ग़जलों का पुष्कल साहित्य मिलता है– अमीर खुसरो से लेकर कुतुबशाह, दाग, गोमिन, मीर गालिब, बहादुर शाह जफर, इकबाल, फ़ैज अहमद फ़ैज, हाली, अकबर इलाहाबादी, मजाज, जिगर मुरादाबादी, जोश मलीहाबादी, जगन्नाथ, अली सरदार जाफरी वशीर बद्री और फिराक गोरखपुरी तक उर्दू शायरी खूबसूरत ग़जलों से भरी हुई है। हिन्दी मेंग़ज़ल का आरम्भ अमीर खुसरो से मानाा जाता है। भारतेन्दु युग मेंग़ज़ल का व्यवस्थित लेखन देखने को मिलता हैं प्रतापनारायण मिश्र, बद्री नारायण चौधरी, बाद में श्रीधर पाठक, बद्रीनाथ भट्ट, गोपाल शरण सिंह, रायदेवी प्रसाद पूर्ण, रामनरेश त्रिपाठी, लाला भगवानदीन, आदि ने ग़जलें लिखी। छायावाद युग में भी ग़जलों का लिखा जाना जारी रहा। प्रसाद और निराला ने ग़जलें लिखीं। जानकी वल्लभ शास्त्री, बलवीर सिंह रंग, हंसराज रहबर, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन शास्त्री, रामावतार त्यागी और नीरज ने अच्छी ग़जलें लिखीं।

बीसवीं सदी के सातवें दशक में नई कविता के समर्थ और प्रतिष्ठित कवि दुष्यन्तकुमार ने ग़जलों की ओर रूख किया यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था। उन्होंने दो विधाओं गीत औरग़ज़ल को पकड़ा क्योंकि वे महसूस कर रहे थे, कि कविता में आधुनिकता का छद्म कविता को पाठकों से दूर करता जा रहा है इतना फासला कविता ओर पाठक के बीच कभी नहीं था। कविता अपनी पहचान और कवि अपना कवि रूप खोता जा रहा था। ऐसे में दुष्यन्त कुमार के साथ बाल स्वरूप राही, सूर्यभानु गुप्त, शलभ श्रीराम सिंह, अवध नारायण मुद्गल, कुंवर बेचैन, विकल साकेती, शेर जंग गर्ग, माधव मधुकर, महेश्वर तिवारी, अदम गोंडवी, पुरुषोत्तम प्रतीक, कमल किशोर श्रमिक आदि नेग़ज़ल और गीत को निरर्थक ख्यालों और कोरी कल्पनाओं की रंगीन और नाज़ुक दुनिया से निकालकर समकालीन मक्कारी और भीषण उत्पीड़न पर टिकी हुई व्यवस्था को जिसमें तमाम लोग गरीबी, भुखमरी और बेरोजगारी से बेहाल हैं, उखाड़ फेंकने का आह्वान किया। दुष्यन्त कुमार ने लिखा कि–

अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
ये कॅवल के फूल मुरझाने लगे हैं।
हो गई है धीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।

इन ग़जलकारों नेग़ज़ल को एक नई दिशा, संवेदना, अनुभव और शिल्प देकर उसे जन–जन तक पहुँचाया कुंअर बेचैन और अदम गोंडवी ने इस परम्परा को ठीक से आगे बढ़ाया।

डॉ० वशिष्ठ अनूप इसी श्रृंखला की एक मजबूत कड़ी हैं। यहाँ आकरग़ज़ल अपनी परंपरागत मान्यताओं हुस्नो–इश्क और प्रेमी–प्रेमिका की गुफ्तगू तक सीमित न रहकर जिन्दी की धड़कनों से स्पन्दित और सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों से रूबरू होकर जीवन और जगत की जटिलताओं से जूझती दिखाई पड़ती है। झील सी गहराई वाले नयन, फिरोजी होठों की जगह सूनी, सपाट और उजड़ी आँखें तथा भूखे–मुरझाये चेहरे दिखाई देते हैं। यहाँ वंशी की मधुर धुन और भौरों की गुंजार की जगह प्रलयंकर शंकर की डमडम है। इनकी ग़जलें किसी शोख नाज़नीन की इंगूरी हथेली पर रचित मेंहदी की दन्तकथा के स्थान पर युवा आक्रोश की मुट्ठी में कसी हुई प्रलयंकारी मशाल हैं। हरम की नाज़नीनों के साथ की गई रविवार्ता की जगह भाषा के भोजपत्र पर लिखी गई विप्लव की ऋचा है। इन्होंने लिखा है–

कल गुफ्तगू थी हुस्न और इश्क की मगर
भूखी जमात की पुकार आज है ग़जल।

वह लाज जो लुटने को है मजबूर कहीं भी
चिथड़ों में लिपटती हुई वह लाज है ग़जल।
राजमहलों में पाला गया था इसे, आज है झोपड़ी की दुलारी ग़जल।
मनचलों ने पिन्हाये थे घुँघरू इसे, आज है माँ–बहन की–सी प्यारी ग़जल।
तीर चलते थे कल मदमरे नैन से, जाम होठों से आकर छलक जाता था।
ज़ुल्फ के ख़म से वाबस्ता की कल मगर, जुल्म के रूबरू है हमारी ग़जल।
एक मजलूम के हाथ में ज्यों धनुष, हक की खातिर तनी मुट्ठियों की तरह।
आक्रमण की है तैयारियाँ कर रही, दर्द के गाँव में ग़म की मारी ग़जल।

कहने की की आवश्यकता नहीं कि ऐसे हालात और ज़िन्दगी के चित्रण के लिएग़ज़ल के सारे पुराने उपमान और प्रतिमान बदल देने पड़ते हैं–

तूने लिक्खे मीन, खंजन, कमल से प्यारे नयन
हमने देखो हैं, हज़ारों दर्द के मारे नयन।
चार पैसे चार दाने चार रोटी के लिए
दरबदर दिन भर भटकते हैं ये बन्जारे नयन।

जो नयन रोटी की तलाश में दरबदर भटक रहे हैं उनकी पहचान कमल, खंजन और मीन से कैसे हो सकती है? अब तो सारी स्थितियाँ ही बदल गयी हैं। ज़िन्दगी एक ऐसे ख़तरनाक रास्ते पर चल पड़ी है जिसमें काँटे हैं, झाड़–झंखाड़ हैं, मरुस्थल हैं। ज़िन्दगी की रंगीनियां खूबसूरत इरादे, गुलाब और वसन्त की बातें सिर्फ ख़्वाब बन कर रह गयी हैं। इन सबके बावजूद वे निराश नहीं हैं। यही आशा विश्वास और दृढ़ता उनकी ग़जलों की शक्ति है। इसलिए वशिष्ठ जी लिखते हैं–

खूबसूरत से इरादों की बात करता है
वो पतझड़ों में गुलाबों की बात करता है।
इक ऐसे दौर में जब नींद बहुत मुश्किल है।
अजीब शख्स है ख़्वाबों की बात करता है।

हर प्रकार की विपरीत परिस्थितियों के बावजूद जबरदस्त आशा का भाव इसग़ज़ल में भी देखा जा सकता है–

अंकुरित होने से बढ़ने से मुस्कराने से,
किसने रोका कभी फूलों को महमहाने से।
आँधियों की रही कोशिश दिये बुझाने की,
पर कहाँ रोक सकीं लौ को टिमटिमाने से।

वर्तमान समाज की विषमता मूलक स्थितियाँ और व्यवस्था की जनविरोधी दमनकारी, साजिश भरी नीतियाँ एक ऐसे आक्रोश और उबाल को जन्म देती हैं कि कवि यह कहने को विवश हो जाता है–

उन्हें भ्रम है दुपट्टे से मशालों को बुझायेंगे
हमारी ज़िद है चिन्गारी को हम शोला बनायेंगे।
जिन्होंने स्वर्ण नगरी है रची खुद को गला करके
वही सीता की खातिर एक दिन लंका जलायेंगे।

वशिष्ठ अनूप प्रगतिशील सोच के वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न रचनाकार हैं। एक ऐसे दौर के रचनाकार जब भूखा भगवान और हर चीज में भोजन और चंदामामा में रोटी के दर्शन करता है। यहां आकर सारे पौराणिक मिथक और कल्पनाएँ झूठी पड़ जाती हैं।

कछुए की पीठ पर न शेष–फन पे टिकी है
धरती श्रमिक के हाथ पर गर्दन पे टिकी है।
ये कोठियाँ जो ब्याह की दुल्हन–सी सजी हैं,
इनकी चमक गरीब के आँगन पे टिकी है।

इस तरह के विचार आज कीग़ज़ल का स्वरूप रेखांकित करते हैं जिसमें सामाजिक, आर्थिक विषमताएँ, नौकरीपेशा कर्मचारी, अध्यापक और श्रमजीवी किसान–मजदूर वर्ग के जीवन की समस्याएँ और विसंगतियां उजागर होती हैं–

जिन्दगी से जूझता ईमान का दामन मिला
जख्म खाया तन मिला और तिलमिलाया मन मिला।
होटलों की प्लेट में तकदीर अपनी खोजता
बेवजह पिटता हुआ मनहूस–सा बचपन मिला।
श्वेत आदमखोर भालू भेड़िये रहते जहां
राजधानी में चमकते पत्थरों का वन मिला।...
यह रात अपनी फौज जुटाने पे लगी है
जो दीप जल रहे हैं बुझाने पे लगी है।
मेहमान है और भूख से बच्चे विलख रहे।
माँ उनको गुदगुदाकर हँसाने पे लगी है।

देश आजाद हुआ लेकिन आ़जादी का सुख केवल दस प्रतिशत लोगों को ही मिला। बाकी नब्बे प्रतिशत तो गुलाबी के दौर जैसी बदतर ़जिन्दगी ही जी रहे हैं। दोगली और दोमुही अर्थव्यवस्था वाली सरकारी नीतियाँ, सुविधाएँ और नियम कानून कुछ मुट्ठीभर लोगों के लिए ही हैं–

तरक्की पर है अपना मुल्क ऐसा कर रही दिल्ली
यहाँ कंगाल–सा आँसू बहाता गाँव अब भी है।

इस व्यवस्था के खिलाफ कवि स्पष्ट स्वर में कहता है–

हमको निगल न पायेंगी अब उनकी नीतियाँ
हम आदमी हैं, उनके निवाले तो नहीं हैं।

फिर भी आज व्यवस्था जिनके हाथ में है, अगर सच कहा जाय तो वे लुच्चे, लफंगे, चोर, बेईमान, गुंडे, आवारे, कातिल, डवैहृत और अराजकतत्व हैं। फिर उनके हाथ में जनता का योग–क्षेम और उसकी इज्जत–मर्यादा वैहृसे सुरक्षित रह सकती है। इन परिस्थितियों को देखकर कवि की मुट्ठियाँ बँध जाती है–

दर्द जब आक्रोश बन जाये तो समझो ठीक है
यह हवा कुछ और गर्माये तो समझो ठीक है।
धन कुबेरों की खुशामद गिड़गिड़ाहट छोड़कर
हाथ मुट्ठी बनकर लहराये तो समझो ठीक है।

आज की व्यवस्था असमानता की खाई को गहरी और चौड़ी कर रही है। गरीबों को गरीब और अमीरों को अमीर बना रही है। सत्ता को सुरक्षित रखने के लिए उचित–अनुचित कुछ भी कर रही है। दमन, शोषण, कुचक्र सब उसकी ऩजर में जायज है। आम जनता को जाति, धर्म, सम्प्रदाय के खेमों में बाँटकर लड़ा रही है। यह व्यवस्था जन विरोधी प्रगतिविरोधी और मानवता विरोधी है जिसके खिलाफ जनमानस में क्रान्ति की आग सुलग रही है। ये सारी स्थितियाँ आज के रचनाकार के ़जेहन में है वशिष्ठ जी लिखते हैं–

समाजवाद लोकतंत्र एकता व अमन
हमें फँसाने को उनके ये कुछ बहाने हैं।
विधान सभा ये संसद ये मंत्रियों के महल
कातिलों, चोरों, डकैतों के अब ठिकाने हैं।
बचायें कैसे जान–माल–आबरू यारो
उन्हीं के चोर–सिपाही उन्हीं के थाने हैं।...
धर्म के नाम पर मूर्खों को लड़ाते रहिए
अपनी कुर्सी के लिए वोट उगाते रहिए।
रोटी–ऱोजी की कोई बात न करने पाये
आप म़जहब का ़जहर ऱोज पिलाते रहिए।

प्रगतिवादी दौर में आदमी की प्रतिष्ठा की बात नारे के तौर पर की जाती थी, लेकिन आज की व्यवस्था ने आदमी को कीड़ा–मकोड़ा बना दिया है उसकी ज़िन्दगी का कोई मूल्य नहीं है। आज जिस्म सस्ता है, जान सस्ती है। कहीं किसी की सुरक्षा नहीं है। रातों–रात करोड़पति बनने का ख़्वाब पाले लोग दरिन्दों की तरह टहल रहे हैं। सच्चाई तो यह है कि ऐसे लोगों की पहुँच सत्ता तक है और प्रकारान्तर से यही अपराधी तत्व शासन कर रहे हैं–

आँखें टिकी हैं जब भी दहकते सवाल पर
थप्पड़ लगे हैं तेज़, विचारों के गाल पर।
इक प्रश्न बार–बार कौंधता है ज़ेहन में
कब तक जियेंगे क़ातियों की देख–भाल पर।
हाथों में हड्डियाँ हैं लहू मुँह से लगा है
ये कौन से पक्षी हैं जो बैठे हैं डाल पर।

इसी क्रम में वे कहते हैं–

कुचली हुई जमात उठायेगी सर ज़रूर
कब तक टिकेगी शान्ति बन्दूकों की नाल पर।
खौला है ख़ून, खौलने दे और, मगर देख
पानी न कहीं से पड़े इसके उबाल पर।

डॉ० अनूप ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से जीवन–जगत की कड़वी और तल्ख सच्चाइयों को सामने लाने का प्रयास किया है और यहीं उनकी पक्षधरता, रचनात्मक उद्देश्य और प्राथमिकताएँ भी स्पष्ट हो जाती है। मूलभूत प्रश्नों को उठाने की कोशिश में कुछ दूसरे विषयों को वे जानबूझकर छोड़ देते हैं–

अभी तो व्यस्त हूँ लिखने में रोटियों की कथा
कभी फुरसत में लिखूँगा गुलाब की बातें।
क्या बताऊँ कि मेरे गीत, मेरी ग़ज़लों में।
तल्ख सच्चाइयां हैं, कुछ है ख्वाब की बातें।
उनकी कोशिश है कि फूलों से छीन ले खुशबू
मेरी कोशिश है महक हर गली में बँट जाए।

आज़ादी और विकास के इतने दिनों बाद नारी की स्थिति में कुछ क्षेत्रों में सुधार अवश्य हुए हैं, किनतु उसके साथ ही उपभोक्तावादी समाज ने उसके शोषण के नये–नये तरीके भी ईजाद किये हैं। देश के बहुत सारे क्षेत्रों में नारी की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। इन स्थितियों को वशिष्ठ अनूप ने बहुत विश्वसनीय ढंग से देखा और दिखाया है–

कहीं तलाक कहीं अग्नि परीक्षाएँ हैं
आज भी इन्द्र है, गौतम है, अहल्याएँ हैं।
प्यार की राह में दुष्यन्त जिन्हें छोड़ गये,
भटकती फिर रही वन–वन शकुन्तलाएँ हैं।
कल थी मैं द्रौपदी पर आज शाहबानो हूँ।
हमारे साथ रोज छल है, वंचनाएँ हैं।
एक तरफ दहकता तन्दूर है स्वागत में खड़ा
एक तरफ विश्व सुन्दरी की घोषणाएँ हैं।

हर विषय और जिन्दगी की हर स्थिति को ग़ज़ल में पिरोने में वशिष्ठ अनूप को महारत हासिल है। उनका अभिव्यंजना–कौशल और भाषा पर अधिकार बेमिसाल है। अपनी रचनाधर्मिता के प्रति वे अत्यंत सजग और सतर्क हैं, इसलिए एक श्रेष्ठ ग़ज़लकार के रूप में उनमें अकूत सम्भावनाएँ हैं।

★

वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें : जनवादी चेतना का मुकम्मल बयान

डॉ. दिनेश पाठक

हिंदी ग़ज़ल की एक लंबी परंपरा रही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और निराला से होती हुई यह परंपरा दुष्यंत कुमार और अदम गोंडवी तक पहुंचती है। इस लंबी परंपरा को और समृद्ध बनाने का कार्य अनूप वशिष्ठ की ग़ज़लें करती हैं। हिंदी ग़ज़लों के साथ एक अच्छी बात ये हुई कि इश्क व माशूक की तंग गलियों से निकलकर वे जनवादी चेतना के राजमार्ग पर आ गईं और जनता के सुख–दुख, आशाओं–आकांक्षाओं, अभाव अभियोगों को खुले स्वर से व्यक्त करने लगीं। हिंदी ग़ज़लों को इस दिशा में मोड़ने का कार्य बेशक दुष्यंत कुमार ने किया किन्तु इस परंपरा को आगे विकसित करने व समृद्ध बनाने में रामदरश मिश्र, हनुमंत नायडू, चंद्रसेन विराट, शलभ श्रीराम सिंह, सूर्यभानु गुप्त, रामकुमार 'कृषक', डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, अदम गोंडवी, हस्तीमल हस्ती, ज्ञानप्रकाश विवेक, जहीर कुरेशी, डॉ. उर्मिलेश इत्यादि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें इसी परंपरा से जुड़ती हैं। वे स्वयं ग़ज़ल की इस विशिष्टता को रेखांकित करते हुए कहते हैं–

कौन कहता है कि आकाश फल है ग़ज़ल
वक्त के रूबरू आजकल है ग़ज़ल

जनवादी चेतना से संपृक्क्तत हिंदी ग़ज़लें कभी भी आम जनता के लिए आकाशफल नहीं रहीं वे हमेशा जनता के सुख–दुःख से कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी रही हैं और जनवादी चेतना का स्वर मुखर करती आ रही हैं। वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें इसी परंपरा को आगे बढ़ाती हैं। अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक चेतना को पूरी तरह से समझते हुए वे उसमें व्याप्त खामियों व कमियों को टटोलती हैं और पूरी सच्चाई व प्रतिबद्धता के साथ उसे हमारे सामने रखती हैं। 'बंजारे नयन', 'रोशनी खतरे में हैं', 'रोशनी की कोंपले', 'अच्छा लगता है', 'मशालें फिर जलाने का समय है', 'तेरी आँखें बहुत बोलती हैं', 'बारूद के बिस्तर पर', 'घरों पर गिद्ध मडराने लगे हैं' तथा 'इसलिए' जैसे कई महत्वपूर्ण ग़ज़ल व गीत संग्रह पिछले दो दशकों में अनूप जी के आ चुके हैं। इन अलग–अलग संग्रहों में संकलित ग़ज़लों व गीतों के मूल स्वर एक ही हैं। यह मूल स्वर जनता के जीवन के सुख–दुःख के राग को गाता है और शोषण व तानाशाही का विरोध करता है। श्रम के महत्व को पहचानते हुए उसकी उपेक्षा पर रोष व्यक्त करता है। इस संदर्भ में अनूप जी लिखते हैं–

कछुए की पीठ पर न शेषफन पे टिकी है
धरती श्रमिक के हाथ पर गर्दन पे टिकी है
महलों के ऐशबाग में महके हैं जो भी फूल
उनकी महक अवाम के जीवन पे टिकी है
ये कोठियाँ जो ब्याह की दुल्हन सी सजी हैं
इनकी चमक गरीब के आँगन पे टिकी है

मजदूरों के श्रम की सतत उपेक्षा हिन्दुस्तानी समाज में हुई है। महलों के ऐशबाग को फूलों से सजाने व महकाने वाले हाथ चंद सिक्कों व उपेक्षा के अलावा कुछ नहीं पाते। दूसरों की जिंदगी को चमकदार बनानेवाले हाथ खुद गरीबी और लाचारी के अंधेरे में डूबे रहते हैं। निरंतर श्रम और संघर्ष करते हुए कई बार उनके पैरों तले की जमीन और सिर छिपाने के लिए बनाई गई झोपड़ी तक छीन ली जाती है और व्यवस्था चुपचाप इस तमाशे को देखते रहती है। गुरबत की मार झेल रहे इस तबके के हालात का वर्णन करते हुए अनूप जी लिखते हैं–

ये न पूछो कि उम्र किस तरह गुजारी है
आग पे पाँव है गर्दन पे लगी आरी है
कल थीं इस ठौर मजदूरों की कई झोपड़ियाँ
आज जिस जगह खड़ी सेठ की अटारी है

उपर्युक्त पंक्तियों का सच हमारे समाज का सच है। बढ़ती हुई गरीबी और महंगाई के कारण तमाम गरीबों की झोपड़ियों को संपन्न तबके ने कौड़ियों के दाम खरीदकर अपनी कोठियों को वहाँ खड़ा कर लिया है। कई बार खरीदने की भी जरूरत नहीं पड़ती, प्रशासनिक हथकंडों या गुंडों का सहारा लेकर भी ये काम आसानी से करा लिया जाता है। इतना ही नहीं इस तबके की गरीबी और लाचारी का फायदा उठाकर इनकी इज्जत तक को रौंदा जाता है। कुछ सिक्के फेंककर इनकी मजबूरी का फायदा वर्चस्वशाली तबके के द्वारा उठाया जाता है। अनूप जी की दृष्टि इस घिनौने सच की तरफ भी जाती है और वे इस सत्य को निम्नलिखित पंक्तियों में उद्घाटित करते हुए लिखते हैं–

डरते–डरते दिन बीता फिर सहमी–सहमी शाम हुई
एक झोपड़ी की इज्जत कुछ सिक्कों पर नीलाम हुई

एक तरफ देश में गरीबी और बेरोजगारी बढ़ रही है तो दूसरी तरफ हमारी सरकारें फाइलों में देश की गरीबी को दूर करने वाली योजनाएं बनाकर सिर्फ कागजी घोड़े दौड़ा रही हैं। सारे उद्योग–धंधे फाइल में ही फलफूल रहे हैं और सिर्फ सरकारी आंकड़ों में देश की गरीबी दूर हो रही है। देश का एक बड़ा शिक्षित युवावर्ग लगातार बेरोजगारी व लाचारी का दंश झेल रहा है और सरकारें फाइलों में ही देश की रंगत गुलाबी कर रही हैं। सरकारी व्यवस्था के इस छद्म को उघाड़ते हुए अनूप जी लिखते हैं–

यहाँ तो फाइलों में ही सभी उद्योग चलते हैं
कोई भी योजना इस मुल्क में वैह्रसे सफल होगी

सरकारी छद्म की सबसे ज्यादा चोट गाँवों पर पड़ी है। एक तरफ गाँव के युवा रोजगार की तलाश में शहरों का रूख करते हैं और शहर की भीड़ का अंग बनकर अमानवीय जीवन जीने के लिए विवश हो रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ खेती की उपज का ठीक से मूल्य न मिल पाने के कारण गाँव दिन–ब–दिन कमजोर व लाचार होते जा रहे हैं। परिणाम स्वरूप गाँव का किसान ऋण लेने के लिए मजबूर हो रहा है और उस ऋण को न चुका पाने की स्थिति में गाँव के किसान और भूमिहीन मजदूर आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो रहे हैं। दूसरी तरफ दिल्ली इस जमीनी हकीकत को स्वीकार न करके फाइलों में ही देश की तरक्की को दर्ज कर रही है। अनूप जी इस सच्चाई को बड़े स्पष्ट रूप से उघाड़ते हुए लिखते हैं–

तरक्की पर है अपना मुल्क ऐसा कह रही है दिल्ली
यहाँ कंगाल–सा आँसू बहाता गाँव अब भी है
ये सच है खून में डूबे न दिखते हाथ औ खंजर
बदन पर हर जगह रिसता हुआ यह घाव अब भी है।

गाँवों को लेकर अनूप जी का कथन दिल्ली के दावों से ज्यादा वास्तविक और विश्वसनीय है। जैसे–जैसे फाइलों में सरकार योजनाओं की बाढ़ ला रही है वैसे–वैसे गाँव वास्तविकता के धरातल पर बदहाली और कंगालीकरण की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। इधर बीते तीन दशकों में यह प्रक्रिया और तेज हुई है। जब से भूमंडलीकरण का दौर शुरू हुआ तब से भारतीय गाँवों की स्थिति और बदतर हुई है। शहरों और गाँवों का निम्नमध्यम वर्ग भूमंडलीकरण की आंधी का सबसे बड़ा शिकार हुआ है। भूमंडलीकरण की चमक–दमक ने जहाँ इस वर्ग को तेजी से उपभोक्ता में बदल दिया है वहीं दूसरी तरफ उसके रहे सहे संसाधनों को भी छीन लिया है। भूमंडलीय मीडिया के द्वारा भ्रामक आकर्षण में फांसा गया यह वर्ग अपना सब कुछ गवां कर भूमंडलीय चमक–दमक का एक हिस्सा पा लेना चाहता है। वह सब कुछ पा लेना व भोग लेना चाहता है, जो उसके सामने भूमंडलीय मीडिया तेजी से परोस रहा है और जो सामान्य रूप से उसकी पहुंच से दूर है। बाजार रोज नई–नई रणनीतियों और चालाकियों से इस वर्ग को लुभा रहा है और यह वर्ग उसकी चालाकियों को बिना समझे बाजार की साजिश का शिकार बन रहा है। अनूप जी के अंदर बैठा

ग़ज़लकार इस चालाकी को पहचानता है और निम्नलिखित पंक्तियों के माध्यम से आम आदमी को सतर्क करता है–

समझना उसको मुश्किल है बड़ा शातिर शिकारी है
वो खंजर बेचनेवाला अहिंसा का पुजारी है
नये हथियार हैं उसके नयी रणनीतियाँ भी हैं
नयी सजधन में निकला फिर पुराना कारोबारी है
दिखाता है ये सपने और आँखें छीन लेता है
हमारा रहनुमा है यह कि यह शातिर मदारी है।

सपने दिखाकर आँखों को छीन लेनेवाला यह कारोबारी भूमंडलीकरण के दौर का वह खतरनाक व्यापारी है जो अपने लाभ के लिए गरीब देशों की जनता के सारे संसाधनों को लूट रहा है और इस काम में उसकी पाली हुई भूमंडलीय मीडिया उसका खुलकर साथ दे रही है। अनूप जी बड़े साफ शब्दों में इस कुचक्र के खिलाफ एक दूसरी ग़ज़ल में लिखते हैं–

परदेसी फिर घरवाला बन बैठेगा
घरवाला परदेसी होता जाएगा
हम तो उसके पैरों को सहलायेंगे
वह हमको हरदम लतियाता जाएगा

आज लतियाये जाने की शुरूआत हो चुकी है। अनेक बार हमारी सरकारों को पश्चिमी ताकतों द्वारा डांटा–फटकारा व धमकाया जा रहा है। यहाँ तक की बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी हमारी सरकारों को आँखें दिखाती हैं और अपनी शर्तों को मानने के लिए मजबूर करती हैं। ऐसे में देश की आम जनता की छटपटाहट को समझा जा सकता है। विदेशी कंपनियों की सीनाजोरी व उनके खतरे को अनूप जी समझते हैं, इसीलिए वे इस खतरे के प्रति हमें अपनी ग़ज़लों के माध्यम से सावधान करते हैं। भूमंडलीकरण के कारण समाज में बाजारवाद हावी हो गया है। रिश्तों में भी बाजार का लाभ–हानि भाव आ गया है। अब हम अपने रिश्तों को भी बाजार की जरूरतों के आधार पर परिभाषित कर रहे हैं। रिश्तों में पुरानी खलिश व तड़प अब नहीं दिखाई देती। जज्बातों व संवेदनाओं का निरंतर अभाव अब संबंधों में स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा है। इस स्थिति पर भी विचार करते हुए अनूप जी लिखते हैं–

अब नहीं वो चाहतें, वैसी कशिश वैसी खलिश
आ गया बाजार अब तो प्यार के संसार में
सत्य कहता हूँ, कहूँगा सत्य ही हर हाल में
दो मुझे फाँसी या चुनवाओ मुझे दीवार में।

समाज में बाजारवाद को बढ़ावा भूमंडलीकरण के कारण मिला है और इस भूमंडलीकरण को देश में लाने व इसे बढ़ावा देने का कार्य हमारे सत्ताधीशों ने किया है। इन्हीं नेताओं ने भाई–भतीजावाद, भ्रष्टाचार व अपराध व अपराधियों को भी शह दे रखा है। लोकतंत्र के नाम पर नेता अपने स्वार्थों को अनेक बहानों से पूरा कर रहे हैं। जनता भयंकर राजनीतिक व आर्थिक शोषण का शिकार हो रही है। जिन अपराधियों को जेलों में होना चाहिए था वे संसद व विधान सभाओं में बैठे हुए हैं और सत्ता का उपयोग अपने स्वार्थ को साधने में कर रहे हैं। जनता के कल्याण व उत्थान का भाव भारतीय राजनीति से लगभग लुप्त हो चुका है। सत्ता का बंदरबांट लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए घातक सिद्ध हुआ है। लोकतंत्र व व्यवस्था पर चंद राजनीतिक परिवारों ने कब्जा जमा लिया है और सरकारें एक कंपनी की तरह लाभ व वर्चस्व को बनाये रखने के लिए चलाई जा रही हैं। अनूप जी इस स्थिति को आवाम के सामने रखते हुए लिखते हैं–

जो मुजरिम हैं वही सब बन के पहरेदार बैठे हैं
वहाँ संसद में कितने देश के गद्दार बैठे हैं
किसी अजगर से ये हर ओर फेंटा मार बैठे हैं
समूचे देश की छाती पे कुछ परिवार बैठे हैं।

भारतीय राजनीति में हावी परिवारवाद देश के लोकतंत्र को कमजोर व भ्रष्ट बनाने का कार्य कर रहा है। परिवारवाद के कारण देश की राजनीति निरंकुश हुई है और राजनेताओं की दखलंदाजी व्यवस्था के हर क्षेत्र में हुई है। बड़े परिवारों की देखादेखी तमाम ऐसे छोटे–छोटे राजनीतिक पकड़वाले परिवार देश के हर जिले व कस्बे में विकसित हो चुके हैं जो हर हाल में सत्ता पर अपनी पकड़ बनाए रखना चाहते हैं और राजनीतिक गतिविधियों के केन्द्र में रहना चाहते हैं। ये परिवार सत्ता को अपनी बपौती समझते हैं और साम, दाम, दंड, भेद का उपयोग कर सत्ता में बने रहने की जुगत भिड़ाते रहते हैं। ये सत्ता के लिए हर प्रकार के समझौते कर सकते हैं और किसी भी तरह का गंदा खेल खेल सकते हैं। हमारे लोकतंत्र में नेता जैसा अर्थगर्भित शब्द अपनी अर्थवत्ता को खो चुका है। नेता शब्द अब सम्मान व आदर प्रकट करने के लिए प्रयोग में नहीं लाया जाता बल्कि यह अब मक्कार, धूर्त व शातिर जैसे अर्थ को प्रकट करने के लिए काम में लाया जाने लगा है। अनूप जी इसी सत्य को बयां करते हुए निम्नलिखित पंक्तियों में कहते हैं–

हमारे रहबरों के आचरण में रहजनी क्यों है
यहाँ जम्हूरियत की जड़ में बैठी हिटलरी क्यों है
गलत है, झूठ मक्कारी दलाली, है पता सबको
गलत जो बात थी, वह बात अब आखिर सही क्यों है?

आश्चर्य यह है कि झूठ फरेब व मक्कारी की फसलें बोकर राजनीति का खेल खेलने वाले राजनेता दिन–ब–दिन ज्यादा ताकतवर व कद्दावर होते जा रहे हैं और इनके भ्रष्टाचार व अत्याचार के विरोध का स्वर क्षीण से क्षीणतर होता जा रहा है। ऐसे रावणों का विरोध करने वाले राघव आज बड़े कमजोर व शक्तिहीन लग रहे हैं। यह एक दुःखद पक्ष है देश का नैतिक बल दिन–ब–दिन कमजोर होता जा रहा है। इस दुःखद पक्ष पर प्रकाश डालते हुए अनूप जी लिखते हैं–

दिनोंदिन रावणों की शक्ल कद्दावर हुई जाती
हमारे दौर का राघव बड़ा लाचार लगता है।

अनूप जी केवल नेताओं के चारित्रिक विचलन को ही नहीं उठाते बल्कि उस हर व्यक्ति के चारित्रिक विचलन व पाखंड पर प्रहार करते हैं जो दोहरे मानदण्ड का जीवन जीते हैं। हर गलत मार्ग से पूँजी जोड़कर महलों में रहने वाले जब आम जनता के सुखों–दुःखों की बात करते हैं तब अनूप जी को भयंकर कोफ्त होती है और वे उसके मगरमच्छी आँसू के सच को उघाड़ते हुए लिखते हैं–

महल में बैठकर वह आम जन की बात करता है
कोई आवारा मीरा के भजन की बात करता है
हमारे दौर में अच्छे–बुरे का फर्क है मुश्किल
यहाँ हर बदचलन अब आचरण की बात करता है।

इस अराजक माहौल में देश की आम जनता पिस रही है। गरीब, मजलूम व अनपढ़ जनता हर प्रकार के शोषण व अत्याचार को चुपचाप सह रही है तथा हमारे देश का लचर कानून उसकी सुरक्षा करने में नाकाम है। जनता का विश्वास कानून व प्रशासनिक मशीनरी पर से उठ रहा है। वह न्याय व सुरक्षा पाने के लिए स्थानीय गुंडों, दादा या भाई पर ज्यादा विश्वास करने लगी है और ये गुंडे हुकूमत की शह पाकर बेताज बादशाह बने अपनी मनमर्जी चलाते, सीना फुलाए घूम रहे हैं। इस परिदृश्य पर व्यंग्य करते हुए अनूप जी लिखते हैं–

हमारे देश का कानून अब तो
खदेरू की लुगाई हो गया है
वो गुण्डा चल रहा सीना फुलाकर
हुकूमत का जमाई हो गया है।

देश के पिछड़ेपन व आम जनता की बदहाली को देखकर ग़ज़लकार के मन में सत्ता में बैठे हुए लोगों के खिलाफ आक्रोश जन्म लेता है। इस बदहाली को खुशहाली बतानेवाले मक्कार सत्ताधीशों पर कटाक्ष करते हुए अनूप जी लिखते हैं–

गरीबी, टैक्स, महँगाई दिनोंदिन बढ़ रही है और
हमारे रहनुमा इन सबको खुशहाली बताते हैं

अनूप जी का यह आक्रोश एक गहरी उदासी का रूप तब ले लेता है जब वे देखते हैं कि देश के नौजवानों व किसानों का भविष्य अंधेरे में डूब रहा है। पढ़े–लिखे नौजवान बेरोजगारी व किसान गरीबी की मार झेलने के लिए मजबूर हैं। नौजवान व किसान ही देश के भविष्य हैं और यह भविष्य ही अपने आपको लाचार व गतिशून्य पा रहा है तथा व्यवस्था या समाज उनकी ओर से संवेदनहीन व निरपेक्ष हो गया है। यह संवेदनहीनता अनूप जी को बेचैन करने के साथ–साथ उदास कर देती है। इस उदासी को व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं–

हमारे देश के बच्चों की आँखों में उदासी है
बुढ़ापा घेर लेता है अचानक नौजवानी में
हमारे अन्नदाता अन्न की खातिर तरसते हैं
गुजारा हो नहीं पाता है अब खेती किसानी में।

ये पंक्तियाँ हमारे देश की वर्तमान स्थिति की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। आज बेरोजगारी से तंग आकर एक तरफ पढ़े–लिखे युवा अपराध की दुनिया की ओर बढ़ रहे हैं वहीं दूसरी तरफ कर्ज व जिल्लत की जिंदगी में डूबे किसान कीटनाशकों की शरण ले रहे हैं। हर आधे घंटे में देश का एक किसान आत्महत्या कर रहा है। ऐसे में प्रगति के सारे सूचकांको पर प्रश्नचिह्न लग जाता है। सरकारी मशीनरी के सारे दावे खोखले व अर्थहीन लगने लगते हैं। आजादी के लगभग आठ दशक बीतने को हैं बावजूद इसके इस देश का आम आदमी आज भी गरीबी, लाचारी, बेरोजगारी व भुखमरी में जीवन जीने के लिए मजबूर है। किसान, मजदूर, कामगार और हाशिये पर जीवन बिता रहे लोगों के जीवन की स्थिति के बारे में कोई सरकार कुछ नहीं बोलती। इनके लिए कोई आंकड़े नहीं जुटाता और जो जुटाए जाते हैं वे केवल फाइलों में ही चमत्कार दिखाते हैं। इसका विश्वसनीय चित्र अनूप जी अपनी ग़ज़लों में खींचते हैं–

भूख डाइन सी झपट्टे मारती गुर्रा रही है
एक औरत बुझ रही–सी आग को सुलगा रही है
भूख से बेहाल बच्चा है जमीं पर लोटता
वह उसे चंद दिखाकर देर से बहला रही है।

एक जागरूक रचनाकार की नजर समय व समाज के हर परिवर्तन पर रहती है। अनूप जी बाजार के कुचक्र, राजनीतिक विचलन व भ्रष्टाचार, गरीबी व बेरोजगारी जैसे ज्वलंत मुद्दों के साथ–साथ सांस्कृतिक पतन पर भी पैनी निगाह रखते हैं। बाजार की ताकतों ने संस्कृति को पदच्युत कर अपसंस्कृति को समाज में स्थापित कर दिया है। बाजारू दिखावट, ताम–झाम व नंगई पूरे समाज पर हावी होती हुई दिखाई पड़ती है। ऐसे में ग़ज़लकार अपनी मिट्टी की उस सीधी सरल व आदमियत से भरी संस्कृति को याद करता है जिसे सही मायने में संस्कृति कहा जा सकता है और जो अब दिनोंदिन परिदृश्य से गायब होती जा रही है–

बहुत–सी बिजलियों की झालरें आँखों में जब चुभतीं
तो मिट्टी के दियोंवाली दिवाली याद आती है
नई तहजीब जब निर्वस्त्र होती जा रही दिन–दिन
सलीकेदार औरत गाँववाली याद आती है।

इस प्रकार अनूप जी की मर्मभेदी दृष्टि जीवन के हर पक्ष तक पहुँचती है और वे जीवन व व्यवस्था की क्रूरताओं से टकराते हैं। अन्याय व अत्याचार का खुलकर विरोध करते हैं। इस विरोध व जनपक्षधरता की लड़ाई में अपने हथियार के रूप में ग़ज़ल का प्रयोग करते हैं। ग़ज़ल उनके लिए जीवन के सौंदर्य व

प्रेम का चित्रण करनेवाली विधा मात्र नहीं है बल्कि वह शोला भी है जो अन्याय व अत्याचार के विरूद्ध क्रांति की चेतना को प्रज्ज्वलित करने का कार्य करती है। इस कार्य के खतरे को भी वे पहचानते हैं और अपनी फौलादी बाँहों से जीवन के खतरों से टकराने का माद्दा भी रखते हैं। अपनी दृढ़इच्छाशक्ति व ग़ज़ल की तासीर को बयाँ करते हुए अनूप जी लिखते हैं–

फौलाद सी बाँहें हैं चट्टान–सा सीना है
तूफान की मौजों पर जीवन का सफीना है
कहते हैं ग़ज़ल जिसको शबनम भी है शोला भी
आक्रोश है धनिया का, होरी का पसीना भी।

ग़ज़लकार इसी प्रतिबद्धता को अपनी ताकत मानता है और मन में आनेवाली किसी भी समझौता परस्त कमजोरी को धिक्कारता है। वह गलत समझौतों के बनिस्बत लड़ना ज्यादा अच्छा समझता है। अनूप जी इस संदर्भ में लिखते हैं–

दिल ने धिक्कारा बहुत जब झुक के समझौता किया
जुल्म से जब भी लड़ी तो जिंदगी अच्छी लगी।

ग़ज़लकार इस खुद्दारी व प्रतिबद्धता को ही अपने जीवन की पूँजी मानता है। वह अपने आपको तुलसी, जायसी व रसखान का वारिस बताता है। अपने स्वाभिमान को बचाये रखने के लिए वह सीकरी के सत्ता की मनसबदारी को ठुकराता है और कुम्भन की फकीरी में ही सुख मानता है। जनपक्षधरता को जीवनमूल्य मानने वाले जनवादी चेतना के रचनाकारों में ही यह स्वाभिमान इस बाजारवादी दौर में शेष बचा है। अनूप जी इसी परंपरा के रचनाकारों में आते हैं यही कारण है कि उनकी ग़ज़लें आम आदमी के साथ खड़ी है और उसके हक की लड़ाई अपने तरीके से लड़ रही हैं। असल में ये ग़ज़लें उस आम आदमी की पीड़ा, छटपटाहट, लाचारगी, आक्रोश व संघर्ष का एक जीवंत बयान हैं जो सत्ता की दहलीज तक नहीं पहुंच पाता और जिसकी अहमियत सत्ता के लिए केवल वोटबैंक तक सीमित है। ये ग़ज़लें व्यवस्था से टकराकर आम जनता के लिए उसके अधिकार व न्याय की गुहार लगाती हैं। इन ग़ज़लों में अवसरवाद का रंग नहीं घुला है। ग़ज़लकार अपने जमीर व फन के प्रति पूरी तरह ईमानदार है। इस ईमानदारी की चमक ग़ज़लों में स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होती है। केवल शब्दों की मीनकारी व पच्चीकारी से ग़ज़लों में ऐसी रंगत व तड़प नहीं आ सकती। इसके लिए ईमानदारी के चाक पर रचनाओं को रूप देकर उसे खुद्दारी की भट्ठी में पकाना होता है। जिसे पूरी शिद्दत के साथ अनूप जी ने जिया व निभाया है। इसे वे स्वयं स्वीकारते हुए बड़ी विनम्रता से लिखते हैं–

हमेशा रंग बदलने की कलाकारी नहीं आती
बदलते वक्त की मुझको अदाकारी नहीं आती
जिसे तहजीब कहते हैं वो आते–आते आती है
फ़कत दौलत के बलबूते रवादारी नहीं आती।

दौलत की खनक पर जब आज सारी दुनिया भाग रही है। बाजार, राजनीति, मीडिया के साथ–साथ कला और संस्कृति की दुनिया में दौलत रोज नए प्रतिमान व शख्सियतों को तोड़–जोड़ रही है, बना–बिगाड़ रही है। ऐसे में तहजीब व रवादारी को जीवनमूल्य बनाये रखने का आग्रह करनेवाली ये ग़ज़ले हमें ग़ज़ल की जनवादी परंपरा के संजोये व गतिमान बनाये रखने के प्रति आश्वस्त करती हुई सुखद अनुभूति देती हैं।

★

मेरी कविता बगावत-बिगुल है

डॉ. मीनाक्षी दुबे

'मेरी कविता बगावत–बिगुल है, निर्बलों की दुहाई नहीं है।' और 'ये ग़ज़ल ग़ज़ाल चश्मों से गुफ्तगू नहीं है, यह है मेरे अहद के ज़ख्मों की तर्जुमानी।' या 'कहते हैं ग़ज़ल जिसको शबनम भी है, शोला भी, आक्रोश है धनिया का, होरी का पसीना है।' जैसे शेरों के द्वारा अपने काव्य के सरोकारों की घोषणा करने वाले डॉ. वशिष्ठ अनूप हिन्दी ग़ज़ल की पहली .कतार से प्रतिष्ठित रचनाकार हैं। वह हिन्दी साहित्य के विरल साहित्यकार हैं जो जितने संवेदनशील और व्यापक दृष्टि वाले कवि हैं उतने ही कुशल, गम्भीर और दृष्टि–सम्पन्न आलोचक भी हैं। उन्होंने हिन्दी गीत और ग़ज़ल में लम्बी यात्रा तय की है। बन्जारे नयन, रोशनी .खतरे में है, रोशनी की कोपलें, अच्छा लगता है, मशालें फिर जलाने का समय है, तेरी आँखें बहुत बोलती हैं, बारूद के बिस्तर पर और घरों पर गिद्ध मड़राने लगे हैं जैसे ग़ज़ल–संग्रह उनके उत्तरोत्तर काव्य–विकास के साक्षी हैं उन्होंने विविध विषयों पर दो दर्जन से अधिक आलोचना–पुस्तकें भी लिखी हैं। 'हिन्दीग़ज़ल का स्वरूप और महत्वपूर्ण हस्ताक्षर' तथा 'हिन्दीग़ज़ल की प्रवृत्तियाँ' उनकी ग़ज़ल–आलोचना की श्रेष्ठ कृतियाँ हैं।

प्रो० वशिष्ठ अनूप से मेरा प्रत्यक्ष परिचय तब हुआ था जब वह मेरी पी–एच०डी० की मौखिक परीक्षा के लिए भोपाल आाये थे लेकिन भोपाल की 'एकलव्य' संस्था द्वारा प्रकाशित एक छोटी–सी पुस्तक में छपे उनके एक गीत ने मेरा ध्यान बहुत पहले आकृष्ट कर लिया था जिसकी आरंभिक पंक्तियाँ हैं–

इसलिए राह संघर्ष की हम चुनें
.जिन्दगी आँसुओं में नहाई न हो,
शाम सहमी न हो, रात हो ना डरी
भोर की आँख फिर डबडबाई न हो।...

गीतकारों और .ग़जलकारों को पढ़ना मुझे शुरू से ही अच्छा लगता है। इसीलिए कुछ प्रिय रचनाकारों पर लिखती भी रही हूँ। दुष्यन्त कुमार और उनके समकालीन तथा बाद के रचनाकारों को पढ़ते हुए मैंने अनुभव किया कि बहुत कम .ग़जलकार ऐसे हुए जिनमें मौलिक चिन्तन, विषयवस्तु की सही पहचान और छन्दों की अच्छी समझ दिखाई पड़ती है। वैसे तो पत्र–पत्रिकाओं में .ग़जलकारों की भरमार है लेकिन दुष्यन्त कुमार, सूर्यभानु गुप्त, शेरजंग गर्ग, नीरज, कमल किशोर श्रमिक, अदम गोण्डवी, ज़हीर कुरैशी, रामदरश मिश्र, कुंअर बेचैन, माधव कौशिक और वशिष्ठ अनूप जैसे थोड़े से लोग हैं जिन्हें हिन्दीग़ज़ल में मानक के रूप में रखा जा सकता है।

एक पाठक के रूप में प्रो० वशिष्ठ अनूप की .ग़जलों में विषयवस्तु की ताज़गी और साफ़गोई हमें बहुत प्रभावित करती है। मुझे लगता है कि महान .ग़जलकार दुष्यन्त कुमार शहरी और राजनीतिक चेतना के कवि थे तथा जनकवि अदम गोण्डवी मूलतः ग्रामीण चेतना के प्रखर कवि थे। वशिष्ठ अनूप गाँव और शहर दोनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें दुष्यन्त और अदम दोनों की खूबियाँ देखी जा सकती हैं। वह जितने गाँव के हैं, उतने ही शहर के भी। वह कहते भी हैं–

डालियाँ दूर शहरों में पैह्लें भले,
पर जड़ों के लिए गाँव–घर चाहिए।

हालांकि गाँव और शहर की बात करते हुए उनका झुकाव गाँव की ओर .ज्यादा दिखाई पड़ता है। माटी की खुशबू उन्हें जीवन्त करती है और गाँव का परिवेश उन्हें रीचार्ज करता है–

हमारे गाँव की माटी में जैसी खुशबू है,
तुम्हारे शहर के परफ्यूम में वो बात कहाँ?
इसी माटी की खुशबू से महक आती है जीवन में

इन्हीं लम्हों की गर्मी से खुशी रीचार्ज होती है।

गाँव–घर के नज़ारे उन्हें बहुत आकर्षित करते हैं। नमक–तेल के साथ बचपन में खायी गई गर्म रोटी और अम्माँ का दुलार उन्हें नहीं भूलता। इसीलिए वेद और शास्त्र की समझ होने के बावजूद वह लोक की थाती को सहेजना अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं–

रचा था लोक ने जिसको वो परिपाटी महकती है,
बुजुर्गों के पसीने से मिली थाती महकती है।
ज़रा झुककर, बड़े सम्मान से इसके निकट आना,
मेरी कविता में मेरे गाँव की माटी महकती है।

हर श्रेष्ठ कवि और भले इंसान की तरह प्रो० अनूप भी अपनी परम्परा और अपनी संस्कृति की अच्छाइयों और आदर्श–मूल्यों को साथ लेकर आगे बढ़ना चाहते हैं। जब वह एक क़दम भविष्य की ओर बढ़ाते हैं तो एक जमीन और परम्परा में जमाये रखते हैं। वह कहते हैं– मिलें आसमाँ की बुलंदियाँ तो ज़मीं से पाँव जुड़े रहें'। इसीलिए कविता में भी वे अपने आदर्श और प्रेरक कवियों की तलाश करते हैं, उनमें डूबते हैं और उनकी सकारात्मकता को लेकर आगे बढ़ना चाहते हैं–

तुलसी के, जायसी के, रसखान के वारिस हैं,
कविता में हम कबीर के ऐलान के वारिस हैं।
हम सीकरी के आगे माथा नहीं झुकाते,
कुम्भन की फ़कीरी के, अभिमान के वारिस हैं।
हम शब्द–सारथी हैं हर वक़्त इक समर में,
हम पाश व सफ़दर के अरमान के वारिस हैं।...

इसी प्रकार एक दूसरी ग़ज़ल में वह कहते हैं–

तुलसी से मुझे प्यार है और इश्क मीर से,
क़ायम है सदा से मेरा रिश्ता कबीर से।
प्रतिपक्ष में हरदम हुई अन्याय के खड़ी,
वाबस्तगी क़लम की हमेशा है पीर से।

कविता में बहुत सारे नामों की गणना सम्भव नहीं होती लेकिन यहाँ अनूप जी ने यह साफ़ कर दिया है कि वह कबीर, जायसी, तुलसी, रसखान, कुम्भनदास, मीर, ग़ालिब, भगतसिंह, पाश, सफ़दर हाशमी की प्रगतिशील परम्परा के वारिस हैं और शोषित समाज के साथ खड़े होने वाले रचनाकार हैं।

आज एक तरफ़ बहुत सारे बनावटी कवियों के काव्य–परिदृश्य से किसान ग़ायब हैं, दूसरी तरफ़ वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में किसान–जीवन लगातार उपस्थित है। हम सभी जानते हैं कि आज मध्यम और छोटी जोत की किसानी घाटे का सौदा है लेकिन किसान उसे छोड़ भी नहीं सकते। कभी वह 'इज़्ज़त' लगती है और कभी मज़बूरी। कम ज़मीन, बेरोज़गारी और मँहगी खाद, बीज, डीजल, बिजली और कृषि उपकरणों के कारण बहुत सारे विषयों के लिए कृषि–कर्म चुनौती–भरा हो गया है। इन किसानों के दर्द और उनकी मुश्किलों की अभिव्यक्ति अनूप जी अपनी कई ग़ज़लों में करते हैं। एक उदाहरण देखें–

रात–दिन हैं किसान खेतों में,
उनका सारा जहान खेतों में।
ज़िन्दगानी यहीं समर्पित है,
सारी पूजा–अज़ान खेतों में।
सारे सपनों की हद यहीं तक है,
मन की सारी उड़ान खेतों में।
दाना–दाना लुटा के खुश होते,
मान खेतों में, शान खेतों में।

मेघ रूठे हैं, चढ़ गया डीजल,
और रोते हैं धान खेतों में।

अक्सर प्रकृति की मार भी किसानों को तबाह करती रहती है–

बाढ़ में बह गई फसल सारी
खेत कुछ बिक गए लगानों में।

वह किसानों के श्रम और उस श्रम की उपज अन्न के महत्व का गान करते हैं जिसके बिना सारा ज्ञान भूल जाता है और भजन नहीं हो पाता–

बिना अन्न के है नहीं कुछ भी मुमकिन,
सृजन के तो हथियार हल–फावड़े हैं।

भाइयों के आपसी बँटवारे में एक तो खेती का आकार घटता गया है, दूसरी ओर बाढ़, सूखा, टैक्स, क़र्ज आदि समस्याओं ने कृषक समुदाय को फटेहाल कर डाला है। सरकारों का व्यवहार भी इनके प्रति निर्ममता का ही होता है। परेशानियों से तंग आकर लाखों किसान आत्महत्या कर चुके हैं। सरकारें उनकी समस्याओं पर ध्यान नहीं देतीं। ऐसे में किसान 'गोदान' के होरी की तरह मज़दूर बनने और शहरों में पलायन करने तथा अपमानित होने के लिए विवश हो रहे हैं–

था कहाँ तैयार झुकने को किसी दरबार में,
पर ़गरीबी ले गई अपमान के संसार में।
छोड़कर घर चल पड़ा हल्कू मजूरी के लिए,
पेट तक भरता नहीं खेती के कारोबार में।
फिर किसी बुधिया की काया बे़क़फन रखी रही,
फिर किसी होरी की बेटी बिक गई बा़जार में।

बात इतनी ही नहीं है। गाँवों का परिवेश पहले–सा सौहार्दपूर्ण नहीं रह गया है। वहाँ नये ढंग के सामंत, दबंग, गुण्डे और बदमाश पनपे हैं। सांसदी, विधायकी और प्रधानी तक की राजनीति करने वाले गुण्डों के कारण आमजन का जीवन मुश्किल हो गया है। इस भयावह और क्रूर यथार्थ को इन शेरों में देखा जा सकता है–

हमारे गाँव में चलकर कभी देखें ऩजारा यह,
मगर के साथ वैह्रसे आदमी पानी में रहता है।
़गरीबों के लिए इ़ज्ज़त बचाना है बहुत मुश्किल
अभी भी गाँव में होरी परेशानी में रहता है।
यहाँ अट्टालिकाएँ ऱोज बनती जा रहीं लेकिन,
बनाने वाला क्यों फुटपाथ या छानी में रहता है?

शहरों में मज़दूर बनकर काम करने वाले किसानों के बेटों की दुर्दशा पिछले दिनों हर बड़े शहर में दिखायी पड़ी जब उन्हें काम से हटा दिया गया और उन्हें भगाया जाने लगा। पत्नी–बच्चों के साथ सामान लादे भूखे–प्यासे पैदल लौट रहे उन बेबस लोगों को अनेक परेशानियों के साथ ही लाठी–डन्डे भी खाने पड़े। कितने रास्ते में ही मर गए। अनूप जी ने उन त्रासद स्थितियों का बहुत मार्मिक वर्णन किया है। ऐसा वह इसलिए कर पाते हैं क्योंकि उनकी खुद की जड़ें भी उन्हीं में हैं। उन्होंने लिखा है– 'मैंने तपती हुई राहों पे चलना सीखा है, मुझको कालीन की बारीकियाँ नहीं आतीं।' इस विषय पर उनकी यहग़ज़ल मार्मिक तो है ही, इससे अनेक सवाल भी पैदा होते हैं–

हर ओर खट रहे हैं, यूपी–बिहार हैं हम,
हर ऱोज पिट रहे हैं, सबके शिकार हैं हम।
घर में जो मिलती ऱोजी, क्यों कर भटकते दर–दर,
ललकार की है क्षमता, फिर भी गुहार हैं हम।

हम सबके खूँ–पसीने से जगमगाती दुनिया,
हम गाड़ियों के पहिए, कहते गँवार हैं हम।
यूँ भूख ने है तोड़ा, घर–गाँव से शहर तक,
हर हाँ में हाँ मिलाते, पिछले कहार हैं हम।
कुछ साज़िशों के चलते, बिखरा है ताना–बाना
वरना सृजन भरा है, ताक़त अपार हैं हम।...

यह हमारे देश के करोड़ों नौजवानों–मज़दूरों के जीवन की वास्तविक दास्तान है जिन्हें हमारे देश के नेता–अधिकारी देखना–समझना नहीं चाहते। अपार ताक़त से भरी नौजवानी पिटने को अभिशपत है, यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य है।

अनूप जी की ग़ज़लों में श्रमिक–समाज के प्रति सम्मान और सहानुभूति भरी हुई है। वह जानते हैं कि हर वस्तु का उत्पादन और सृजन करने वाला यही समुदाय है। हर छोटी से बड़ी वस्तु वह अनाज हो, मशीनें हों, या महल और किले; यही मेहनत करने वाला वर्ग बनाता है। सारी धरती का बोझ इसी के कन्धों पर टिका है। इसीलिए प्रचलित मान्यताओं के विपरीत वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टि का परिचय दे हुए वह कहते हैं कि–

कछुए की पीठ पर न शेष–फन पे टिकी है,
धरती श्रमिक के हाथ पर, गर्दन पे टिकी है।
महलों के ऐशबाग में महके हैं जो भी फूल,
उनकी महक अवाम के जीवन पे टिकी हैं।
ये कोठियाँ जो ब्याह की दुल्हन–सी सजी हैं,
इनकी चमक ग़रीब के आँगन पे टिकी हैं।

लेकिन वह इस बात से दुखी हैं कि अनाज उपजाने वाले और सारे कार्य करने वाले लोगों का समाज में सम्मान नहीं है। रोटी, कपड़ा और मकान भी सुलभ नहीं है। प्रत्येक दिन कोई न कोई 'दिवस' मनाने के अभ्यस्त हम बौद्धिक समाज के लोग शब्द मात्र से 'मजदूर–दिवस' भी मनाकर औपचारिकता पूरी कर लेते हैं किन्तु सचमुच मज़दूरों की चिन्ता करते हैं क्या? इस विषय पर प्रोफेसर अनूप के ये शेर द्रष्टव्य हैं–

जो बहाते ख़ूँ–पसीना उनका आदर है कहाँ?
घर बनाने वालों का अपना कोई घर है कहाँ?
अन्न उपजाते हैं जो, सारे सृजन करते हैं जो,
भूख भर भोजन अभी उनको मयस्सर है कहाँ?

हर दिन बढ़ती मँहगाई, बेरोज़गारी, मज़दूरों की छँटनी और कम मज़दूरी से परेशान एक बहुत बड़ा समुदाय परिवार की गाड़ी खींचते हुए हाँफ रहा है। बुनकर समाज की भी यही स्थिति है। वह दलालों और साहूकारों के शोषण का शिकार होता है। कई बार इन्हें आटा–चावल ख़रीदने के लिए अपना ख़ून तक बेचना पड़ता है। ये ख़बरें एक सम्वेदनशील कवि को बेचैन करती हैं–

लहू जब बेचता है, तब कहीं वह घर चलाता है,
दुखी हैं आज वे करघे जिन्हें बुनकर चलाता है।
हुई हर चीज़ महँगी तब कहा होरी से धनिया ने,
पता करते कि वैह्सै अपना घर गोबर चलाता है।
फँसी है ज़िन्दगी की बैलगाड़ी विकट दलदल में
बड़ी मुश्किल से घर–परिवार अब खेतिहर चलाता है।

श्रमिक समुदाय के लिए अच्छा और भरपेट भोजन आज भी एक सपना है, यह एक सभ्य, स्वाधीन और आधुनिक समाज के लिए कलंक और शर्म की बात है। श्रमिक यदि बीमार न पड़े तो उसे आराम नहीं

मिलता। अस्पताल में बीमार एक ऐसे ही व्यक्ति को देखकर उन्होंने मूल समस्या को उठाते हुए व्यंग्यात्मक शैली में लिखा है–

उस तड़पते व्यक्ति को भरपेट भोजन चाहिए,
एक दिन ग्लूकोज चढ़वाने से कुछ होगा नहीं।
दो ़कदम व्यवहार की धरती पे चलकर देखिए
बैठकर सिद्धान्त पगुराने से कुछ होगा नहीं।

सुबह होते ही गाँवों के बहुत सारे मज़दूर काम की तलाश में शहर का रुख करते हैं। जिन्हें काम मिल जाता है, उनका तो काम चल जाता है लेकिन तमाम मजदूर दिनभर ग्राहक की प्रतीक्षा करके खाली हाथ वापस लौट जाते हैं। ऐसे में उनके घरों में इन्त़जार कर रहे माता–पिता, पत्नी–बच्चों की क्या स्थिति होती है, और स्वयं उन मज़दूरों की क्या मनोदशा होती है, इसका बहुत मार्मिक और बेचैन कर देने वाला चित्रण इस शेर में देखें–

बच्चे खुश हैं, पापा आये, पत्नी गुमसुम देख रही,
भारी मन सोचे मजदूरा क्या कहकर समझाये वह।

इन सारी समस्याओं को सुलझाने का दायित्व जिन चुनी हुई सरकारों और उनके मंत्रियों, नेताओं, अधिकारियों पर होता है, दुर्भाग्य से वे इन पर कभी ध्यान नहीं देते। चुनाव के समय ही इन्हें जनता जनार्दन की याद आती है और सभाओं, भाषणों, आश्वासनों की बाढ़ आ जाती है। तमाम दर्शनीय, मानवीय और महानुभाव लोगों के साथ तमाम अपराधी, डवैहृत और माफिया भेष बदलकर जनता की अदालत में हा़जिर होकर साष्टांग प्रणाम करने लगते हैं। अनूप जी की एकग़ज़ल देखें–

अचानक लोग घबड़ाने लगे हैं,
लकड़बग्घे ऩजर आने लगे हैं।
अजब–सी सनसनी है आसमाँ में,
घरों पर गिद्ध मड़राने लगे हैं।
अचम्भित कर रहे हैं ये ऩजारे,
बया को बाज दुलराने लगे हैं।
निकल आये हैं विषधर सब बिलों से,
फनों को खोल लहराने लगे हैं।
वनों में अब न आदमखोर मिलते,
सभाओं में वे गुर्राने लगे हैं।

इस प्रसंग में यह शेर भी लाजवाब है–

चुनावों में हमारे घर वो सुबहो–शाम आते हैं,
खयालों में कभी घुरहू, कभी मुखराम आते हैं।

बुद्धिजीवी समाज, चिन्तक, कलाकार, साहित्यकार और संस्कृतिकर्मी हमेशा से सरकारों के ़गलत निर्णयों और जनविरोधी कार्यों का विरोध करते आ रहे हैं, आज भी कर रहे हैं। सरकारें कभी उनका दमन करती हैं और कभी उन्हें पुरस्कारों–सम्मानों के माध्यम से फुसलाने, खरीदने और निर्जीव करने की कोशिश करती हैं। तमाशाह और पूँजीपतियों की हितैषी सरकारें तरह–तरह के छल–छद्म करती हैं। प्रो० अनूप की यह बहुचर्चितग़ज़ल इसका बेहतरीन नमूना है–

कलम को थपथपाती है हुकूमत,
कम से थरथराती है हुकूमत।
कलम की रीढ़ रह जाये न ़कायम,
गले हँसकर लगाती है हुकूमत।
लपट जब फेंकने लगती कभी तो,

कलम से काँप जाती है हुकूमत।
कलम को कुन्द करने के हजारों,
तरीके आ़जमाती है हुकूमत।
फतह कर ले भले ही मोरचे, पर
कलम से हार जाती है हुकूमत।

प्रो० वशिष्ठ अनूप की ़ग़जलों का यह एक पक्ष है जिसमें वह सामाजिक चेतना और जनचेतना से भरे प्रतिरोध के स्वर उठाते ऩजर आते हैं। इनके अलावा उनका दूसरा पक्ष भी है जहाँ उनके हृदय के कोमल भावों की अभिव्यक्ति हुई है। हिन्दीग़ज़ल में आग और राग तथा संघर्ष और प्रेम का ऐसा बेजोड़ कवि कोई दूसरा नहीं है। वह निराला, शमशेर, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल और ़पैह्ज, ़फिराक की परम्परा के विरल कवियों में से हैं जिनमें सामाजिक और व्यक्तिगत प्रेम दोनों चरम अनुभूति के साथ ़खूबसूरत अन्दा़ज में व्यक्त होते हैं। सौन्दर्य–वर्णन में उन्हें कमाल की महारत हासिल है। बोलती हुई आँखों की भाषा उन्हें बहुत प्रभावित करती है–

ये मन का भेद सारा एक पल में खोल देती हैं,
तुम्हारे होठ चुप रहते, तो आँखें बोल देती हैं।
होठ तेरे भले बन्द हों पर, मन का हर भेद ये खोलती हैं,
किस मदरसे में इनको पढ़ाया, तेरी आँखें बहुत बोलती हैं।
तुम्हें जो देखूँ तो दिल की धड़कन से एक मीठी–सी चाह बोले,
कहाँ से सीखा हुनर ये तुमने ़जबान चुप औ निगाह बोले।
शर्त यह है कि लब खुलें भी नहीं,
और सब हाल भी बताना है।

और जब वह नारी–रूप का चित्रण करते हैं तो एक से एक ़खूबसूरत बिम्बों, प्रतीकों और उपमानों की झड़ी लगा देते हैं जिनमें नये और पुराने हर प्रकार के उपमान शामिल होते हैं। उन्होंने तमाम पारम्परिक उपमानों को भी नई ़जिन्दगी दी है। यह रूप–वर्णन कभी अत्यन्त सूक्ष्म और अशरीरी–सा होकर आध्यात्मिकता का स्पर्श करने लगता है और कभी धरती पर चलती–फिरती रूप–राशि का जीवन्त वर्णन लगता है। कुछ उदाहरण देखें–

़ख्वाबों को जैसे सच में बदलते हुए देखा,
मैंने ़जमीं पे चाँद उतरते हुए देखा।
देखा कि एक फूल बोलता है किस तरह,
होठों से हर सिंगार को झरते हुए देखा।
कोयल कमल गुलाब घटा शहद चाँदनी
खुशबू को पाँव–पाँव टहलते हुए देखा।
बलखाती सी, गाती सी, मचलती–सी लहर–सी,
इक रूप की नदी को उफनते हुए देखा।...

हँसी फूल–जैसी बदन मरमरी है,
किसी जादूगर की तू जादूगरी है।
है लगता कभी सिन्धु–मंथन से निकली,
है लगता कभी स्वर्ग की तू परी है।
बताती है मुस्कान तेरे लबों की,
तेरे पास ही कृष्ण की बाँसुरी है।...
तैरती इक परी मछलियों की तरह,
़खूबसूरत–सी इक आग पानी में है।

महाकवि विद्यापति ने लिखा है कि– 'जनम अवधि हम रूप निहारल, नयन न तिरपित भेल, द्रष्टा की देखने की इच्छा का समाप्त न होना, निरन्तर अतृप्ति का बने रहना सौन्दर्य की विशेषता मानी गयी है। इस तल्लीनता, उल्लास, अतृप्ति और निरंतरता से सम्बन्धित अनूप जी के अनेक शेर इसी प्रवृत्ति के हैं–

भीनी–भीनी गंध बसी है हर पल मेरी साँसों में,
जबसे तुमको देखा है, बस तुम ही तुम हो आँखों में।
ऐसा ही तो जहाँ था, तुझे देखने से पहले,
ऐसा मगर कहाँ था, तुझे देखने से पहले!
तुम्हें देखा तो आँखों ने तुम्हें ही देखना चाहा,
बताना भी बहुत चाहा, बहुत कुछ पूछना चाहा।
हमारे दिल की उलझन को, समझ पाना नहीं मुमकिन,
जबाँ ने कह दिया जाओ, नज़र ने रोकना चाहा।
चाँद निकला तो रोशन हुआ ये जहाँ,
तुमको देखा तो मन में उजाला हुआ।
देखकर तुमको आँखों ने की कामना,
अब कोई और सूरत दिखायी न दे।
जब से देखा है खुद को भूल गया
तेरी आँखों में जादू–टोना है।
जानता हूँ ये राह है मुश्किल
तुझको पाना है,.खुद को खोना है।

यह रूप की लहर जब अपने साथ बहाने लगती है और रूप की राशि जब स्वयं में डुबाने लगती है, तब मन हर क्षण कल्पना के नये–नये लोकों में उड़ान भरने लगता है। कालिदास के मेघ और कबीर के प्रेमी मन की तरह हर तरफ़ वही दिखायी पड़ने लगता है। मन में भी वही और आँखों के सामने भी वही। उसके सिवा दुनिया में हर किसी का और.खुद का भी अस्तित्व समाप्त हो जाता है। क्रान्ति की.ग़जलों के लिए जाने जाने वाले डॉ० वशिष्ठ अनूप जब तन्मय होकर प्रेम की.ग़जलें लिखते हैं तो उन्हें पढ़कर लगता है कि वह सिर्फ़ प्रेम के ही कवि हैं। यह आश्चर्य का विषय है लेकिन आश्चर्य क्यों हो? सारी क्रान्ति और सारा संघर्ष तो इसी प्रेममय संसार के निर्माण के लिए ही तो है! उनकी.ग़जलों में एक प्रेमी मन की अनेकानेक मनोदशाओं की.खूबसूरत अभिव्यक्ति हुई है–

कुछ सकुचाना, कुछ घबराना अच्छा लगता है,
तेरा हँसना, फिर शरमाना अच्छा लगता है।
तेरी एक झलक पाने को, तुझसे मिलने को,
हर दिन कोई नया बहाना अच्छा लगता है।
खोया हुआ हूँ कब से तुम्हारे ही आसपास,
गर हो सके तो मुझको कभी मुझसे मिला दो।
मेरी हर.ग़जल, हर कहानी में तुम हो,
मेरी.जिन्दगी!.जिन्दगानी में तुम हो।
कभी राहें बिसर जातीं, कभी घर भूल जाता हूँ,
बुरा मत मानना, मैं नाम अक्सर भूल जाता हूँ।
एक नज़र उसको देखा था,
तबसे.खुद को खोज रहा हूँ।
हर तरफ़ ढूँढ़कर तो देख लिया, अब कहाँ जाके मैं फरियाद करूँ,
याद तुमको कभी किया ही नहीं, तुमको भूलूँ तो तुमको याद करूँ।
नदी प्यार की तट पे गहरी बहुत है,

़जरा सोच लेना उतरने से पहले।

प्रो० वशिष्ठ अनूप ने अपनी लम्बी रचना–यात्रा और व्यापक व बहुआयामी सृजन के दौरान कई कालजयी ग़ज़लें कही हैं। हमारे समय की मुश्किलें, रो़जमर्रा की उलझनें, पारिवारिक और सामाजिक जीवन की खींचतान, राजनीतिक अधोपतन, सम्बन्धों का बिखराव और विश्वासहीनता, आधुनिक महापुरुषों और महात्माओं का पतन व कथनी–करनी का अन्तर, इन सबके बीच पिसते व घुटते हुए आदमी का जीवन–संघर्ष, प्रकृति की चिन्ताएँ और इन सबके साथ एक स्वस्थ समाज व बेहतर संसार के निर्माण की कोशिशें उनकी ग़ज़लों का केन्द्रीय कथ्य हैं। माँ, पिता, बेटी, बच्चे, नदी, पेड़, पहाड़, पक्षी, पर्व आदि पर भी उन्होंने बेमिसाल शेर लिखे हैं। उनकी तमाम ग़ज़लों के साक्ष्य के आधार पर हम कह सकते हैं कि इस दौर में प्रो० वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें हिन्दी की प्रतिनिधि ग़ज़लें हैं। अपनी बात कहने के लिए वह कोई दूर की कौड़ी नहीं लाते, न ही समझ में न आने वाली कल्पनाएँ करते हैं और न ही किसी चमत्कार के चक्कर में पड़ते हैं। उनकी काव्य–भाषा आम जनजीवन की बहती और बोलती–बतियाती हुई भाषा है जिसमें बोलचाल में घुले मिले अरबी–़फारसी के शब्द भी हैं, संस्कृत और भोजपुरी के शब्द भी, लोक में बसे अन्य भाषाओं–बोलियों के शब्द भी शामिल हैं। 'मेरी भाषा फुटपाथों, खेतों–खलिहानों की' की घोषणा करने वाले अनूप जी की सादगी और सहजता ही उनकी ग़ज़लों की शक्ति और सौन्दर्य है। अपनी एकग़ज़ल में वह अपनी आदर्श भाषा का ज़िक्र इस प्रकार करते हैं–

बेड़ी औ ज़ंजीर की भाषा,
सन–सन चलते तीर की भाषा।
मुझे नहीं अच्छी लगती है,
सत्ता की, शमशीर की भाषा।
सीख रहा हूँ धीरे–धीरे,
तुलसी और कबीर की भाषा।
काश! मुझे भी मिल जाती वह,
शहद–सी मीठी मीर की भाषा।
मन होता है जाकर सीखूँ,
सन्तों, पीर–़फकीर की भाषा।

अपने आलेख का अन्त मैं उनकी एक प्रसिद्ध और कालजयीग़ज़ल के दो शेरों के माध्यम से करना चाहूँगी–

हमेशा रँग बदलने की, कलाकारी नहीं आती,
बदलते दौर की मुझको, अदाकारी नहीं आती।
जिसे तहज़ीब कहते हैं, वो आते–आते आती है,
फ़कत दौलत के बलबूते, रवादारी नहीं आती।

स्त्री-जीवन के सत्य का संधान करती वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें

डॉ. सत्यवती चौबे

हिंदी साहित्याकाश के सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार ने अपनी बेबाक ग़ज़लों के माध्यम से हिंदी ग़ज़ल विधा को एक नयी दृष्टि, नयी भाषा, नया तेवर, नया आयाम और नयी ऊर्जा दी है। उन्होंने प्रेम और श्रृंगार से ओत–प्रोत ग़ज़लों को इसकी सीमित सीमा से बाहर निकालकर जीवन–जगत के खुले आसमान में उन्मुक्त कर दिया। दुष्यंत की इस परंपरा के बाद ग़ज़ल का स्वरूप निरंतर परिवर्तित होने लगा, जिसमें देश–काल से जुड़े तमाम पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक मुद्दों से जुड़े अनेक विसंगतियों, विडंबनाओं और विद्रूपताओं को अत्यंत व्यापक स्पेस मिला। दुष्यंत कुमार की इसी परंपरा को अनवरत अग्रसरित करते हुए ग़ज़लकार वशिष्ठ अनूप इक्कीसवीं सदी के महान ग़ज़लकारों में अपना अहम स्थान रखते हैं। दुष्यंत कुमार की परंपरा को पल्लवित, पुष्पित और विकसित करने में इनकी अक्षुण भूमिका है। वशिष्ठ अनूप सौ फ़ीसदी धरातल से जुड़े हुए रचनाकार हैं। इनके पास अपनी सजग, स्वतंत्र, और गंभीर वैचारिक दृष्टि है। इनके ग़ज़लों में देश–राष्ट्र, समाज के प्रति गहरी चिंता, गहरी वैचारिक प्रतिबद्धता है, जिसको वे स्वयं अपने एक शेर के माध्यम से कहते हैं–

ये कब अंतःपुरों के रूप का गुणगान करती है,
हमारी लेखनी तो सत्य का संधान करती है।

ग़ज़लकार वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें वाकई सत्य का संधान करती हैं। इसे यूँ भी कहा जा सकता है कि वशिष्ठ अनूप की गज़लें जीवन सत्य को रूपायित करती हैं। जो सत्य है, वही शिव है, वही सुंदर है इसीलिए जीवन सत्य को परिभाषित करती अनूप की ग़ज़लों का सौंदर्य–बोध ग़ज़ल के परंपरागत सौंदर्य–बोध से काफी पृथक है। इनकी ग़ज़लों में जहाँ एक तरफ नई नवेली दुल्हन के रूप सौंदर्य की सुगंध मिलती है जैसे कि–

कंगन–चूड़ी की खन–खन और चंदन की खुशबू आती है
झाँक रही खिड़की से अक्सर दुल्हन की खुशबू आती है।
कुछ घूँघट में, खुली हुई कुछ, सुंदरता का क्या कहना
भरी–पुरी उसकी काया से उबटन की खुशबू आती है।

दुल्हन की सुंदरता की प्रशंसा इनकी अनेक रचनाओं में मिलती है। इसके साथ ही इनके हृदय में समाज के हाशिए पर खड़े समाज, बूढ़े माता–पिता की असहाय अवस्था, दारूण–दीनता, भुखमरी की भयावहता, राज़दार राजनीति के शिकार बने आम आदमी की आर्थिक स्थिति के साथ–साथ समाज के अंतिम छोर पर छोड़ दिए गए सर्वहारा जनमानस के प्रति व्यापक विकलता है, छटपटाहट है जो ग़ज़लकार वशिष्ठ अनूप को झकझोर कर रख देती है।

वे सामाजिक सरोकार रखनेवाले एक प्रतिबद्ध रचनाकार हैं, इसलिए जब वे अपने समाज में आए दिन नन्हीं बेटियों के साथ दुष्कर्म होता हुआ देखते हैं तो उनकी अंतरात्मा चित्कार उठती है और लेखनी स्वतः चल पड़ती है। एक बानगी –

डरी है बेटियाँ हर पल, गली–घर–राजधानी में
कोई शैतान आ रहा है परियों की कहानी में।

हम सभी इस तथ्य से भली–भांति वाकिफ हैं कि जिस देश में लैंगिक समानता के लिए सरकारों द्वारा अनेक प्रयास किए जा रहे हैं वहीं प्रति मिनट बलात्कार की आपराधिक घटनाएँ अपनी कालिमा फैलाती जा रही हैं। निर्भया कांड की डरावनी तस्वीर ने ग़ज़लकार के साथ–साथ प्रत्येक जनमानस को कुरेद कर रख दिया था।

इस दौरान अनूप जी यह अहसास कर रहे थे कि स्त्री का अपमान करने वाले दुर्योधन और रावण भी यदि आज जीवित होते तो दुख की दरिया में डूब गए होते। अपनी अनुभूतियों को वे कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं–

यह दर्द की सदी है, ठहरी–सी है रवानी,
हर गाँव रो रहा है, जलती है राजधानी।
हर ओर द्रोपदी के क्रंदन भरे हुए हैं,
फिर चुप है हस्तिनापुर, फिर है वही कहानी।
इक्कीसवीं सदी के मानव के आचरण पर,
ग़मगीन है सुयोधन, रावण है पानी–पानी।
हर शहर में दुशासन तांडव मचा रहे हैं,
क्यों जागती नहीं है, इस देश की जवानी।

द्वापर युग में जब दुर्योधन और दुशासन, धृतराष्ट्र की भरी सभा में द्रोपदी का चीर–हरण कर रहे थे; उस समय द्रौपदी का आर्त्त पुकार सुनकर श्रीकृष्ण उनकी लाज बचाने के लिए नंगे पाँव दौड़े चले आए थे, लेकिन कलयुग की कहानी इस पूरे युग को कलंकित करने वाली है। समाज में स्त्रियों के बढ़ते शारीरिक–मानसिक–बौद्धिक शोषण से आहत कवि–हृदय द्रवित हो उठता है–

बहुत–सी औरतें आखेट बन जाती हैं आए दिन
बचाने लाज उनकी अब कहाँ घनश्याम आते हैं।

आज घनश्याम आएँगे भी; तो किस–किस को बचाएँगे? दो–चार–छह महीने की नवजात बच्ची को? तीन–चार–पाँच साल, दस–बारह–पंद्रह–अठारह साल तक की बेटियों से लेकर अस्सी साल की बुढियों को? और किससे बचाएँगे? पथभ्रष्ट हो चुके अपने ही पिता–भाई–चाचा–मामा–फूफा–देवर–जेठ से? जहाँ एक ओर माता–पिता, भाई–बंधु–बांधव के संरक्षण के बावजूद बहू–बेटियों का सर्वांगीण शोषण हो रहा है। वे घरेलू हिंसा की शिकार हो रही हैं, उनकी यौन–शुचिता प्रतिक्षण खतरे में है। इस बाबत ग़ज़लकार लिखते हैं–

महल में बैठकर वह आमजन की बात करता है,
कोई आवारा मीरा के भजन की बात करता है।
तेरे मुँह से सितम के ख़ात्मे की बात यूँ लगती,
स्वयं रावण ही ज्यों लंका दहन की बात करता है।
नहीं महफ़ूज़ हैं अब बेटियाँ अपने घरों में भी,
जनकपुर में कोई सीताहरण की बात करता है।

जिस प्रकार आलीशान महलों में बैठकर आम जनता की जर्जर दशा का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता, वैसे ही कोई आवारा व्यक्ति मीरा की प्रेमानुभूतियों की पवित्रता को नहीं समझ सकता। आज जब जनकपुर में जानकी की सुरक्षा दाव पर लगी हुई है, तो ऐसे समाज से हम किस उदारता की कामना करते हैं? हमने उदारता का मुखौटा पहनने में दक्षता हासिल कर ली है। इससे जुड़ी दो पंक्तियाँ–

मुखौटे में छिपे हर रहनुमा चेहरे का ये सच है,

वो छूकर बर्फ़ तेज़ाबी जलन की बात करता है।

कथनी और करनी में अपार अंतर कायम रखने वाले इस युग में जनमानस किंकर्तव्यविमूढ़ं की स्थिति में है कि वह आखिरकार भले–बुरे में पार्थक्य करे तो किस आधार पर करे? इसकी एक झलक–

हमारे दौर में अच्छे–बुरे का फ़र्क़ है मुश्किल,
यहाँ हर बदचलन अब आचरण की बात करता है।
जो बाबा बैठता है सोने–चाँदी के सिंहासन पर,
वो इस संसार को माया–हिरन की बात करता है।

ग़ज़ल की ये पंक्तियाँ स्पष्ट दर्शाती हैं कि ऊपर से सभ्यता का आचरण करनेवाले असंख्य महापुरुषों का चरित्र बदचलनी की सारी पराकाष्ठाएँ पार कर देता है, सारी विश्वसनीयता तार–तार हो जाती है। ऐसी परिस्थितियों को देखकर कवि–हृदय की व्याकुलता ग़ज़लाकार रूप धारण करते हुए कहती है–

दरिंदों का बढ़ने लगा हौसला है
नहीं रुक रहा जुल्म का सिलसिला है।
बहू–बेटियों से जीना कर रहे जो
सरेआम फांसी ही उनकी सजा है।

उन्हें यह भी प्रतीत होता है कि औरतों पर जुल्म ढाने वाले अपने घरों में विराजमान इंसान के रूप में हैवान ही हैं, जो अपनी हैवानियत से बाज नहीं आते। इस संबंध में वे लिखते हैं–

हमेशा औरतों पर जुल्म ढाना
किसी दुश्मन की शैतानी नहीं है।

ग़ज़लकार की यह पंक्ति इस बात की पुष्टि प्रदान करती है कि स्त्रियों का, बच्चियों का शोषण किसी दुश्मन की दुश्मनी भरी शैतानी नहीं, अपितु अपनों द्वारा की जाने वाली हैवानियत भरी साजिश है। जहाँ स्त्री समाज को महज उपभोग की वस्तु समझा जाता है या फिर एक प्रोडक्ट की तरह इस्तेमाल किया जाता है या फिर उन्हें इस धरती पर आने से पहले ही कोख में मार दिया जाता है। ग़ज़लकार चिंतित स्वर में कहते हैं–

यूँ ही घटती रही बेटियाँ / रूठ जाएँगी फिर राखियाँ
किस जमाने में हम आ गए / घर में डरने लगी बच्चियाँ

वशिष्ठ अनूप की चिंताएँ लाज़मी है कि हम किस युग में आ गए हैं जहाँ बहू–बेटियों के जीवन पर ही प्रश्न चिह्न लग चुका है। इस संदर्भ में उनकी दो पंक्तियाँ–

तीज पीड़िया राखियों शहनाईयों का प्रश्न है
कत्ल होती भय में जीती बेटियों का प्रश्न है।

ग़ज़लकार अनूप देश–काल–समाज के समक्ष यह ज्वलंत प्रश्न रखते हैं कि आखिरकार हम कैसे युग में आ गए हैं जहाँ पुरुष अपनी सारी ताकत का इस्तेमाल स्त्री समाज को रौंदने के लिए करता है। अति निम्न और निम्न–मध्यम वर्गीय अत्यंत गरीबी में गुजर–बसर करने वाली निर्धन बहू–बेटियों की दशा तो और जर्जर है। इस प्रसंग को दर्शाते हुए अनूप जी लिखते हैं–

अभी ख़ंज़र निकाले जा रहे हैं।
ग़रीबों की बहू औ बेटियों को,
अभी गुंडे उठा ले जा रहे हैं।

अति निर्धनता, दीनता की चरम पराकाष्ठा पार कर अकल्पनीय, अविश्वसनीय, गरीबी में जीवन को गुजर–बसर करने वाली गरीब स्त्रियाँ एक साथ अनेक मोर्चों पर डट कर लड़ाई करती हैं। वे जहाँ एक मोर्चे पर तथाकथित सभ्य समाज से अपनी यौन–शुचिता बचाए–बनाए रखने हेतु संघर्ष करती हैं तो वहीं दूसरे मोर्चे पर सुरसा की तरह मुँह बाए विकराल गरीबी–भुखमरी से जूझती रहती हैं। उनकी इस दयनीय दशा को दर्शाते हुए ग़ज़लकार कहते हैं–

भूख डाइन–सी झपट्टे मारती गुर्रा रही है,
एक औरत बुझ रही–सी आग को सुलगा रही है।
सिर पे बोझा, पीठ पर बच्चे को बाँधे जा रही है,
ज़िन्दगी की जंग में वह हर घड़ी टकरा रही है।
भूख, रोटी, भात, बच्चे, मर्द है दुनिया यही,
है कोई मंज़िल नहीं, पर जा रही है, आ रही है।
भूख से बेहाल बच्चा लोट जाता है ज़मीं पर,
वह उसे चंदा दिखाकर देर से बहला रही है।

ग़ज़ल की अंतिम दो पंक्तियाँ दो जून की रोटी के लिए संघर्षरत अनगिनत स्त्रियों के जीवन की वेदना है कि उनकी रसोई में जो कुछ भी पकता है वे अपने पति और बच्चों को खिला देती हैं। वे खुद भूख को खाकर जीने का अथक प्रयास करती हैं, तो वहीं वे खाए–पिए–अघाये वर्ग की भूख का शिकार बनती रहती हैं।

वास्तव में वे समझ ही नहीं पातीं कि भूख उनको खा रही है या वे भूख को खा रही हैं। शाम को फ़ुर्सत के बाद वे खुद को ही आटे की तरह गुँथती रहती हैं।

इतनी विषम परिस्थिति में जीवन जीने को अभिशप्त और तमाम तरह के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक शोषण का शिकार बन चुकी स्त्रियों में ग़ज़लकार बगावत के स्वर फूँकना चाहते हुए कहते हैं–

बगावत के बिगुल फूँकेगी इक दिन देख लेना तुम,
जो पीढ़ी हर घड़ी अपमान का विषपान करती है।

ग़ज़लकार अनूप के अनुसार रूढ़िगत, सड़ी–गली, मान्यताओं को खंडित करने हेतु पूरे स्त्री समाज को एकजुट होकर अपने अधिकारों की खातिर प्रतिरोध का स्वर मुखरित करना ही होगा, तभी स्त्रियों की दशा और दिशा में उर्ध्वगामी परिवर्तन संभव है। इस संदर्भ में उनका एक प्रसिद्ध शेर है–

रवायत जब कभी ज़ंजीर बनकर है जकड़ लेती,
कोई मीरा बगावत का तभी ऐलान करती है।

ये पंक्तियाँ ग़ज़लकार की वैचारिक दृष्टि को प्रत्यक्ष रूप से दर्शाती हुई बयां करती हैं कि वे रूढ़िगत, जर्जर–विगलित हो चुके रवायत की ज़ंज़ीरों की जकड़न को तोड़ने के हिमायती हैं। वे मीरा के बगावत के पैरोकार हैं क्योंकि इतिहास गवाह है कि बिना विद्रोह के कहीं परिवर्तन की आँधी नहीं आई है। संसार में परिवर्तन प्रकृति का नियम है। कालचक्र के सत्य को कदाचित झुठलाया नहीं जा सकता है। इस परिवर्तन के साथ–साथ स्त्री जीवन की दशा में भी आमूलचूल परिवर्तन होना ही चाहिए, इसलिए वे स्त्रियों से आग्रह करते हुए कहते हैं कि नई दुनिया के तेजी से बदलते रहस्य को स्त्रियों को समझना ही होगा। उन्हें तथाकथित सभ्य समाज द्वारा एक उत्पाद के रूप में इस्तेमाल होने से पूर्व आत्मा–विरेचन, आत्म–विश्लेषण करना ही होगा। इसकी एक बानगी–

नयी दुनिया के तेज़ी से बदलते राज़ भी सीखो,
रवायत है ज़रूरी पर नये अंदाज़ भी सीखो,
कहीं पर हाथ बाँधे सोचने से कुछ नहीं होगा;
अगर उड़ने की चाहत है तो फिर परवाज़ भी सीखो।

ग़ज़लकार अनूप यह स्वीकार करते हैं कि आज अपने क़ौम की रवायतों के साथ–साथ वैश्वीकरण और उत्तरआधुनिक जमाने के अंदाज को जानना–समझना अति आवश्यक है। नई उड़ान भरने के लिए परवाज़ के विभिन्न तौर–तरीकों को सीखना बहुत ज़रूरी है।

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। इन बदलावों के भी हमेशा से दो पक्ष रहे हैं– सकारात्मक और नकारात्मक पक्ष। स्त्री जीवन में आए परिवर्तन के इन दोनों पहलुओं को उनकी ग़ज़लों में देखा जा सकता है। आज स्त्रियों के प्रति सकारात्मक सोच ने जहाँ एक तरफ उनके जीवन को एक नया मुकाम दिया है, संघर्ष से ही सही, परंतु स्त्रियाँ समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बनाने लगी हैं, तो वहीं परिवर्तन की उत्तरआधुनिक विचारधारा ने हमारी भारतीय परंपरा की रवायतों में सेंध मारने का काम किया है।

भूमंडलीकरण, औद्योगिकरण, बाजारीकरण और उपभोक्तावाद के दौर में जहाँ पर 'एक पर तीन का फ्री ऑफर', 'बाय वन गेट वन फ्री' जैसे लोक–लुभावने बड़े–बड़े इश्तेहार निकाले जाते हैं, जिसमें स्त्रियों को अत्यंत बोल्ड या उत्तेजक अंदाज में एक प्रोडक्ट की तरह इस्तेमाल किया जाता है। नतीजन सीने–तारिकाओं से लेकर नयी–नयी मॉडल का यह रूप, बाजार की सबसे बड़ी माँग बन चुका है। ग्लैमर की इस दुनिया से सामान्य घरों की बहू–बेटियाँ भी प्रभावित होती हैं। परिणामस्वरूप यह बाजार एक पूरी संस्कृति को ध्वस्त करने पर तुला है, जिसे देखकर भारतीय संस्कृति का पैरोकार ग़ज़लकार कह उठता है–

कहाँ दुपट्टा, कैसी लज्जा, कैसा शील कहाँ संकोच
सरेआम अब जिस्म–प्रदर्शन औ अंगड़ाई मुफ़्त हुई।

सादगी पसंद ग़ज़लकार समाज में निर्वस्त्र या कम से कम कपड़ों में स्त्रियों को देखकर एक दार्शनिक के अंदाज में कहता है–

नई तहज़ीब जब निर्वस्त्र होती जा रही दिन–दिन,
सलीकेदार औरत गाँव वाली याद आती है।

नये जमाने की नयी तहजीब सीखते–सीखते नयी पीढ़ी की कुछ राधाओं ने प्रेम की नयी परिभाषा गढ़ दी है, उनके मन में अपने प्रिय के प्रति प्रेम की भावना नील बटे सन्नाटा है एवं प्रेम का उद्देश्य सिर्फ़ अपनी असीमित आवश्यकताओं की आपूर्ति है, कभी महँगे–महँगे उपहार, तो कभी महँगी......। इस बाबत ग़ज़लकार की ये पंक्तियाँ उद्धृत हैं–

हमारे युग की राधा को नहीं भाते हैं मनमोहन
उसे अब चमचमाती कार और बंगले लुभाते हैं।

चमचमाती कारें और आलीशान बंगले की लुभावनी दुनिया में खोयी नयी मम्मियाँ एक नए तेवर के साथ अपने बच्चों की परवरिश करती हैं। वे अपने शारीरिक गठन एवं सौष्ठव को बनाए रखने के लिए अपने नवजात शिशुओं को अपने अमृत तुल्य दूध से भी वंचित रखती हैं, जिसका ख़ामियाजा वह नौनिहाल उठाता है। ऐसी माँओं की रुग्ण मानसिकता पर कटाक्ष करते हुए ग़ज़लकार कहते हैं–

किस तरह बच्चे को आँचल में छिपा सकती हैं ये,
जिन्स वाली मम्मियों के पास आँचल है कहाँ!

इस शेर को स्त्रियों के जींस पहनने और आंचल नहीं लेने या उनके पहनावे से जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए, क्योंकि वर्तमान दौर में यह प्रत्येक महिला की अपनी अभिरुचि है कि वह क्या पहने या क्या न पहने। यहाँ ग़ज़लकार का उद्देश्य स्त्रियों के पहनावे पर टिप्पणी करना कदापि नहीं है।

ग़ज़लकार वशिष्ठ अनूप अपनी ग़ज़लों के माध्यम से जहाँ एक तरफ बच्चों की ठीक से देखभाल नहीं करने वाली माँओं पर पैनी कटाक्ष करते हैं तो वहीं वे अपनी माँ से रूखा और अशिष्ट व्यवहार करने वाली नालायक संतानों को उनकी माँ की दशा से अवगत कराते हुए लिखते हैं–

हज़ारों दुख सहे हैं उम्र भर औलाद की ख़ातिर,
बुढ़ापे में वो बच्चों की रुखाई सह नहीं पाती।

उनकी समझ में यह नहीं आता कि क्यों एक माँ–बाप के घर में उनकी अनेक औलादें उनके संग साधिकार रह सकती हैं पर उसी अधिकार के साथ एक माँ उनके घर पर नहीं रह पाती? इस भावबोध से संपृक्त यह पंक्ति देखिए–

रहा करते थे बच्चे जिस तरह माँ–बाप के घर में,
उसी अधिकार से माँ उनके घर क्यों रह नहीं पाती?

यह प्रश्न अनायास ही कहीं न कहीं हम सभी के प्रश्नों को उठाता है और मन मंथन करने लगता है। इन बुजुर्ग माताओं की स्थिति बिल्कुल अनूप जी की इन ग़ज़लों–सी हो जाती है–

नदी पर्वत–पिता के घर दुबारा जा नहीं सकती
यही सब सोचकर रोते हुए प्रस्थान करती है।

उनकी यह पंक्ति स्त्री जीवन की समूची दास्तां बयां करती हैं।

अंततोगत्वा, वशिष्ठ अनूप की स्त्री–विषयक अनेक ग़ज़लों की पड़ताल करने के पश्चात निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि उनकी ग़ज़लों में देश की नन्हीं बेटियों से लेकर वयो–वृद्ध स्त्रियों तक के जीवन संघर्ष को बहुत बेबाकी, मार्मिकता और संवेदनशीलता के साथ उकेरा गया है। घर में बेटियों का होना उस घर के लिए क्या और कितना मायने रखता है, इसे दर्शाती हैं उनकी ये पंक्तियाँ–

किसी पावन किरण से घर का आँगन जगमगाता है,
दिलों में नेह का, ममता का दीपक टिमटिमाता है,
बिना बतलाये ये सबकी ज़रूरत जान लेती हैं;
घरों में बेटियाँ होती हैं तो घर गुनगुनाता है।

इनकी एक ग़ज़ल में शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, यौवनावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक की स्त्री के विविध रूपों को माँ के रूप में समाहित करके दर्शाया गया है–

सदा आशीष देती है, हमेशा प्यार देती है
कभी ममता लुटाती माँ कभी मनुहार देती है।
बहन बेटी बुआ दादी बहुत से रूप है माँ के
बिना माँगे ही बच्चों पर वो सब कुछ वार देती है।
हमारी माँ ही करती है हमारे भाग्य की रचना
कोई कॉपी–कलम देती, कोई हथियार देती है।
अगर खुश है तो चूमेगी दुलारेगी सँवारेगी
अगर नाराज़ हो जाए तो आँसू ढार देती है।
गरल सारा स्वयं पीकर हमेशा मुस्कुराती है
वो माँ ही है जो बच्चों को सुखद संसार देती है।

ग़ज़लकार वशिष्ठ अनूप की ये पंक्तियाँ माँ के प्रति उनके गहरे आस्था–विश्वास और सरोकार को दर्शाती हुई उनके प्रति गहरी संपृक्ति की साक्षी हैं। जीवन के सभी संबंध माँ के संबंध से ही गहरे होते हैं, बनते और बिगड़ते हैं, क्योंकि संतान के चरित्र निर्माण में माँ की ही अहम भूमिका होती है, वह अपनी औलाद को हर तरह से सशक्त बनाना चाहती है चाहे वे जड़ें संबंधों की गहराई की हों, चाहे अक्षर ज्ञान हो, वर्तनी हो, शिक्षा हो, अपनी सभ्यता संस्कृति और परंपरा हो। माँ ही वह देवी स्वरूपा है जो अपनी दस भुजाओं से एक माँ की भूमिका के साथ–साथ पत्नी, बेटी, बहन, बुआ, मौसी, मामी, चाची, नानी, दादी आदि के साथ–साथ समस्त सामाजिक संबंधों को निभाती है और स्वयं गरल पान करके अपनी औलादों को सुखद संसार प्रदान करती है। माँ के संबंध में इस तरह की ग़ज़लें वही लिख सकता है, जो अपनी माँ से अगाध प्रेम करता हो, उनके प्रति सच्ची निष्ठा रखता हो। वशिष्ठ अनूप इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। इनकी अनेक ग़ज़लें संसार की समस्त माँओं को समर्पित हैं।

इसके साथ ही वे अपने परिवार में डर के साए में जिंदगी जीने को अभिशप्त बेटियों की स्थिति से एक तरफ समाज को सचेत करते हैं, तो वहीं बेटियों को अपनी आत्म–रक्षा के लिए, अपने आत्म–सम्मान के लिए खुलकर विरोध करने की दरख्वास्त करते हैं। वे स्त्रियों की उच्छृंखलता की नोटिस लेते हैं, तो परिवार–समाज द्वारा सदियों से दमित, शोषित, हाशिए पर खड़ी कर दी जाने वाली स्त्री जाति को अपने स्वत्व, अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा करने हेतु एक नयी ऊर्जा का संचार करते हैं, उत्प्रेरित करते हैं। इनकी ग़ज़लों में स्त्रियों के कोमल–कमनीय रूप–सौंदर्य की कांति, उनकी प्रेमानुभूतियाँ परिलक्षित हैं तो वहीं इक्कीसवीं शताब्दी में स्त्री–मुक्ति, महिला सशक्तिकरण, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ का स्वर भी अत्यंत सहजता से मुखरित हुआ है।

इस आलेख में वशिष्ठ अनूप के तीन ग़ज़ल संग्रह की लगभग ५० ग़ज़लों को सन्निहित किया गया है, जिसके आधार पर स्त्री जाति के प्रति उनकी वैचारिक दृष्टि को समझा जा सकता है। इन ग़ज़लों की भाषा–शैली अत्यंत सरल, सहज, प्रभावशाली और हृदय–ग्राही है। भाषा–शैली में पूर्वोत्तर उत्तर प्रदेश की स्पष्ट झलक है। इनकी रचनाओं में उर्दू ग़ज़ल शैली के साथ–साथ छंदों की लयात्मक उपस्थिति इनकी ग़ज़लों की संरचना को समझने के लिए एक नयी दृष्टि प्रदान करती हैं। विषयों की गाम्भीर्यता और उनके कहन की अनूठी शैली ग़ज़लकार की गहन व सघन चिंतन–मननशीलता को दर्शाती हैं। अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के संदर्भ में वे एक स्थान पर लिखते हैं–

अगर कहना बहुत हो तो बहुत–सा छूट जाता है,
मैं थोड़ा बोलता हूँ और ज़्यादा छूट जाता है।

इन तमाम तथ्यों के आधार पर यह कहने में कोई गुरेज़ नहीं कि प्रतिस्पर्धा के इस दौर में वशिष्ठ अनूप ने अपनी रचनाधर्मिता और अदम्य सृजनशीलता के आधार पर ही देश–विदेश के प्रतिष्ठित ग़ज़लकारों के बीच अपनी एक अलग एवं विशिष्ट पहचान बनाई है और आज वे हिंदी ग़ज़ल–संसार के सशक्त हस्ताक्षर हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ–

1. बारूद के बिस्तर पर (ग़ज़ल संग्रह) – वशिष्ठ अनूप– विजया बुक्स प्रकाशन, दिल्ली।
2. घर पर गिद्ध मँडराने लगे (ग़ज़ल संग्रह) – वशिष्ठ अनूप – साहित्य भंडार प्रकाशक।
3. तेरी आँखें बहुत बोलती हैं (ग़ज़ल संग्रह) – वशिष्ठ अनूप

निष्कलुष प्यार की भीनी-भीनी महक : वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें

डॉ. कुमारी अश्विनी

वशिष्ठ अनूप का जन्म 1 जनवरी सन् 1962 ई. को गोरखपुर जिले के बड़हलगंज ब्लाक के सहड़ौली ग्राम में हुआ था। विभिन्न महाविद्यालयों में अध्यापन कार्य करते हुए वर्तमान में आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्ष के पद पर आसीन हैं। गीत और ग़ज़ल के ख्यातिलब्ध हस्ताक्षर होने के साथ–साथ आप एक समर्थ आलोचक और गुणसंपन्न अध्यापक भी हैं। आपके अबतक 9 ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं– 1. बन्जारे नयन (2000) 2. रोशनी खतरे में है (2006) 3. रौशनी की कोंपले (2010) 4. मशालें फिर जलाने का समय है (2013) 5. तेरी आँखे बहुत बोलती हैं (2014) 6. घरों पर गिद्ध मड़राने लगे हैं (2019) 7. गर्म रोटी के ऊपर नमक तेल था (2021) 8. बारूद के बिस्तर पर (2023), 9. छंद तेरी हँसी का (2023)।

वशिष्ठ अनूप के रचना–कर्म में उनके व्यक्तित्व और विचारधारा की बड़ी साफ झलक मिलती है। आपके लिए ग़ज़ले सिर्फ मनोरंजन का साधन न होकर अपनी अंतःश्चेतना को प्रकट करने का माध्यम है। उन्होंने स्पष्ट ऐलान किया है–

"तुलसी के, जायसी के, रसखान के वारिस हैं,
कविता में हम कबीर के ऐलान के वारिस हैं।"
x x x x x
"हमेशा रँग बदलने की कलाकारी नहीं आती,
बदलते दौर की मुझको अदाकारी नहीं आती।
कोई अंगार दिल को दग्ध करता है बहुत दिन तक,
न हो यह आग तो शब्दों में चिंगारी नहीं आती।"

साहित्य को समाज का दर्पण या प्रतिबिम्ब कहा जाता है किंतु उसका सफल और प्रभावी प्रतिबिम्बन एक सरल प्रक्रिया नहीं है। किसी भी विचार अथवा अनूभूति को सरल, सरस एवं प्रभावपूर्ण ढंग से पहले काग़ज और फिर जनमानस के हृदय पर अंकित करना एक कठिन साधना–कर्म ही है। वशिष्ठ अनूप लिखते हैं–

"अक्षर–अक्षर, तिनका–तिनका चुनना पड़ता है,
भीतर–भीतर कितना कहना–सुनना पड़ता है।
चिड़िया जैसे नीड़ बनाती है तन्मय होकर,
कविता को भी बहुत डूबकर बुनना पड़ता है।"

वशिष्ठ अनूप अपनी जड़–जमीन और परंपरा से जुड़े हुए व्यक्ति हैं। इसीलिए उन्हें अपने वर्त्तमान समाज से लेकर पूर्व की सामाजिक स्थिति एवं रचना–परंपरा का पूरा ज्ञान है। ग़ज़ल विधा का आरंभ हुस्न और इश्क के दरिया से ही हुआ है इसीलिए उसका परंपरागत स्वरूप कल्पना और रोमानियत के भाव से लबरेज है। वशिष्ठ अनूप को ग़ज़ल विधा की इस परंपरागत लीक पर चलने से सख्त ऐतराज है। वे उसे वर्त्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य से जोड़कर आगे बढ़ाना चाहते हैं जिससे उसकी समसामयिकता और जीवंतता बनी रहे। वे इसके वर्त्तमान स्वरूप का ढाँचा भी प्रस्तुत करते हैं और सिर्फ मनोरंजन की भावना को दृष्टिपथ रखते हुए रचना करने वाले कलमकारों को एक सीख भी प्रदान करते हैं–

"राजमहलों में पाला गया था इसे, आज है झोपड़ी की दुलारी ग़ज़ल,
मनचलों ने पिन्हाये थे घुँघरू इसे, आज है माँ–बहन की–सी प्यारी ग़ज़ल।
तीर चलते थे कल मदभरे नैन से, जाम होठों से आकर छलकते रहे,
जुल्फ के ख़म से वाबस्ता थी कल मगर, जुल्म के रूबरू है हमारी ग़ज़ल।
कल थिरकती थी तबले की थापों पे यह, महफिलों में लगाती थी ठुमके सदा,
हाथ मेंहदी रचाये खड़ी थी मगर, आज है मुक्ति की इक कटारी ग़ज़ल।
निष्कलुष प्यार की भीनी–भीनी महक, ताजगी जैसे बच्चों की निश्छल हँसी,
इसमें शामिल है माटी का कुछ सोंधापन, खूँ–पसीने से हमने सँवारी ग़ज़ल।

वशिष्ठ अनूप अपने जीवन के आरंभिक काल से ही कई सामाजिक–साहित्यिक संस्थाओं से जुड़े रहें हैं जिनका उद्देश्य नए रचनाकारों को प्रोत्साहित करना एवं अपने अग्निधर्मा विचारों और लेखनी से सामाजिक विद्रूपताओं, व्याभिचारों, अन्याय, शोषण एवं दमन के खिलाफ आवाज उठाना था। इन सबके प्रभाव से स्वयं आपकी लेखनी भी धारदार बनी और एक युवा एवं क्रान्तिकारी मन की छाप आपकी ग़ज़लों में स्पष्ट दिखाई देती है–

"तूने लिक्खे मीन खंजन कमल से प्यारे नयन,
हमने देखे हैं हजारों दर्द के मारे नयन।"
x x x x x
"हम तेरे मुखौटों को तार–तार करेंगे,
और ये गुनाह यूँ ही बार–बार करेंगे।
साहित्य फ़कत ढाल नहीं आक्रमण भी है,
यह आक्रमण हम तुम पे लगातार करेंगे।"

कोई भी सजग और चेतना सम्पन्न साहित्यकार अपने समय ओर समाज का पारखी होता है। स्वाधीनता के पश्चात् जिस संपन्नता और समृद्धि की कामना आमजनों के हृदय में पल रही थी, वह समय के साथ धीरे–धीरे धूमिल होती चली गई। स्वतंत्रता के बाद भी लोगों की वर्त्तमान स्थिति कुछ वैसी ही बनी रही और कहीं–कहीं तो स्थितियाँ उससे भी ज्यादा बदतर होती चली गईं। एक आम आदमी की इसी बेचारगी और बेबसी को देखकर आपका कवि हृदय भी तड़प उठता है–

"लहू जब बेचता है तब कहीं वह घर चलाता है,
दुखी हैं आज वे करघे जिन्हें बुनकर चलाता है।
हुई हर चीज मँहगी तब कहा होरी से धनिया ने,
पता करते कि कैसे अपना घर 'गोबर' चलाता है।"
x x x x x
"कभी यह चार पैसे की कमाई मार देती है,
कभी स्कूल की मँहगी पढ़ाई मार देती है।
करोड़ो नौजवाँ हैं और नौकरियाँ हैं थोड़ी–सी,
फिर उसके बाद होती जगहँसाई मार देती है।
किसी भी मोरचे पर हममें लड़ने की है कूबत पर,
हमें दिन–रात रोटी की लड़ाई मार देती है।"

वशिष्ठ अनूप अपनी विधा के परंपरागत स्वरूप से मोहित होकर सिर्फ सौंदर्य की कल्पना में ही डूबे नहीं रहे बल्कि उन्होंने अपनी खुली आँखों से वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था पर गंभीरता से दृष्टिपात किया है। आपकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आपने इस दुर्व्यवस्था का चित्रण मात्र करके अपने दायित्वों की इतिश्री नहीं मान ली, बल्कि आप स्वयं अपनी ग़ज़लों के माध्यम से इस व्यवस्था से जूझते और लड़ते हुए भी नजर आते हैं। अपनी रचना में जब आप व्यंग्यधर्मिता का पुट घोल देते हैं तो आपके शेर इस व्यवस्था के गाल पर एक जोरदार तमाचे की तरह पड़ते हैं। ऐसे तमाचें जो न केवल इस भ्रष्ट और जर्जर व्यवस्था के गाल पर एक गहरी छाप छोड़ते हैं बल्कि इसकी गूंज आम जनमानस के कान और हृदय में बड़ी लंबी और गहरी सुनाई देती है। यथा–

"जो मुज़रिम हैं वही सब बन के पहरेदार बैठे हैं,
वहाँ संसद में कितने देश के गद्दार बैठे हैं।
किसी अगजर–से ये हर ओर फेंटा मार बैठे हैं,
समूचे देश की छाती पे कुछ परिवार बैठे हैं।
इधर सड़कों पे चोरों, डाकुओं, गुण्डों का ख़तरा है,
उधर थानों में इन सबके बड़े सरदार बैठे हैं।"
x x x x x
"पास में थाने के हत्या हो गई बाज़ार में,
फिर कोई मुसहर फँसाया जाएगा बेकार में।
कीजिएगा अब शिकायत किसकी किससे सोचिए,
आज सारा तंत्र ही डूबा है भ्रष्टाचार में।"

प्रेम मनुष्य जीवन का एक शाश्वत तत्व है। कोई भी मनुष्य इससे अछूता नहीं रह सकता। जीवन के तमाम झंझावातों से लड़ते हुए भी कहीं–न–कहीं यह प्रेम तत्व हृदय के कोने में चुपके से अपना स्थान बना ही लेता है। वशिष्ठ अनूप भी इस प्रेम तत्व के आवरण से बाहर नहीं है। उन्होंने प्रेम और सौंदर्य के इस पैरहन को पहना है और खूब पहना है। अपनी वैचारिक ग़ज़लों से जहाँ आपने बौद्धिक समाज में अपना स्थान बनाया वहीं आपकी श्रृंगारिक रचनाएँ आपको युवा वर्ग के हृदय के शीर्ष सिंहासन पर विराजमान करती हैं। विशेषकर अपने इन्हीं सौंदर्य वर्णनों के बल पर विश्वविद्यालय के छात्रों की बीच आपकी लोकप्रियता देखते ही बनती है। ये केवल सुनी–सुनाई बातें नहीं हैं, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आपके निर्देशन में शोध–कार्य करने के दौरान मैं स्वयं इन पलों की या कहिए इस युग की साक्षी रही हूँ। आपके सौंदर्य वर्णन की कुछ झलकियाँ प्रस्तुत हैं–

"कभी सीता सी लगती हो कभी राधा सी लगती हो,
मुझे सौन्दर्य की तुम पूर्ण परिभाषा सी लगती हो।
मैं जिसको सोचता हूँ, चाहता हूँ, प्यार करता हूँ,
तुम मेरे मन की उस साकार अभिलाषा सी लगती हो।
जिसे महसूस बहुतों ने किया पर कह नहीं पाये,
मुझे उस प्रेम की तुम बोलती भाषा सी लगती हो।"
x x x x x
"हँसी फूल–जैसी, बदन मरमरी है,
किसी जादूगर की तू जादूगरी है।
है लगता कभी सिन्धु–मंथन से निकली,
है लगता कभी स्वर्ग की तू परी है।"

'आँखे' आपके सौंदर्य–वर्णन का सबसे प्रिय उपादान है। इन्हीं आँखों का वर्णन करते–करते आप कब पाठकों के हृदय में उतर जाते हैं, उन्हें पता ही नहीं चलता। यथा–

"होठ तेरे भले बन्द हों पर, मन का हर भेद यह खोलती हैं,
किस मदरसे में इनको पढ़ाया, तेरी आँखें बहुत बोलती हैं।"
x x x x x
कमल के फूल–सी मासूम–सी प्यारी आँखें,
मेरी आँखों में बस गई हैं तुम्हारी आँखें।
x x x x x
"तुम्हें जो देखूँ तो दिल की धड़कन से एक मीठी सी चाह बोले,
कहाँ से सीखा हुनर ये तूने ज़बान चुप और निगाह बोले।"

ग़ज़ल विधा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि एक ही ग़ज़ल में अलग–अलग शेरों के माध्यम से कई विषयों पर बात की जा सकती है। प्रायः हमें ऐसी ही ग़ज़लें देखने को मिलती हैं। लेकिन जब किसी एक ही विषय को केन्द्रित करके पूरी ग़ज़ल लिखी जाए तो उसे 'मुसलसल ग़ज़ल' कहते हैं। इसे लिखना अपेक्षाकृत कठिन माना जाता है और ऐसी ग़ज़लों के उदाहरण भी अपेक्षाकृत कम ही मिलते हैं। लेकिन वशिष्ठ अनूप जी की लेखनी मुसलसल ग़ज़लों की रचना में भी अपनी पूरी सार्थकता के साथ सफल रही है। उनकी मुसलसल ग़ज़लों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

"मेरी हर ग़ज़ल हर कहानी में तुम हो,
मेरी ज़िन्दगी! ज़िन्दगानी में तुम हो।
सुबह झील में तुमको देखा कमल–सा,
निशा में लगा रातरानी में तुम हो।
x x x x x
"प्यार मुझसे नहीं है अगर आपको, बात करती हैं क्यों प्रेमिका की तरह,
मेरे ख़्वाबों में अक्सर उतरतीं हैं क्यों गुनगुनाती हुई अप्सरा की तरह।
मेरा हर शब्द लगता है जादू–भरा, मेरी हर बात लगती भली आपको,
मैं नहीं हूँ कन्हैया अगर आपका, मुझसे मिलती हैं क्यों राधिका की तरह।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों के इन्द्रधनुष में जीवन के समस्त रंग–रूपों की छटा विद्यमान है। आपके रचना–कर्म और साहित्यिक विधान को समझने के लिए प्रखर आलोचकों के आलेख और उनके ग्रंथों को पढ़ने की जरूरत नहीं है, स्वयं आपको पढ़ने की जरूरत है। आपकी ग़ज़लें किसी आकाश–धर्मा की भांति उपदेश और संदेश नहीं देती बल्कि वह स्वयं अपने पाठक के सिरहाने में

बैठकर एक हाथ से उसके हाथ को पकड़कर और दूसरा हाथ उसके कंधों पर रखकर बातें करती हैं। ऐसी बातें जो एक माता–पिता अपनी संतान से करते हैं, जो एक गुरु अपने शिष्य से करता है और जो कोई प्रेमी अपने प्रियतमा से कर सकता है। आपकी ग़ज़लें हमें शिक्षा भी देती हैं, संस्कार भी देती हैं और अंततया प्यार भी देती हैं। विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों से लेकर, अध्यापन की कक्षाओं और कवि–सम्मेलनों के मंचों तक आपकी यही कला आपको विशिष्ट भी बनाती है और अनूप भी।

संदर्भ

1. वशिष्ठ अनूप, तेरी आँखें बहुत बोलती हैं, विजया बुक्स, दिल्ली, 2014, पृ. 23.।
2. वशिष्ठ अनूप, गर्म रोटी के ऊपर नमक–तेल था, अनन्य प्रकाशन वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2023, पृ. 9।
3. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मड़राने लगे हैं, साहित्य भण्डार, प्रयागराज, द्वितीय संस्करण, 2022, पृ. 13।
4. वशिष्ठ अनूप, बन्जारे नयन, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ. 1।
5. वशिष्ठ अनूप, बन्जारे नयन, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ. 2।
6. वशिष्ठ अनूप, बन्जारे नयन, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ. 37।
7. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, राजसूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 25।
8. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, राजसूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 19।
9. वशिष्ठ अनूप, रौशनी की कोपलें, उद्भावना प्रकाशन, गाजियाबाद, 2010, पृ. 28।
10. वशिष्ठ अनूप, रौशनी की कोपलें, उद्भावना प्रकाशन, गाजियाबाद, 2010, पृ. 68।
11. वशिष्ठ अनूप, बन्जारे नयन, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ. 26।
12. वशिष्ठ अनूप, गर्म रोटी के ऊपर नमक–तेल था, अनन्य प्रकाशन वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2023, पृ. 16।
13. वशिष्ठ अनूप, तेरी आँखें बहुत बोलती हैं, विजया बुक्स, दिल्ली, 2014, पृ. 28।
14. वशिष्ठ अनूप, बन्जारे नयन, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ. 8।
15. वशिष्ठ अनूप, रौशनी की कोपलें, उद्भावना प्रकाशन, गाजियाबाद, 2010, पृ. 31।
16. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मड़राने लगे हैं, साहित्य भण्डार, प्रयागराज, द्वितीय संस्करण, 2022, पृ. 19।
17. वशिष्ठ अनूप, गर्म रोटी के ऊपर नमक–तेल था, अनन्य प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2023, पृ. 92.

हिन्दी ग़ज़ल का स्वरूप और महत्वपूर्ण हस्ताक्षर

प्रो. रामचन्द्र तिवारी

प्रो० वशिष्ठ अनूप हिन्दी–साहित्य के गंभीर अध्येता हैं। उन्होंने 'हिन्दी' में 'ग़जल' विधा के उद्‌भव और विकास को बड़ी ईमानदारी से रेखांकित किया है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने आरंभ के लगभग १७ पृष्ठों में 'ग़जल' के मूल स्रोतों पर अच्छा प्रकाश डाला है, उसके बाद के १७७ पृष्ठों में आपने हिन्दी के २५ ग़जलकारों की समीक्षा की है। श्री वशिष्ठ स्वयं एक अच्छे ग़जलकार हैं, इसलिए उन्होंने जो कुछ लिखा है, बड़े मनोयोग से लिखा है।

'ग़जल' के उद्‌भव के विष्य में आपका कहना है कि इसकी शुरूआत लगभग १४०० वर्ष पहले अरबी भाषा में हुई थी। उस समय यह कोई स्वतंत्र काव्य–विधा नहीं थी। वहाँ मुख्य रूप से कसीदे (राजाओं की प्रशंसा में लिखा जाने वाला काव्य) और 'रजज' (युद्ध क्षेत्र में अपने कुल की शूरता और श्रेष्ठता का वर्णन) लिखे जाते थे। 'कसीदे' में शायर प्रशंसात्मक शेरों के बीच कुछ ऐसे शेर भी हाल देते थे जो प्रेम, सौन्दर्य, शराब, बहार आदि से जुड़े होते थे। अरबी में इसे कसीदा की 'तस्बीब' (एक बंद) या 'नसीब' कहते हैं। आगे चलकर फारसी के शायरों ने जब अरबी को अपनाया तो तस्बीब के अशआर को अलग करके एक दूसरी विधा बनाई जिसे 'ग़जल' कहा जाने लगा।

श्री वशिष्ठ 'अनूप' की मान्यता है किग़ज़ल विधा सीधे फारसी से हिन्दी में आई। उर्दू उसका स्रोत नहीं है। संभवतः इसीलिए उन्होंने उर्दू के इतिहासकारों की बातों पर ध्यान देना उचित नहीं समझा। उनका दृढ़ विश्वास है कि हिन्दीग़ज़ल उर्दू के जन्म से पहले अमीर खुसरो (१२५३ ई०) द्वारा लिखी गई थी।

अपनी पुस्तक के दूसरे खण्ड में श्री अनूप जी ने हिन्दी के २५ (पच्चीस) ग़जलकारों की समीक्षा की है। यह समीक्षा श्री 'अनूप' के प्रौढ़ ग़जल–विवेक की परिचायिका है। उन्होंने दुष्यन्त कुमार (१६३३–१६७५ ई०) से लेकर दीक्षित दनकौरी (१६५६) तक पुराने और नये प्रौढ़ और संभावनाओं से समृद्ध सभी तरह के ग़जलकारों का आकलन किया है। उनका यह आकलन साक्षी है कि सचमुच आज हिन्दीग़ज़ल उस मुकाम पर पहुँच गयी है, जहाँ उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

यहाँ यह संभव नहीं है कि हम श्री वशिष्ठ 'अनूप' द्वारा किए गए पूरे आकलन पर विचार करें इसलिए हम कुछ थोड़े से उदाहरणों को ही प्रस्तुत करेंगे। 'दुष्यन्त' के विषय में श्री 'अनूप' कहते हैं– ''दुष्यन्त नेग़ज़ल विधा को प्रेमी–प्रेमिका के वार्तालाप और कल्पना की रंगीन दुनिया से निकाल कर उसे जनजीवन के अपेकायामी संसार के रूबरू खड़ा किया। उन्होंनेग़ज़ल की नई परिभाषा और उसे नई अर्थवत्ता प्रदान करते हुए कहा–

''मैं जिसे ओढ़ता–बिछाता हूँ/ वोग़ज़ल आपको सुनाता हूँ।''

उपर्युक्त शेरों के माध्यम से दुष्यन्त अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का उद्‌घोष करते हैं। दुष्यन्त की क्रान्तिकारी चेतना को मूर्त करने वाली ग़जल–

हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।...

को उद्धृत करने के बाद श्री अनूप कहते हैं– ''इन शेरों का इस्तेमाल आज वैसे ही होता है जैसे कबीर, तुलसी, रहीम आदि के दोहों का''– (पृ० ४०) दुष्यन्त की लेखनी को दाद देने के लिए इससे अधिक कुछ भी कहना बेमानी है।

श्री गोपाल दास 'नीरज' हिन्दी के वरिष्ठ ग़जलकार हैं। यों तो वे प्रेम और सौन्दर्य के कवि माने जाते रहे हैं किन्तु उनका काव्य एक आयामी नहीं है। उनकी बहुत सी ग़जलें ऐसी हैं जिनमें व्यवस्था के

प्रति गहरा असन्तोष व्यक्त हुआ है। 'नीरज' को यह भलीभाँति मालूम है कि पूँजीवादी और साम्राज्यवादी शक्तियाँ ही बहुसंख्यक समुदाय की बदहाली का मूल कारण है। 'अनूप' जी ने उनकी इसी भावना को व्यक्त करने वालीग़ज़ल उद्धृत की है–

कुल शहर बदहवास है इस तेज धूप में,
हर शख़्स ज़िन्दा लाश है इस तेज धूप में।
दुनिया के अम्नो–चैन के दुश्मन हैं वही तो,
सब छाँव जिनके पास है इस तेज धूप में।

उनकी आज के यथार्थ को व्यक्त करने वाली ग़ज़लों पर टिप्पणी करते हुए श्री अनूप ने कहा है– आज की राजनीति के स्वरूप और नेताओं के चरित्र की भी नीरज की ग़ज़लों में अच्छी पड़ताल हुई है। श्री वशिष्ठ ने उनकी एक ऐसीग़ज़ल पेश की है–

''न हम न तुम ही जमाना करेगा कल निर्णय
कि तुमने राहजनी की या रहबरी की है।''

जाहिर है कि श्री नीरज के संपूर्ण रचनात्मक व्यक्तित्व को दृष्टि में रखते हुए भी श्री अनूप ने उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व को ही तरजीह दी है। इससे स्वयं 'अनूप' जी की क्रांति चेतना का भी इजहार होता है।

रामदरश मिश्र (१९२४ ई०) हिन्दी के वरिष्ठ रचनाकार श्री रामदरश मिश्र के बहुआयामी व्यक्तित्व को महत्व देते हुए भी श्री अनूप ने उनकी ग़ज़लों पर विस्तार से विचार किया है। उन्होंने लक्षित किया है कि श्री मिश्र की ग़ज़लों में अभावग्रस्त आदमी की ज़िन्दगी और उस ज़िन्दगी के रग–रग में भरी पीड़ा लगातार गहराती हुई दिखाई पड़ती है। ऐसी ही एकग़ज़ल श्री अनूप ने उद्धृत की है–

''देख ली दुनिया तुम्हारी मेहरबानी देख ली
तुमने दी थी जो खुदा, वह ज़िन्दगानी देख ली।''

इस पर श्री 'अनूप' की टिप्पणी है–

''व्यवस्था के चरित्र की पड़ताल रामदरश जी की ग़ज़लों में बहुत अच्छी तरह से हुई है। वे स्पष्ट तौर पर मानते हैं और उनकी ग़ज़लें भी इस सच्चाई का बयान करती हैं कि आजादी के इतने दिनों बाद भी व्यवस्था के कर्णधारों का चरित्र नहीं बदला है।''

विस्तार भय से हम श्री 'अनूप' के संपूर्ण विवेचन को यहाँ सूत्र–बद्ध नहीं कर सकते। हम इतना ही कह सकते हैं कि श्री 'अनूप' के प्रत्येक ग़ज़लकार की मूल प्रवृत्तियों की बड़ी गहरी छान–बीन की है।

कुँहअर बेचैन की ग़ज़लों की विशेषताओं को सूत्र–बद्ध करते हुए श्री अनूप कहते हैं– ''उनकी ग़ज़लों में प्रत्येक शेर ऐसा लगता है कि जैसे वह उनके ह्रदय की गहराई से निकला कोई विशिष्ट अनुभव है, आँसुओं के नीर की प्राचीर से टकराता हुआ गंगा जल है या फिर ह्रदय की आग की उन्नत लपटों से उठा हुआ प्रकाश का स्वर्ण–कलश है।'' श्री 'अनूप' ने कुँहअर बेचैन की ग़ज़लों में समाज के शोषित और अभावग्रस्त वर्ग के दुःखों के प्रति गहरी सहानुभूति भी लक्षित की है। उनकी निम्नलिखितग़ज़ल उद्धृत–

''घुटन वाले घरों में भी जो ये ताजा हवा जाती,
तो वो खामोश लेटी बाँसुरी कुछ गुनगुना जाती।''
बुझा दीपक किसी चौखट पे बैठा सोचता है यह,
कि उसकी लौ कभी दो–चार पल तो जगमगा जाती।

बालस्वरूप राही एक संवेदनशील ग़ज़लकार हैं। वे अपने जीवन के अनुभवों को बिना किसी दुराव–छिपाव के स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। उनके सम्बन्ध में श्री अनूप का कथन है– ''वर्तमान व्यवस्था और राजनीति के शोषक और दमनकारी चरित्र तथा नेताओं के वाग्जाल, झूठे दावों, आश्वासनों, लूट, अवसर– वादिता एवं अपराधी चरित्र का भी राही की ग़ज़लों में बहुत स्पष्ट और मुखर रूप से चित्रण हुआ है।''

श्री अनूप उदाहरण पेश करते हैं–

''लूट मार में सबका यारो एक बराबर हिस्सा है,
कोई किसको चोर कहे तो किसको चौकीदार कहे,
अब किसके आगे हम अपना दुखड़ा रोयें छोड़ो यार।
एक बात को आखिर कोई बोली कितनी बार कहे।''

शलभ श्रीराम सिंह के विषय में विचार करते हुए श्री 'अनूप' ने स्पष्ट कहा है– ''उनकी ग़जलें हिन्दीग़ज़ल की तुलना में उर्दू के ज्यादा करीब हैं या कह सकते हैं कि मीर, गालिब, फैज़, फिराक और जिगर की परंपरा की है। इनमें एक तरफ उर्दू की क्लासिकलग़ज़ल का तेवर है, तो दूसरी तरफ दृष्टि के लिहाज से ये वामपंथी और प्रगतिशील हैं। यह द्वाभा ही शलभ श्रीराम सिंह को महत्व प्रदान करती है। श्री 'अनूप' के अनुसार– ''शलभ चूँकि जनवादी और क्रांतिकारी विचारधारा के रचनाकार हैं इसलिए वह इस बात में विश्वास रखते हैं कि इस समाज को नर्म बनाने वालों के विरुद्ध संघर्ष ही एक मात्र रास्ता है। इस संघर्ष की प्रवृत्ति को उनकी ग़जलों में रेखांकित करते हुए श्री अनूप कहते हैं–

''मुश्किलें थम गईं, दर्द कम हो गया,
अब जमाने का गम अपना गम हो गया।''

श्री माधव मधुकर एक मार्क्सवादी ग़जलकार थे। श्री 'अनूप' ने मुख्य रूप से उनकी तीन विशेषताओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। पहली विशेषता है द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी चेतना की अभिव्यक्ति। श्री 'अनूप' ने उदाहरण दिया है–

जो तू दिमाग का रिश्ता न दिल से जोड़ेगा।
तो अपने आपको इक दिन मिटा के छोड़ेगा
तू आसमान पर उड़ना अगर न छोड़ेगा,
तो फिर जमीन से रिश्ता कहाँ से जोड़ेगा।

दूसरी विशेषता है– आज के वृहत्तर यथार्थ का चित्रण।

श्री 'अनूप' लिखते हैं– ''मधुकर जी ने अपनी ग़जलों में अपने युग के बृहत्तर यथार्थ का चित्रण किया है।उनकी ग़जलें समूची कायनात से संवाद स्थापित करती है।'' मधुकर जी की तीसरी विशेषता है– 'प्रेम और सौन्दर्य का चित्रण' मुख्यतः युग के अन्तर्विरोधों को चित्रित करने वाले ग़जलकार मधुकरजी ने प्रेम और सौन्दर्य के भी प्रभावी चित्र प्रस्तुत किए हैं।

युग के यथार्थ से गहरा सरोकार रखने वाले मधुकर जी में अक्षय ऊर्जा है। इसलिए सब कुछ के बावजूद वे निराश नहीं हैं। श्री 'अनूप' ने पूरे विस्तार से माधव मधुकर की ग़जलों पर विचार करते हुए उनके साथ पूरा न्याय किया है।

श्री अदम गोण्डवी को 'अनूप' जी आधुनिक 'कबीर' मानते हैं। 'कबीर' का बिम्ब सामने रखकर उन्होंने गोण्डवी के कवि–व्यक्तित्व को एक साथ सम्पूर्ण रूप में हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया है। जिस प्रकार कबीर में घरफूँहक मस्ती थी, सत्य कहने का अपार साहस था, रूढ़ियों, तर्कहीन मान्यताओं और सभी तरह की विसंगतियों के विरुद्ध आवाज बुलन्द करने की दृढ़ता थी, उसी प्रकार अदम गोण्डवी में सभी प्रकार के दुष्चक्रों के विरुद्ध जनता के साथ खड़े होने का अपार साहस है। उन्होंने 'ग़जल' को ''उसके पुराने और परिचित दायरों से बाहर निकाल कर विस्तृत जन–जीवन से जोड़ा है।'' वे कहते हैं–

''भुखमरी के रुत में नग्मे लिख रहे हैं प्यार के,
आज के फनकार भी हैं दोगले किरदार के।''

श्री अदम गोण्डवी का सौन्दर्यबोध प्रेमचन्द की सौन्दर्य चेतना के बहुत निकट है। वे कहते हैं–

''न महलों की बुलन्दी से न लफ़्जों के नगीने से,
तमद्दुन में निखार आता है घीसू के पसीने से।''

श्री अदम की .ग़जलों की मूल चिन्ता को सामने लाने के लिए 'अनूप' जी कहते हैं– ''अदम की .ग़जलों की मूल चिन्ता यह है कि वह इन्सान जो सबके लिए घर बनाता है, वह स्वयं फुटपाथ पर क्यों बशर करता है? जो सबके लिए कपड़े बुनता है, उसका परिवार नंगा क्यों रहता है। जिसके खेत सोना उगलते हैं, उसके बाल–बच्चे भूखे क्यों रहते हैं?''

ऊपर के कुछ थोड़े से पृष्ठों में मैंने डॉ० वशिष्ठ अनूप द्वारा रचित प्रबन्ध– 'हिन्दीग़ज़ल का स्वरूप और महत्वपूर्ण हस्ताक्षर'– का संक्षिप्त परिचय दिया है। यहाँ यह संभव नहीं है कि हम प्रबन्ध में विवेचित सभी .ग़जलकारों की केन्द्रीय विशेषताओं को सामने लायें। हम इतना ही कहना चाहते हैं कि श्री 'अनूप' ने अपने विषय के साथ पूरा न्याय किया है। शोध और आलोचना दोनों दृष्टियों से उनकी यह कृति श्लाघ्य है। श्री 'अनूप' इसके लिए साधुवाद के पात्र हैं। वे आगे भी अपनी कृतियों से हम पाठकों को लाभान्वित करते रहेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है।

★

हिन्दी के किरीटी गीत-ग़ज़लकार और कवि आलोचक प्रो0 वशिष्ठ अनूप

डॉ. जगदम्बाप्रसाद दुबे

प्रो0 वरिष्ठ अनूप बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं। ये ख्यातिलब्ध गीतकार और हिन्दी ग़ज़ल के कुशल स्थापत्यकार एवं आम जनता की पैरोकारी करने वाले जनपक्षधर कवि–आलोचक भी हैं। इनके सृजनकर्म का आलम्बन सामान्य जन का बहुवर्णी–बहुआयामी जीवन है। समाज के अंतिम शोषित–वंचित व्यक्ति तक इनकी संवेदना न केवल पहुँचती है, अपितु उसके प्रति प्रबल–प्रतिबद्ध भी दिखायी पड़ती है। 'गीत का आकाश' शीर्षक कृति में आपने प्रमुख 27 गीतकारों और उनके गीतों में निहित मूल्यों तथा मानवीय सरोकारों की सूक्ष्म पड़ताल किया है और गीत विधा के बृहत्तर आयामों को उद्घाटित करने के गुरुतर आलोचकीय दायित्व का निर्वाह बड़ी कुशलता के साथ किया है। शुरुआती दौर में मानव की नितांत निजी एवं एकांत अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने वाले गीतों की विकास–यात्रा 'नवगीत' तक आते–आते समय और परिस्थितियों के अनुरूप–अनुकूल किस प्रकार जीवन–जगत् से जुड़े अनेकानेक संदर्भों–सरोकारों की वाचक–प्रकाशक बनकर स्थापित हो गयी, अनूप जी ने इसे रेखांकित करने का भरपूर यत्न किया है तथा लय–छंदाधारित गीत–ग़ज़ल जैसी जीवंत एवं रोचक विधाओं के प्रति वर्तमान दौर के विद्वानों–रचनाकारों के उपेक्षापूर्ण रवैये के प्रति क्षोभ भी व्यक्त किया है। उनका स्पष्ट मानना है कि, 'यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण और भटकावग्रस्त मानसिकता है कि अपने को आधुनिक सिद्ध करने और पिछलग्गूपन की प्रवृत्ति के कारण हिन्दी के अधिकांश विद्वान् गीत–ग़ज़ल आदि छांदसिक विधाओं से विमुख हैं और इन्हें दोयम दर्ज़े की रचना मानने की रुग्ण मानसिकता से ग्रस्त हैं। गीत तो अब भी लिखे, पढ़े, सुने जा रहे हैं, किन्तु उनका मूल्यांकन बहुत कम हो रहा है।' (अपनी बात–गीत का आकाश) कदाचित् यही कचोट इस आलोचना कृति के केन्द्र में है।

आज की कविता के सम्मुख व्यावसायिकता से जूझने की एक सशक्त चुनौती उपस्थित है। यह चिंता का विषय है कि आजकल कविता साधना के पथ का परित्याग करके व्यावसायिकता का आवरण ओढ़ने हेतु उत्सुक एवं अग्रसर है। यही कारण है कि कविगण कंठ के चमत्कार के बल पर नाम–यश अर्जित करने की होड़ में शामिल होने के लिए व्यग्र एवं तत्पर दिखायी पड़ते हैं। फलतः, लिखित–प्रकाशित काव्य–रचनाओं का स्तर घट रहा है और उसके पाठकों–भावकों की संख्या में निरंतर गिरावट आ रही है। लय और छंद के महत्त्व, प्रभाव और उपयोगिता को समझने वाले साधक रचनाकारों की कमी होती जा रही है। जो गिने–चुने छंदसाधक रचनाकार हैं वे भी घुटन और उपेक्षा का अनुभव कर रहे हैं। उनकी यह चिंता और घुटन स्वाभाविक है और जायज भी, क्योंकि व्यावसायिकता को होड़ ने शाश्वत काव्य–लेखन को प्रभावित किया है। कंठसंबलित मंचीय कविता से रचनाकार तात्कालिक वाहवाही और नाम–यश तो प्राप्त कर सकता है, किन्तु ऐसी रचनाएँ कालजयी नहीं बन पातीं, वह रचनाकार के जीवन के साथ ही मर जाती हैं। उसका लाभ अगली पीढ़ियों, किंवा आने वाली मानवता को नहीं मिल पाता, जबकि शाश्वत कविता अमर या कि चिरजीवी होती है। हिन्दी–प्रेमियों के लिए यह प्रश्न ज्वलंत एवं सर्वथा विचरणीय है।

प्रो0 वशिष्ठ अनूप एक सच्चे साधक हैं और इनकी रचनाएँ मूल्यपरक एवं कालजयी हैं। जब हम मानव सभ्यता के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो पता चलता है कि मनुष्य के भीतर भाषा और साहित्य की चेतना के विकास की शुरुआत गीतों के द्वारा ही हुई। कदाचित इसके मूल में इसकी सहजता, सरलता, भाव–प्रवणता, अबाध अभिव्यक्तिक्षमता, भावानुकूल लोच एवं तरलता तथा लयबद्धता की प्रवृत्ति रही है। हमारी दैनिकचर्या में विहित स्वाभाविक लयात्मकता सबसे पहले गीतों के माध्यम से ही प्रस्फुटित हुई, जिसकी पीठिका पर कालान्तर में साहित्य का भव्य प्रासाद विनिर्मित हुआ। सामवेद की ऋचाएँ इसकी प्रमाण हैं। सम्भवतः यही कारण है कि अद्यावधिपर्यंत मानव–मन पर गीतों का प्रभाव, उसकी उपादेयता और प्रासंगिकता में ताजापन बना हुआ है और मानव सभ्यता के अस्तित्व के साथ–साथ सदैव विद्यमान भी रहेगा। इस

सम्बन्ध में अनूप जी ने लिखा है कि, 'गीत वह काव्य रूप है जिसमें मानव के अन्तर्मन की सर्वाधिक स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है। इसका कारण यह है कि हमारे जीवन–जगत में बहुत कुछ लयबद्ध है। हमारी साँसों का आरोह–अवरोह, हमारा रोना–हँसना, पद–संचालन, बोलने का ढंग, दिनचर्या, ऋतुओं का परिवर्तन, हवा की सनसनाहट, नदियों का प्रवाह, झरनों का कल–कल, चिड़ियों की चहचहाहट, हिरनों की चौकड़ी, यंत्रों–वाहनों की गति सब कुछ लयबद्ध और संगीतमय है। मनुष्य ने अपने गीतों के लिए लय, गति विराम, आरोह, अवरोह, तुक और भाषा आदि समस्त उपादान प्रकृति और जीवन से ही प्राप्त किये हैं। इसीलिए सृष्टि के आरंभ से अब तक गीत मानव–मन के सर्वाधिक करीब रहे हैं।' (अपनी बात, गीत का आकाश)

कविता का सीधा सम्बन्ध मानव हृदय की संवेदना से होता है। स्मरण रहे कि कविता कोई शास्त्र नहीं है जो जीवन के लिए कठोरतम मानदण्ड निर्धारित करती किंवा उसका सख़्ती के साथ पालन करवाती है, अपितु वह मनुष्य के अन्तर्मन में दया, ममता, करुणा, मैत्री, स्नेह, सहानुभूति, उदारता और त्याग की भावना को जगाकर उसे मनुष्य होने का वास्तविक अर्थबोध कराती है। उसके इस महत् उद्देश्य के मार्ग में कोई भी भाषा–शैली कभी बाधक नहीं बनती अर्थात् संवेदना से युक्त कविता किसी भी भाषा में लिखी हो, सरस और सार्थक होती है। प्रयोगधर्मिता अथवा नारेबाजी कविता की पहचान नहीं बन सकती। एक कुशल कवि मानव–जीवन के शाश्वत मूल्यों को ही ग्रहण करता है। बौद्धिकता की आग्रही कविता से आज आम जन दूर होता जा रहा है। अस्तु, मानवीय संवेदना को उकेरने और आमजन के दुःख–दर्द को अभिव्यक्ति देने वाली रचना ही श्रेष्ठ होती है। ऐसी ही कविता की महत्ता और आवश्यकता पर बल देती हुई महीयसी महादेवी वर्मा ने ज्ञानपीठ पुरस्कार–प्राप्ति के अवसर पर अपने बहुमूल्य उद्‌बोधन में कहा था कि, 'कविता ही मानव मन की ऋतु बदल सकती है और भौतिक तथ्य को आत्मा के सत्य में परिवर्तित कर उसे सुंदर के माध्यम से शिव तक पहुँचा सकती है। बिना स्नेह, समता, वन्धुता और मानव–गरिमा के मानव जाति का भविष्य केवल मरण का पर्व है। मनुष्य में संवेदनशीलता की रागात्मकता नहीं रहेगी तो ध्वंस के कगार पर बैठी मानव जाति किसी भी क्षण समाप्त हो सकती है।' ध्यातव्य है कि कविता में संवेदनशीलता की रागात्मकता को अक्षुण्ण बनाये रखने में लय और छंद की महती भूमिका होती है। इस सम्बन्ध में प्रख्यात कवि लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' ने लिखा है कि, गद्य की पंक्तियों में व्यक्त बौद्धिकता मस्तिष्क को भले ही चमत्कृत कर दे, किन्तु बिना छंद के वह न तो किसी के कंठ में उतर सकती और न वह हृदय में घर कर पाती है। लयात्मक ध्वनियाँ भावों या विचारों को उदात्त बना देती हैं। इससे मानव मन को प्रेरणा मिलती है। भौतिक सत्य काव्य–शिल्प द्वारा सुंदर बनकर ही शिवत्व प्राप्त करता है। हमारे देश का लोक मानस अभी छंद को नहीं छोड़ सकता है। वह जितना धरती से जुड़ा है उतना ही छंद से।'(अपनीबात, बाँसुरी पृ0 5)

छंदमुक्त कविता अकविता के इस दौर में भी लय और छंद के अभाव की कचोट समय–समय पर अपनी अहमियत का अहसास कराती रहती है। संगीत में जो महत्त्व और स्थान राग का होता है, कविता में वही महत्त्व एवं स्थान छंद का होता है। राग की ही तरह छंद भी साधना की माँग करता है। जो रचनाकार इस साधना–पथ पर चलना नहीं स्वीकारते या कि आवश्यक नहीं सकझते, वे छंदविहीन कविता या अकविता की वकालत करते हैं। किन्तु उनके इस प्रकार के आन्दोलनात्मक प्रयत्न भी छंद और लय के महत्त्व को घटा नहीं पाये। कविता को छंदों के बन्धन से मुक्त करने का उद्‌घोष करने वाले महाप्राण निराला जी भी मुक्त छंद में भी लयात्मकता के पक्षधर थे। उ0प्र0 हिन्दी संस्थान द्वारा तमिल भाषा के राष्ट्रकवि श्रद्धेय सुब्रमण्यम भारती की जन्मशती के सुअवसर पर आयोजित काव्य गोष्ठी के मंच से अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में भवानीप्रसाद मिश्र ने बड़ी स्पष्टता के साथ कहा था कि, 'छंद को छोड़कर हम अलमारियों में बंद हो गये। हमारी कविता न कोई कंठस्थ करता है और न वह कहीं उद्‌धृत (कोट) ही की जाती है।' नयी कविता में दिखायी पड़ने वाले छंदों के प्रति सहज झुकाव को एक शुभ संकेत मानना चाहिए जिसे हिन्दी नवगीतों ने नया आयाम प्रदान करके उसकी ग्राह्यता एवं स्वीकार्यता को न केवल बढ़ा दिया अपितु महत्त्वपूर्ण भी बना दिया।

विवेच्य कृति 'गीत का आकाश' में 'अनूप' जी ने गीत–काव्य की विकास–यात्रा का समग्र विवेचन करते हुए गीत, नवगीत और जनवादी गीत पर बड़ी बारीकी के साथ प्रकाश डाला है। आदिम मानव के सुख–दुख, उत्साह–उल्लास, आशा–निराशा, खुशी–प्रेम–शोक आदि मनोभावों के प्रथम प्रवाचक के रूप में सहजतः लोक–कंठ से प्रस्फुटित होने वाले गीतों का विकासात्मक इतिहास मानव सभ्यता के इतिहास के साथ अनवच्छिन्न– अन्योन्याश्रित भाव से जुड़ा हुआ है। प्रारम्भ में मौखिक, श्रवण और स्मरण आदि माध्यमों में इनकी जीवंत उपस्थिति लोक में विद्यमान थी जो कालांतर में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिवेश तथा अपने परिस्थितियों के अनुरूप–अनुकूल अपने रूप–स्वरूप, प्रकृति, कथ्य एवं शिल्प में तत्तत् परिवर्तनों–बदलावों को आत्मसात करते हुए नवगीत, जनगीत के रूप में अपनी पहचान बनाते गये। इनकी विस्तारपरिधि भी विस्तृत होती चली गयी। अनूप जी की स्थापना है कि, 'वे गीत जो कभी मानव मन के ऐकान्तिक क्षणों की सहज अभिव्यक्ति हुआ करते थे, युगीन समस्याओं के दबाव के फलस्वरूप वैज्ञानिक समझ और चिंतन से सम्पन्न होकर विस्तृत जन–जीवन के दुख–दर्द और उनकी आशाओं–आकांक्षाओं के मुख्य प्रवक्ता बन गये।' (गीत का आकाश पृ0 17) विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रदत्त गीत की परिभाषाओं के सम्यक् परीक्षण के उपरांत अनूप जी ने गीत को व्याख्यायित करते हुए कहा कि, 'गीत में मानवीय स्नेह–विश्वास, उल्लास, आशा–निराशा, करुणा और उदासी की अभिव्यक्ति होती है। इसमें वैयक्तिकता, सामूहिकता, आवेक्ष दीप्ति, हार्दिकता, रागात्मकता और संगीतात्मकता का होना आवश्यक है।' (गीत का आकाश, पृ0 19)

मानव सभ्यता के साथ–ही–साथ जन्मे गीत की दीर्घकालिक उपस्थिति लोक मानस में पारम्परिक रूप से पीढ़ी–दर–पीढ़ी चलती रही। इसका लिखित स्वरूप सर्वप्रथम सामवेद में दिखायी पड़ता है। पुनः, यह गीत–धारा कालिदास के ऋतुसंहार, मेघदूत, जयदेव के गीतगोविन्द, विद्यापति की पदावली, नाथों–सिद्धों की वाणियों, रासो ग्रंथों, खुसरो की पहेलियों से होती हुई भक्त एवं संत कवियों के मधुर भावापन्न रचनाओं में प्रबल प्रवेग से प्रवाहित होती हुई आगे बढ़ी। रीतिकालीन वासनात्मक कविता के पंक में यह धारा किंचित् क्षीणकाय दिखायी पड़ने लगी, किन्तु आधुनिक काल में गीति का बहुवर्णी, बहुरूपी एवं बहु–बहु आयामी रूप–स्वरूप निखर उठा। गाँव–गिराँव, नदी–तालाब, पर्वत–झरने, लता–वनस्पतियाँ, आम–महुआ–जामुन, मैदान–कछार, देश–विदेश, राष्ट्र–समाज, राजनीति– इतिहास, नगर–कस्बा, प्रेम–मनुहार, हाव–भाव, पर्व–उत्सव–त्योहार, शोक–प्रसन्नता, खुशी– नाराजगी सहित समस्त मानवीय व्यवहार इसकी विषय परिधि में समाहित हो उठे। आगे चलकर अर्थात् छायावादोत्तर काल किंवा स्वातंत्र्योत्तर काल में जब कविता पारम्परिक कविता से स्वयं को अलगाते हुए 'नयी कविता' के रूप में अपनी पहचान बनाने लगी और आधुनिक काल के साथ विकसित आधुनिक सोच अथवा आधुनिक भाव–विचार की पहचान बोध के स्तर पर होने लगी अर्थात् मध्यकालीन भावबोध को धकियाकर जब साहित्य में आधुनिक भावबोध किंवा आधुनिकता–बोध आ गया तब गीतों के साथ भी 'नव' विशेषण जुड़ गया और गीत ने अब 'नवगीत' के रूप में अपनी पहचान बना ली। यद्यपि गीत भी कविता ही है, उसी का एक स्वरूप और हिस्सा है तथापि अनूप जी ने कविता और गीत के अलग–अलग अस्तित्व को स्वीकारते हुए दोनों को एक दूसरे का पूरक बताया है तथा दोनों में विभेद–दृष्टि रखने वाले लोगों को दुराग्रहग्रस्त भी कहा है। उन्होंने लिखा है कि, 'गीत और कविता का विकास साथ–साथ होता रहा है। ये दोनों विधाएँ एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। विरोध करने वाले और साहित्यिक मोर्चेबन्दी करने वाले वैयक्तिक दुराग्रहों, मठाधीशी और साहित्यिक नेतागिरी से प्रेरित हैं। वास्तविकता तो यह है कि अधिकांश अच्छे रचनाकारों ने गीत भी लिखे हैं और कविता भी। 'नवगीत' आन्दोलन नयी कविता के साथ–साथ विकसित हुआ। 'नवगीत' नाम भी नयी कविता के तर्ज पर दिया गया है। नवगीत नाम का उल्लेख सर्वप्रथम राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने सन् 1958ई0 में 'गीतांगिनी' में किया। गीतांगिनी के सम्पादकीय में राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने 'नवगीत' के गठन एवं उसकी विशिष्ठ प्रवृत्तियों को रेखांकित करते हुए उसे पूर्वागत गीत परम्परा से अलगाने की कोशिश की।' (गीत का आकाश, पृ0 22)।

'नवगीत' के उन्नायकों की चर्चा करते हुए डॉ0 शम्भुनाथ सिंह तथा उनके 'नवगीत दशक' और 'नवगीत अर्द्धशती' का नाम प्रमुखता के साथ लिया जाता है। किन्तु, अनूप जी नवगीत के श्रीगणेश का श्रेय निराला जी को देते हुए कहते हैं कि, 'जिस प्रकार छंदमुक्त कविता की शुरुआत करने का श्रेय निराला को

है, उसी प्रकार 'नवगीत' की भी शुरुआत का श्रेय निराला को ही जाता है।' (गीत का आकाश, पृ0 22)। नवगीत को परिभाषित करते हुए अनूप जी लिखते हैं कि, 'नवगीत वह छंदबद्ध रचना है जो लयात्मकता और संगीतात्मकता के बावजूद परम्परागत गीतों के सख्त तुकाग्रह और रूढ़ियों से मुक्त है। लोक सम्पृक्ति, आधुनिकताबोध, सघनता, संक्षिप्तता और व्यंजकता नवगीत की अनिवार्य विशेषताएँ हैं। नवगीत की नवीनता अन्तर्वस्तु की विविधता, व्यापकता और वैज्ञानिकता तथा शिल्प के लचीलेपन, भाषा की लोकोन्मुखता और प्रयोगधर्मिता में है।' (गीत का आकाश, पृ0 25) अस्तु, स्पष्ट है कि नवगीत ने कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर अपनी परिधि का विस्तार करते हुए पारम्परिक गीत सम्बन्धी कतिपय रूढ़ियों और संकुचित वर्जनाओं का त्याग करके अपने नयेपन और ताजेपन को प्रमाणित किया और समकालीन परिवेश की संवेदनाओं, लोक विश्वासों तथा ग्रामीण जीवन और सरोकारों से स्वयं को जोड़ते हुए उसके प्रति अपनी प्रतिबद्धता दिखाया। शिल्प के स्तर पर नवगीतों ने पारम्परिक गीतों में स्वीकृत जटिल छंदों एवं तुकों को शिथिल एवं लोकधर्मी बनाया, किन्तु उसके अस्तित्व से जुड़ी हुई आवश्यक छंदबद्धता को मुक्त कंठ से स्वीकार किया। अनूप जी 'नवगीत' की स्वाभाविकता को प्रभावित करने वाले अनावश्यक बंधनों से उसकी मुक्ति को जायज बताते हैं, किन्तु छंदबद्धता की अनिवार्यता पर बल देते हुए कहते हैं, 'कुछ छूट की बात तो ठीक है, किन्तु छंदबद्धता से गीत को अलग करने की बात से गीत के अस्तित्व को खतरा हो सकता है, क्योंकि छंदबद्धता गीत की अनिवार्य शर्त है।' (गीत का आकाश, पृ0 31)प्रो0 अनूप जी गीत की विवेचना करते हुए उसे तीन भागों में विभाजित करते हैं– गीत, नवगीत और जनवादी गीत। वास्तव में इन्होंने समकालीन गीतों के अन्तर्गत एक विशिष्ट विचारधारा (जनवादी किंवा मार्क्सवादी) से अनुप्रेरित गीतों को जनवादी गीत की अभिधा प्रदान की है और इसकी रचना के लिए एक अलग तरह की समझ और वैज्ञानिक दृष्टि को जिम्मेदार बताते हुए इसका सम्बन्ध नक्सलवाड़ी आंदोलन से जोड़ा है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि, 'जनवादी गीत' की रचना के पीछे एक खास तरह की सामाजिक–राजनीतिक समझदारी और एक स्वस्थ वैज्ञानिक दृष्टिकोण काम कर रहा है। सन् 1967 के नक्सलवाड़ी आन्दोलन एवं कई प्रांतों में गैर कांग्रेसी सरकारों के गठन ने सिर्फ राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं सामाजिक–साहित्यिक क्षेत्रों में भी एक हलचल पैदा कर दी थी। यह वह दौर था जब साहित्यिक दुनिया में अकविता, नकविता, नंगी पीढ़ी, भूखी पीढ़ी श्मशानी पीढ़ी जैसी अनेक अराजकत वादी कविता पीढ़ियाँ अपनी विकृतियों, कुंठाओं और भटकाओं को व्यक्त करके समूचे परिवेश को घृणास्पद और वीभत्स बनाने का आत्मघाती कुचक्र रच रही थी। इन सबसे मुक्ति आवश्यक थी और इसके लिए दिशा मिली नक्सलवाड़ी के आंदोलन से। इस आंदोलन से प्रभावित होकर अनेक नये–पुराने रचनाकार नयी ऊर्जा के साथ सामने आये और उन्होंने बहुसंख्यक मेहनतकश जनता के जीवन और उसकी आशाओं–आकांक्षाओं को केन्द्र में रखकर रचनाएँ की।' (गीत का आकाश, पृ0 32)। जनवादी गीतों के केन्द्र में मजदूरों–मजलूमों, श्रमिकों–शोषितों– वंचितों का जटिल जीवन और उनसे जुड़ी गरीबी–भुखमरी–बेरोजगारी–बेकारी आदि ज्वलंत समस्याएँ थीं। जनवाद वास्तव में वामपंथ (मार्क्सवाद) का ही एक आनुषंगिक संगठन है जिसमें गरीब–किसान– मजदूर–शोषक वर्ग ही 'जन' है और उसकी सर्वतोभावेन हितचिंतना और उसके प्रति पूर्ण सहानुभूति ही इसका उद्देश्य है। जनवादी गीत इन्हीं उद्देश्यों का लयात्मक अनुगायन है। इसमें संघर्षकामी चेतना है, अन्याय–अत्याचार–दमन के प्रति तीव्र आक्रोश है तथा अपने अधिकार को किसी भी तरह से पाने अथवा छीन लेने का क्रांतिकारी जज्बा है।

अस्तु, गीत, नवगीत, जनवादी गीत सबके मूल में मानवीय संवेदना है। जो देश–धर्म–जाति–वर्ण–सम्प्रदाय की संकुचित सीमाओं का अतिक्रमण करने वाली शाश्वत मानवता की पूँजी होती है। छंद, गति और लय का आश्रय लेकर यही संवेदनाएँ गीतों में अभिव्यक्त होकर मनुष्य की रग–रग में एक प्रभावकारी प्रेरणा भर देती है। प्रो0 वशिष्ठ अनूप स्वयं एक सिद्धहस्त किरीटी जनवादी गीतकार एवं ग़ज़लकार हैं। आप श्रेष्ठ सर्जक के साथ–साथ एक विचारवान आलोचक भी हैं। अतः, रचना के मर्म में पैठकर उसके अर्थ का उन्मीलन करने में आपके गहन चिंतन, प्रखर ज्ञान और तलातलप्रवेशी दृष्टि का समन्वित और संतुलित प्रयास अत्यंत प्रशंसनीय है।

जनवादी कविता की चिंतन भूमि

डॉ. प्रभात कुमार मिश्र

'कविता के जनवादी स्वर' समर्थ कवि–आलोचक वशिष्ठ अनूप की एक महत्त्वपूर्ण आलोचना पुस्तक है। इस पुस्तक में शामिल अठारह सुचिंतित अध्यायों में हिन्दी की जनवादी कविता–धारा का विश्लेषण और मूल्यांकन किया गया है। आरम्भ में ही 'जनवाद का निहितार्थ और उसके भेद' शीर्षक सुदीर्घ अध्याय में जनवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए जनवाद के सैद्धांतिक स्वरुप पर विचार किया गया है। कहना चाहिए कि वशिष्ठ अनूप ने अपनी साफ समझ और एक लम्बी अवधि तक विस्तृत हिन्दी की जनवादी कविता को प्रमाण–स्वरुप सम्मुख रखकर जनवाद की ठीक–ठिकाने की और सुलझी हुई परिभाषा प्रस्तुत की है– "जनवादी चेतना इंकलाबी चेतना है जो मानव के व्यापक सम्भावनाओं के महान भविष्य के प्रति गहरी आशा और दृढ़ विश्वास रखती है तथा वह वर्तमान की सचेतन कसौटी पर आम जनता की जटिल शोषण प्रक्रिया को ध्वस्त कर इतिहास की लीक छोड़ती हुई आगे बढ़ रही है।"

इस पुस्तक में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल से लेकर राजेश जोशी, अरुण कमल तक की कविता में निहित जनवादी स्वर को पहचानकर वशिष्ठ अनूप ने यह स्पष्ट धारणा प्रकट की है कि समाज में जब दो परस्पर विरोधी वर्ग रहते हैं तो साहित्य में भी दो परस्पर विरोधी धाराएं होती हैं। वर्ग–समाज में राज्यसत्ता और उसके विभिन्न अंगों पर किसी न किसी वर्ग का अधिकार रहता है और इसीलिए सत्ताधारी वर्ग उनका उपयोग अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए तथा अन्य वर्गों को दबाने के लिए करता है। ऐसे में होता यह है कि सत्ताधारी वर्ग यदि शोषक है तो राज्यसत्ता तथा अधिरचना के विभिन्न अंगों का प्रयोग शोषण की स्थिति बनाए रखने के लिए करता है और यदि वह शोषित है तो शोषण समाप्त करने की दिशा में आगे बढ़ता है। इसी तरह साहित्य में भी शोषक समाज के शोषक वर्ग की विचारधारा ही प्रधान रहती है। हालांकि, संघर्षरत शोषित वर्ग और उसकी राजनीति तथा विचारधारा का भी अस्तित्व बने रहने के कारण ऐसा साहित्य भी बना ही रहता है जिसमें भावी समाज की झलक भी मिलती है और उस भावी समाज के निर्माण का संकल्प भी।

इस मजबूत वैचारिक– राजनीतिक पृष्ठभूमि पर टिके होने के कारण वशिष्ठ अनूप यह समझा सकने में समर्थ हो सके हैं कि असल में यह जनवादी चेतना की संकीर्णता है जो उसे केवल कम्युनिस्ट पार्टी की सीमा में बांधे रखती है। जनवाद की यह व्यापक धारणा महेन्द्र भटनागर की उस प्रसिद्ध कविता से जाकर मिलती है जिसे लगभग जनवाद की परिभाषा के बतौर पढ़ा जाता रहा है–

"अनुचित करेंगे नहीं,
अनुचित सहेंगे नहीं।
अधिकार–मद–मत्त
सत्ता–विशिष्टो,
तुम्हारी सफल धूर्तता
और चलने न देंगे।
परलोक या
लोक–कल्याण के नाम पर
व्यक्ति को
और छलने न देंगे।"

साहित्य केवल सामाजिक कारणों का परिणाम नहीं है बल्कि सामाजिक परिणामों का कारण भी है, इस समझ के साथ कविता की दुनिया में सक्रिय कवियों ने न केवल काव्य–प्रवृत्तियों में परिवर्तन किया बल्कि अपने लिए अपेक्षाकृत अधिक साफ, स्वाभाविक, प्रवाहमय और तेजवंत भाषा का भी अन्वेषण किया। यही वह संदर्भ है जिसके कारण नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन कविता में जनभागीदारी और

यथार्थ की प्रतिष्ठा के पक्ष में किए गए संघर्ष को तेज करनेवाले महत्त्वपूर्ण कवि माने गए हैं। वशिष्ठ अनूप की दृष्टि में इसी कारण से नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल ही ऐसे कवि हैं जिनकी अधिसंख्य रचनाएं जनवादी कविता के लिए 'मॉडल' मानी जा सकती हैं।

'कला कला के लिए' का घोष करने वाले आधुनिकतावाद के प्रतिष्ठापक–पोषक जिन हिन्दी कवियों ने इन्हें हाशिए पर छोड़ते हुए कभी अपनी केन्द्रीयता बनाई थी वे सब जनवादी काव्य–आग्रहों के सम्मुख अपना महत्त्व खोते गए हैं। वशिष्ठ अनूप ने साफ शब्दों में कहा है कि "'साहित्य साहित्य के लिए' और 'कला कला के लिए' का नारा लगाने वालों की जो वैचारिक पराजय 'साहित्य समाज के लिए' के पक्षधरों द्वारा हुई है, उसके बाद शासक वर्गों के साहित्यकार भी अपने यथास्थितिवादी साहित्य में ऊपर से साहित्य समाज का आवरण ओढ़ने का असफल प्रयास करते हैं। 'साहित्यकार को सामाजिक संघर्षों के पचड़े में न पड़कर अंधेरे बन्द कमरे में एकाकी चिन्तन मग्न होकर साहित्य साधना करनी चाहिए' ऐसा कहना अब मूर्खता ही समझी जाती है तथा चतुर प्रतिक्रियावादी साहित्यकार अब ऐसा नहीं कहते।"

वशिष्ठ अनूप की यह पुस्तक काव्यालोचन की परंपरित धारा और जनवादी कविता से सम्बन्धित आलोचना पुस्तकों से भी दो अर्थों में विशिष्ट है। पहला तो यह कि इस पुस्तक में 'कविता' का अर्थ विस्तृत और समावेशी है। भूमिका में ही वशिष्ठ अनूप ने स्वीकार किया है कि "यहां एक बात को और स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मेरे सामने जब 'कविता' शब्द आता है तो तमाम आलोचकों की तरह उसका संकुचित अर्थ नहीं आता और मैं सिर्फ 'मुक्त छंद' को ही कविता नहीं मानता। 'कविता' शब्द से उन सभी काव्य–रुपों का बोध होता है जो पारंपरिक छंदों, गीतों, नवगीतों, जनगीतों, ग़ज़लों, दोहों, मुक्तकों, मुक्त छंद आदि में लिखी जा रही है। इसलिए कविता पर लिखते हुए मैं गीतकारों और ग़ज़लकारों पर भी लिखता हूं। इस पुस्तक में भी ऐसा ही किया है।" इस पुस्तक की दूसरी प्रमुख विशेषता का सम्बन्ध विषय–वस्तु विवेचन से है। यह पुस्तक हमारे सम्मुख यह बात पहुंचा सकने में सक्षम हुई है कि जनवादी कविता ने कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर काव्य के विकास की काफी सम्भावनाओं को परिभाषित किया है और जैसे–जैसे समय बीतता जा रहा है वह अपना वास्तविक स्वरुप धारण करती जा रही है।

इस पुस्तक की औऱ बड़ी विशेषता कविता में जनवादी प्रवृत्तियों की पहचान और परख करते हुए काव्य–शिल्प की विवेचना है। वशिष्ठ अनूप ने गंभीरता से विभिन्न कवियों की काव्यभाषा और शिल्प सम्बन्धी अपनी–अपनी विशेषताएं उजागर की हैं। नागार्जुन के सम्बन्ध में वशिष्ठ अनूप का निष्कर्ष है कि बहुअधीत, बहुश्रुत और अनुभवशील रचनाकार होने के कारण स्थितियों, घटनाओं तथा उनसे जुड़ी संवेदनाओं को ठेठ जनता के जीवन के बीच से उभारना जनता के अपने दैनंदिन क्रिया–कलापों को ही अपनी सहज संवेदना का ताप देते हुए कविता के रुप में ढाल देना, जनता की अपनी बोली, यहां तक कि बातचीत के लहजे तक को अपनी कविता के शिल्प का अंग बना लेना, उनकी खास विशेषता है। कवि की इन विशेषताओं के ही कारण वशिष्ठ अनूप ने यह माना है कि जनकवि का विरुद तो कई कवियों को प्राप्त है पर सही अर्थों में जनकवि तो नागार्जुन ही हैं क्योंकि उनकी तमाम कविताएं जनता के कण्ठ में निवास करती हैं और उनके संघर्षों में ताकत देती हैं।

नागार्जुन की रचना–प्रक्रिया पर विचार करते हुए वशिष्ठ अनूप ने कविता और समाज के सम्बन्ध पर मूल्यवान टिप्पणी की है कि "एक वास्तविक प्रतिभा–सम्पन्न कवि अपनी पारदर्शी दृष्टि, संवेदन–क्षमता और सहानुभूति के माध्यम से दूसरे के सुख–दुख को न केवल जान लेता है, अपितु स्वयं उसका भोक्ता बन जाता है, तद्वत हो जाता है और फिर अपनी रचनात्मक क्षमता, कल्पनाशक्ति और साधारणीकरण के माध्यम से उसे इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि वह प्रत्येक पाठक या श्रोता का आस्वाद्य बनकर उसे उसी स्थिति में पहुंचा देता है।"

नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल की कविता से ही वशिष्ठ अनूप ने वस्तुतः जनवादी कविता को समझने की दृष्टि पाई है। इस मामले में वशिष्ठ अनूप ने विजय बहादुर सिंह के इस कथन से अपनी सहमति जाहिर की है कि बचपन ही से गरीबी की मार खाने और जीवन भर संघर्ष और असुविधा का जीवन

जीने वाले इस कवि की सहानुभूति उस कवि की सहानुभूति से कई गुना आगे है जो ग्रामीण विश्व को बौद्धिक दृष्टि से देखता चला आ रहा है। इसी कारण से वशिष्ठ अनूप मानते हैं कि नागार्जुन मूलतः व्यंग्य के कवि हैं। उनकी कविता की एक बहुत बड़ी ताकत है– व्यंग्यधर्मिता। उनके सीधे और सहज व्यंग्य की धार इतनी पैनी है कि बहुत दूर तक तिलमिला देती है।

वशिष्ठ अनूप जनवादी कविता में भी प्रत्येक कवि की निजी विशेषताएं पहचान सकने में समर्थ हो सके हैं। रचनाओं में मिट्टी की महक और उस मिट्टी के निवासियों का जीवन अपनी समूची विशेषताओं के साथ मौजूद तो नागार्जुन में भी है पर इस समानता के बावजूद केदारनाथ अग्रवाल के पास एक भावप्रवण संवेदनात्मक हृदय के साथ ही एक जाग्रत तथा विवेकशील मस्तिष्क भी है जो उन्हें निरंतर सचेत और चौकस रखता है। यही कारण है कि जनकवि होते हुए भी जनता की कमजोरियों की भी तीखी आलोचना मिलती है उनकी कविता में। उनकी कविता में जनजीवन का रस, गन्ध, कोमलता और सहजता के साथ ही एक तरह की कठोरता और प्रचंडता भी है जो उनकी विशिष्टता को अलग से रेखांकित करती है। उनके इस काव्य–वैशिष्ट्य को ही पहचानकर नागार्जुन ने उन्हें 'जन मन के सजग चितेरे' कहा था।

वशिष्ठ अनूप यह बताते हैं कि केदारनाथ अग्रवाल कला के प्रति भी अन्य जनवादी कवियों से भिन्न राय रखते हैं और जोर देकर कहते हैं कि साहित्य में सिर्फ विचारधारा को ज्यों का त्यों रख देना ठीक नहीं है। उनका कहना है कि प्रगतिशीलता का कतई यह लक्ष्य नहीं होता कि कविता कविता न रहे नंगी–बूची हो जाय औऱ व्यक्ति अथवा राजनीति का वचन–मात्र हो जाय। केदारानाथ अग्रवाल की भाषिक विशेषताओं की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए वशिष्ठ अनूप ने लिखा है कि केदार जी हमारी जातीय परम्परा के कवि हैं। उनकी सभी कविताएं लोक–लय पर आधारित हैं। उनमें जीवन और प्रकृति की लय है। वे कविताएं यथार्थ के चित्रण से सम्बन्धित हों या संघर्ष से या प्रकृति और प्रेम से सब में लय–छंद का आरोह–अवरोह है। उनका स्थापत्य कई तरह का है किन्तु उनपर लोक का रंग सबसे गाढ़ा है।

दिनकर को ओज, आक्रोश औऱ क्रांतिकारी चेतना का कवि तो मान लिया जाता है पर इस आक्रोश का कारण बहुधा स्पष्ट नहीं हो पाता है। वशिष्ठ अनूप ने इस कारण को समझा है और बताया है कि दिनकर की बहुत सारी कविताएं प्रतिरोध औऱ संघर्ष के स्वर को मुखरित करती हैं क्योंकि रेशमी और मखमली दुनिया में रहने वालों तथा दूसरों के दम पर ऐश्वर्य भोगने वालों को उन्होंने सदैव निशाने पर रखा। पीड़ित मानवता के विकल स्वरों को अनसुना करने वालों की खबर लेते हुए उन्होंने क्रांति की सम्भावनाओं को सतत रेखांकित किया और उसे तेज करने का प्रयास किया। ठीक ही पहचाना है वशिष्ठ अनूप ने कि दिनकर के काव्य–व्यक्तित्व पर दो विरोधी स्वभाव के कवियों– रवीन्द्रनाथ टैगोर औऱ अल्लामा इकबाल का प्रभाव दिखता है। इनमें से एक अन्तश्चेतना औऱ राग का कवि है तो दूसरा विद्रोही चेतना और आग का। दिनकर में इन दोनों विभूतियों का समन्वय है।

कवि शील की आभा प्रगतिशील कविता में बहुधा छिपी रह जाती है। वशिष्ठ अनूप ने इसका कारण स्पष्ट करते हुए लिखा है कि शील के पास बड़ी सभ्य भाषा है जो यदि एक स्तर पर अभिजात शब्दावली को सामने लाती है तो दूसरे स्तर पर एकदम साधारण जन की बोली बानी बन जाती है। अपने कथ्य के अनुरुप शील भाषा की इस पूंजी का सावधानी से इस्तेमाल करते हैं। शील वस्तुतः कविता की अपनी बुनियादी जरुरतों के प्रति और कविता की अपनी सही चरितार्थता के प्रति सजग हैं।

प्रगति और प्रयोग सम्बन्धी कविताओं का आरंभिक उभार शिथिल होने के बाद लम्बे समय तक हिन्दी कविता में व्यक्ति स्वातंत्र्य, जनता को भीड़ समझना, मानव की लघुता को महिमामंडित करना, वैयक्तिक अनुभूति को ही प्रामाणिक मानना, इतिहास और परम्परा के बजाय क्षण के बोध को ही सार्थक समझना जैसी प्रवृत्तियां मुखर रही हैं। यद्यपि, वशिष्ठ अनूप का मानना है कि मुक्तिबोध से लेकर अरुण कमल तक की कविता–धारा इस बात का प्रमाण देती है कि इन सभी प्रवृत्तियों के बावजूद कविता का भीतरी आधार पूंजीवादी जनतंत्र और पूंजीवादी जनवाद के छल–छद्म का पुरजोर विरोध करना रहा है। पूंजीवादी जनवाद सुविधाजीवी अल्पसंख्यक वर्ग के लिए तो जनवाद होता है किन्तु मेहनतकश बहुसंख्यक अवाम के लिए दमन

का ही यंत्र होता है। वशिष्ठ अनूप इस अंतर को समझते हैं और यह बताते हैं कि मुक्तिबोध ने "अपनी रचनाओं में एक तरफ काली ताकतों, सामंतों–महाजनों और रक्त–पिपासु पूंजीपतियों की कलई खोलकर रख दी तो दूसरी ओर मेहनतकश अवाम, मजदूरों–किसानों निम्नमध्यवर्ग और निम्नवर्ग में व्याप्त गरीबी, शोषण और अमानवीय यातनाओं के अन्तहीन दर्द को उद्‌घाटित किया।"

कवि त्रिलोचन की रचना–भूमि भी वही है जो नागार्जुन, केदारानाथ अग्रवाल और शील की है पर वशिष्ठ अनूप अलग से यह रेखांकित करते हैं कि त्रिलोचन की समझ वैज्ञानिक है। इनकी दृष्टि में त्रिलोचन पुराने होते हुए भी आधुनिक हैं लेकिन तथाकथित आधुनिक नहीं। वशिष्ठ अनूप यह जोड़ते हैं कि "त्रिलोचन एक खास अर्थ में आधुनिक हैं और सबसे आश्चर्यजनक तो यह है कि वे आधुनिकता के सारे प्रचलित सांचों को अस्वीकार करते हुए भी आधुनिक हैं।...त्रिलोचन की कविताएं समकालीन बोध की सुपरिचित परिधि को तोड़ने वाली कविताएं हैं और इस तरह आज की कविता की हमारी बनी बनायी अवधारणा को थोड़ा छिन्न–भिन्न करने वाली कविताएं हैं।

नई कविता के कवियों पर विचार करते हुए वशिष्ठ अनूप ने यह निष्कर्ष निकाला है कि इस दौर की कविता में अनास्था, निराशा, विफलता, कुंठा, टूटन जैसे मनोभावों की जो प्रधानता दिखती है वह असल में बदलते सामाजिक यथार्थ की ही मध्यवर्गीय अभिव्यक्तियां हैं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता में उन्हें मध्यवर्गीय समाज में मनुष्य की असहायता, टूटन, पारम्परिक रुढ़ियों तथा सामाजिक खोखलेपन की सशक्त अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है। उन्होंने लिखा है कि आज के समाज में खासकर शहरी समाज में सारे सम्बन्ध किस तरह टूटते जा रहे हैं, सारी चीजें किस तरह अपना अर्थ खोती जा रही हैं, इस व्यर्थताबोध और खोखलेपन की अभिव्यक्ति सर्वेश्वर की कविताओं में हुई है। इसी प्रकार शहरी और पूंजीवादी सभ्यता में व्याप्त अश्लीलता, दिखावा और नग्नता के साथ–साथ लगातार जड़ जमाती जा रही अलगाव की संस्कृति का चित्रण वशिष्ठ अनूप के अनुसार दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों का प्रधान स्वर है। दुष्यन्त की ग़ज़लों में व्यंग्य की ताकत है और इस ताकत का स्रोत वशिष्ठ अनूप के अनुसार यथार्थ से उत्पन्न आक्रोश और असन्तोष ही है जो सीधी–सादी भाषा में व्यक्त न है सकने के कारण व्यंग्य का लहजा अपनाता है। समूची ग़ज़ल विधा के लिए यह एक नई बात है कि जनता की अपार और अपराजेय शक्ति को समझते हुए, उस सोई हुई शक्ति को जगाते हुए और उसे संगठित करते हुए दुष्यन्त कुमार ने शोषक–शासक वर्ग के प्रति निर्णायक संघर्ष करने की बात की है। वशिष्ठ अनूप बल देकर कहते हैं कि दुष्यन्त कुमार की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने युग में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विषयों को ग़ज़ल का विषय बनाया किन्तु ग़ज़ल का रुप–रंग और ग़ज़लियत को पूरी तरह बनाए रखा। कविता में मध्यवर्गीय अवसरवादिता और राजनीतिक विद्रूप साठोत्तरी पीढ़ी के मुखर जनवादी कवि धूमिल की भी विशेषता है। धूमिल ने अपनी कविताओं में अपने समाज की हर प्रकार की स्थितियों का चित्रण किया है। वशिष्ठ अनूप के अनुसार उनकी कविता में कहीं गरीबी, भुखमरी और शोषण का चित्र है, तो कहीं सामाजिक विसंगतियों और विद्रूपताओं का। इसके साथ–साथ उनकी कविता में हमारी राजनीतिक व्यवस्था और ढोंगी बुद्धिजीवियों को भी तार–तार किया गया है। वशिष्ठ अनूप कहते हैं कि भूख, गरीबी, बेरोजगारी एवं अन्य समस्याओं के असली कारणों की चर्चा न करके बेमतलब के विषयों की चर्चा करने वालों की धूमिल ने खूब खबर ली है।

गीतों से अपनी काव्य–यात्रा आरंभ करनेवाले केदारनाथ सिंह के बारे में वशिष्ठ अनूप की धारणा है कि वे बहुत साधारण–सी और नितान्त स्थानीय लगने वाली बात को सहसा बहुत दूर तक पहुंचा देते हैं और उनकी तमाम कविताएं अपना अर्थ अपनी व्यंजना और ध्वन्यात्मकता में खोलती हैं। जनवादी कविता धारा में कुछ कम पहचाने गए कवि विश्वनाथ प्रसाद तिवारी पर लिखा गया सुदीर्घ आलेख बहुत महत्तवपूर्ण है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का काव्य–वैभव और काव्य–वैशिष्ट्य दोनों ही यहां स्पष्ट हो सके हैं। लिखा है वशिष्ठ अनूप ने "विश्वनाथ जी की कविताएं वर्तमान जीवन के साथ ही अतीत और भविष्य के अनेक आयामी सन्दर्भों को समेटती हैं और उन्हें नये भावों–विचारों से समृद्ध कर खूबसूरत भाषा–शिल्प, बिम्बों–प्रतीकों एवं लोकोक्तियों–मुहावरों के माध्यम से व्यक्त करने में समर्थ सिद्ध हुई हैं। विषय–वस्तु की दृष्टि से उनकी कविताओं को दो वर्गों में विभाजित करके देखा जा सकता है। पहले वर्ग में वे कविताएं आएंगी जो गहरी

रागात्मक संवेदना, लोकसम्पृक्ति, लोक–विश्वासों और मानवीय मूल्यों को व्यक्त करती हैं। दूसरे वर्ग में उन कविताओं को रखा जा सकता है जिनमें वर्तमान समाज की विसंगतियों–विडम्बनाओं, शोषण, असमानता संघर्ष और राजनीतिक विद्रूपताओं का उद्घाटन हुआ है।"

इस पुस्तक में वशिष्ठ अनूप ने जनवादी कविता धारा में गीतों के साथ जुड़े माहेश्वर तिवारी और गोरख पांडेय की कविताओं पर भी विचार किया है और दुष्यन्त कुमार के बाद हिन्दी ग़ज़ल को आगे बढ़ाने वाले अदम गोण्डवी की ग़ज़लों पर भी। लेखक की दृष्टि में भाषा के विलक्षण और सटीक प्रयोग तथा जीवन्त ताजे बिम्बों का प्रयोग जहां माहेश्वर तिवारी की निजी विशेषता है वहीं पारंपरिक लोक–धुनों में नई प्रगतिशील अन्तर्वस्तु को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करना गोरख पाण्डेय की। अदम गोण्डवी की सबसे बड़ी विशेषता लेखक की दृष्टि में यह है कि उन्होंने ग़ज़ल को कोठे के जीने से उतारकर गांव की पगडंडियों पर चलना सिखाया और उसे जन समस्याओं से स्वयं तो जोड़ा ही, अन्य रचनाकारों को भी इसके लिए प्रेरित किया।

पुस्तक के आखिरी तीन अध्यायों में राजेश जोशी, नचिकेता और अरुण कमल की कविताओं पर विचार किया गया है। इन कवियों पर विचार के क्रम में वशिष्ठ अनूप यह अनुभव करते हैं कि हिन्दी क्षेत्र पिछले दिनों गहरे सामाजिक–आर्थिक संकटों से गुजरा है जिसमें लगातार बाजार के दबाव ने अपने लिए संस्कृति का अनुकूलन किया है। ऐसे में इन कवियों की कविताएं बेहद सतर्क और चौकन्नी कविताएं हैं जिसमें एकमात्र कविता ही दृष्य को अनुभव में बदलती दिखाई पड़ रही है।

इस पुस्तक में शामिल निबन्धों के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जनवाद काल विशेष के परिवेष और सत्ता–शक्ति संरचना को अधिक सतर्कता, प्रखरता और चौकन्नेपन के साथ ग्रहण करता है। यही कारण है कि जनवादी कविता को 'सम्पूर्ण यथार्थ की कविता' के रुप में भी जाना–समझा जाता है।

★

गीत का आकाश : साहित्य के विस्तार की एक कोशिश

डॉ. किंगसन सिंह पटेल

गीत का आकाश वशिष्ठ अनूप जी द्वारा 2010 में प्रकाशित गीतों–नवगीतों पर केन्द्रित किताब है। वे स्वयं प्रसिद्ध कवि, गीतकार और ग़ज़लकार हैं इसलिए उनकी आलोचना और लेखन का क्षेत्र प्रायः इन्हीं विषयों से जुड़े होते हैं। बकौल चंपा सिंह यह किताब **'गीत का आकाश** गीतों के विस्तार, गहराई और उंचाई को अर्थ ध्वनित करता है।'[1] जिसका प्रमाण इसकी भूमिका और इसमें शामिल गीतकारों से भी होता है। गीत और गीत की भूमिका में लेखक ने गीतों के उद्‌भव और विकास को स्पष्ट करने के लिए हिन्दी कविता के विकास के साथ गीतों की संबंद्धता और उसकी विशिष्टता को रेखांकित किया है। गीतों का विकास छायावादी और तार–सप्तक कविताओं से जुड़ा है। डॉ. शम्भुनाथ सिंह के नेतृत्व ने हिन्दी गीतों को हिन्दी साहित्य में नई पहचान दी और गीतकारों को हिन्दी साहित्य में स्थान देने पर मजबूर किया –का परिचय वशिष्ठ जी ने बड़ें ही विस्तार और क्रमबद्ध तरीके से इस किताब में स्पष्ट किया है। वशिष्ठ जी लिखते हैं ''गीत', 'नवगीत' और 'जनवादी गीत' की श्रेणियों में विभाजित है। गीत से तात्पर्य उन गीतों से है जो छायावादोत्तर काल में सुक्त गीत–धारा के सहज विकास–क्रम में आने वाले गीत हैं। 'नवगीत के अन्तर्गत वे गीत हैं जो प्रगति, प्रयोग और नई कविता के बीच, नये समाज–मानस एवं आधुनिकता के प्रति उन्मुख चेतना के अधीन डॉ. शुम्भुनाथ सिंह के संपादन में 'नवगीत दशकों' में सृजित हुए हैं। इन गीतों में नये यथार्थ–परक बिम्ब–विधान एवं नुतन प्रतीक योजनाओं की एक नुतन सुंगंध है। दो प्रमुख विधाएं, संभवतः जान–बूझकर नहीं गृहीत हो सकी हैं, वे हैं 'अगीत' और 'हिन्दी–ग़ज़ल'।''[2] आगे वशिष्ठ अनूप जी नवगीत को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि ''यदि हम नवगीत को परिभाषित करना चाहें तो कह सकते हैं कि नवगीत वह छन्द, बद्ध रचना है जो लयात्मकता और संगीतात्मकता के बावजूद परंपरागत गीतों के सख्त तुकाग्रह और रूढ़ियों से मुक्त है। लोक सम्पृक्ति, आधुनिकता–बोध, सघनता, संक्षिप्तता और व्यंजकता नवगीत की अनिवार्य विशेषताएं हैं।''[3] जिसे वे पूरी किताब में गीतों के विभिन्न उदाहरणों से पुष्ठ करते चलते हैं।

गीत का आकाश किताब में वशिष्ठ जी ने अट्‌ठाईस गीतकारों को आधार बनाया है, जिनके नाम क्रमवार निम्न हैं– रामाधार त्रिपाठी, रूपनारायण त्रिपाठी, डॉ. शम्भुनाथ सिंह, डॉ. श्रीपाल सिंह 'क्षेम', ठाकुरप्रसाद सिंह, विद्याधर द्विवेदी 'विज्ञ', उमाकान्त मालवीय, देवेन्द्र कुमार, सोम ठाकुर, डॉ. रवीन्द्रभ्रमर, नईम, सुरेन्द्र काले, माधव मधुकर, रमेश रंजक, श्रीकृष्ण तिवारी, गुलाब सिंह, उमाशंकर तिवारी, शान्ति सुमन, नचिकेता, गोरख पाण्डेय, बद्धिनाथ मिश्र, सुधांशु उपाध्याय, अरुणा दुबे, देवेन्द्र आर्य, यश मालवीय और ओम धीरज हैं।

किताब की शुरुआत डॉ. श्रीपाल सिंह क्षेम के लेख गीत और गीत की भूमिका से होती है। उसके बाद किताब की लेखकीय भूमिका के बाद गीतकारों के गीतों का विश्लेषण गीतकारों के गीतों के हवाले से वरीयता क्रम से की गई है।

रामाधार त्रिपाठी 'जीवन' किसानी के साथ कवि कर्म समान रूप से करते हैं जिसे वे अपने गीतों में भी बयां करते हैं–

''मैं किसान हूं, कवि हूं, मेरी संगिनी कलम कुदाल है।
मन मेरा आकाश विहारी तन–मन मेरे खेत में
माटी को सोना करता हूं रस भरता हूं रेत में।''[4]

यही कारण है कि अनूप जी को उनके लिए लिखना पड़ता है कि 'कृषि कर्म अैर कवि कर्म उनके लिए समान रूप से अनिवार्य थे।'

पंडित रूप नारायण त्रिपाठी जिनके लगभग दस काव्य संग्रह हैं। ये पौराणिक एवं ऐतिहासिक विषयों को अपने काव्य का आधार बनाते हैं और इससे जुड़ी महत्वपूर्ण प्रासांगिक और गौरवशाली परम्परा का रेखांकन

करने के साथ हाशिये के समाजों का शोषण और उनके योगदान को भी बयां करते हैं। उनकी ऐसी ही एक कविता को वशिष्ठ जी उद्धृत करते हैं –

''साज श्रृंगार हो महल का या, जगमगाहट हो वह नगीने;
इसमें मेहनतकशों के आँसू हैं, इनमें है आबरू पसीने की।
यह जो दिल्ली के भाल का कुमकुम, यह जो गलहार का नगीना है;
रक्त वह देश के किसानों का, और मजदूर का पसीना है।''[5]

चुनाव की यह दृष्टि इस किताब के लेखक की जनपक्षधरता और संवेदनशीलता को दर्शाती है। त्रिपाठी जी आज के पैकिंग और दिखावे के बरक्स गुण को सौन्दर्य का प्रतिमान निर्मित करते हुए लिखते हैं–

''रूप सुन्दर, चलन भी सुन्दर हो, देह का आवरण भी सुन्दर हो
सार्थक है उसी की सुन्दरता, जिसका अन्तःकरण भी सुन्दर हो।''[6]

ऐसे गीतों से नये सौन्दर्य के निर्माण करने की कोशिश स्वयं वशिष्ट जी भी करते हैं इसीलिए गीतकारों के गीतों से ऐसी पंक्तियों का चयन–विश्लेषण कर आज के उपभोक्तावादी संस्कृति के विपरीत स्त्री सौन्दर्य का नया प्रतिमान निर्मित करने की कोशिश करते हैं।

गीतकारों को पहचान दिलाने में डॉ. शंभुनाथ सिंह का अतुलनीय योगदान है। उनके इस महत्व को रेखांकित करते हुए वशिष्ठ जी लिखते हैं ''हिन्दी नवगीत के विकास में डॉ. शंभुनाथ सिंह की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रही है। उन्होंने अपने कई स्तरीय नवगीत संग्रहों के माध्यम से नवगीत को रचनात्मक स्तर पर तो समृद्ध किया ही है, एक कुशल साहित्यिक संगठनकर्ता के रूप में भी विशेष भूमिका का निर्वाह किया। उन्होंने नवगीत को एक आन्दोलन के रूप में विकसित किया। नवगीत के विकास में शम्भुनाथ सिंह का योगदान कुछ उसी प्रकार का है जैसा नई कविता के विकास में अज्ञेय जी का और हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में दुष्यन्त कुमार का।''[7] शंभुनाथ सिंह की इन विशेषता को प्रमाणित करती कविताओं को भी वे इस किताब में उद्धृत करते हैं। यथा–

''बेला महकी सारी रात
किसके लिए ?
मनवा बहके सारी रात
किसके लिए ?
प्यास है ज्यों नशे में नहाई हुई
साँस अपनी कि जैसे पराई हुई,
अश्रु की बूँद जैसे खरीदी हुई
है हँसी बन गयी ज्यों चुराई हुई
कांपते कंठ में दीप लौ की तरह
गीत लहके सारी रात
किसके लिए ?''[8]

और

''पिया न आये आमों में
आ गया टिकोरा री
बँसवारी में मैना बोली
पीपल पर कोयलिया,
आँगन की चन्दन गछिया पर
बोला कागा छलिया।
दिन दोपहरी डहडह डहके
दुपहरिया अलबेला।
....
छिन छिन पियराता पर धनि का /मुखड़ा गोरा री।''[9]

विरह प्रेमगीतों के साथ देशी अंदाज में शंभुनाथ जी ने देशभक्ति के भी गीत लिखे हैं–

''जागो हे भारत के स्वर्ण–काल जागो।
जागो चिरनिद्रा से महाकाल जागो।
....
राज–कण में सोये वीरो प्रसुप्त जागो,
जागो हे चन्द्रगुप्त स्कन्दगुप्त जागो।''[10]

और

''लोहे की बेड़ियाँ कटी
सोने की बेड़ियाँ पड़ी
बार और नाचघरों में
है नंगी सभ्यता खड़ी।''[11]

इनकी उपरोक्त विशेषताओं का विस्तार से मूल्यांकन करने के बाद वशिष्ठ अनूप जी इस निष्कर्ष पर ठीक ही पहुंचते हैं कि ''उन्होंने छायावाद से लेकर समकालीन कविता तक की यात्रा की थी। बीच में उन्होंने नई कविता के प्रभाव में मुक्त छन्द की कविताएं भी लिखीं। किन्तु उनका मन अन्ततः नवगीत में ही रमा। उन्होंने अपने सृजन, संपादन और समीक्षा के माध्यम से नवगीत को सशक्त विधा के रूप में स्थापित करके उसे नयी कविता के समानान्तर खड़ा कर दिया।''[12]

डॉ. श्रीपाल सिंह 'क्षेम' 'जी ने अपनी काव्य–यात्रा पूर्वी–अवधी और व्रज भाषा से होते हुए खड़ी बोली तक तय की।'[13] श्रीपाल जी की कविता इस अर्थ में अलहदा है कि उनकी कविता में प्रकृति के मानवीयकरण के सहारे संयोग–वियोग, दुख, निराशा आदि के चित्र बहुत ही कलात्मक रूप में अभिव्यक्त हुए हैं–

'''हास मालों से सजा लाया जिसे था,
हिचकियों से आज देता हूँ विदाई।
शूल में जो रात भर जगता रहा है,
आज अरथी पर उसे यों नीद आई।
यह हरे–से बाँस की डोली सजी है,
आज है यह प्यार की अंकवार अंतिम।''[14]

असमय पत्नी की मृत्यु की पीड़ा और विरह की इस कविता के बारे में वशिष्ठ जी की टिप्पणी गौरतलब है–''इनमें गहरी उदासी, निराशा, करुणा, असहायता, सन्नाटा, टीस और कचोट है।'[15]' इस दौर के लगभग सभी गीतकारों की तरह इनके भी गीतों में देश भक्ति, शोषण, अत्याचार के गीत हैं। 'वेद व्यास के जीवन पर आधारित महाकाव्य 'कृष्ण द्वैपायन' क्षेम जी की रचना–यात्रा की उल्लेखनीय उपलब्धि है।'

'ठाकुर प्रसाद सिंह को वशिष्ठ जी हिन्दी नवगीत का आदि पुरुष' मानते हैं। इनके गीतों के केन्द्र में आदिवासी समुदाय उनके गीत–संगीत, वाद्य–यन्त्र, मान्यताएं आदि हैं–

''पर्वत पर आग जला बासंती रात में
नाच रहे हैं हम तुम हाथ दिये हाथ में''[16]

इस किताब में शामिल विद्याधर द्विवेदी 'विज्ञ', डॉ. रवीन्द्र भ्रमर आदि की कविताओं में प्रेम की कोमलता, मधुरता आदि जहां केन्द्रीय जगह पाते हैं वही उमाकान्त मालवीय देवेन्द्र कुमार की कविताओं में आधुनिक राजनीति, शासन व्यवस्था की विक्रितियों–भ्रष्टाचार के बीच पिसता आम और मध्यवर्गीय व्यक्तियों की बेचारगी केन्द्र में है। उमाकान्त मालवीय की यह कविता इस विवशता को रेखांकित करती है–

''एक चिलमचोर अर्थसाधु औए नेता/
देश भक्ति के माने मूर्खता......
थोड़े लोग की जायदाद देश है/
थोड़े से लोगों का राष्ट्र है,
भारत के माने है केवल कौरव सभा/

बहुमत का मतलब धृतराष्ट्र है।
—बड़े—बड़े आश्वासन हैं
तोता—मैना के किस्से
लाठी, गोली, अश्रुगैस
इतना ही जन के हिस्से
जनता की भूमिका यही
जूठन से भात कुछ बिने।''[17]

किसी गीतकार की सबसे बड़ी पहचान जन—संघर्षों में गाये जाने वाले उसके गीतों से होती; नईम जी और गोरख पाण्डेय ऐसे ही गीतकार और कवि है। नईम जी की इस प्रतिबद्धता को वशिष्ट जी उनकी कविताओं के माध्यम से बताते चलते हैं। गरीबी, बेईमानी, सूदखोरी, भ्रष्टाचार, दलितों, किसानों और ग्रामीण स्त्रियों की पीड़ा को जितनी मार्मिकता से नईम जी रखते वैसा कम गीतकारों में देखने को मिलता है। अधिकांश गीतकारों के यहां स्त्री प्रेम के रूप में आई है लेकिन, नईम जी के यहां हर तरफ से उत्पीड़ित—उपेक्षित स्त्री की पीड़ा भी जगह पाती है, जिसे वशिष्ठ जी उद्धृत करना जरूरी समझते हैं—

''अंधकारः ससुर/सासः घिर आयी बदली सी
ननद कुंआरी सिर पर/ कांध रही बिजली सी
सूनापन, खोखले में फड़फड़ा रही तोती।''[18]

''सुरेन्द्र काले के गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है उनका विषयगत वैविध्य।''[19] इस विविधता को वशिष्ठ अनूप जी विभिन्न कविताओं के उदाहरणों से पुष्ट करते हैं। माधव मधुकर ऐसे गीतकारों में हैं 'जिन्होंने मार्क्सवाद को केवल पढ़ा ही नहीं बल्कि पचाया भी' के समर्थन में वशिष्ठ जी ढेरों कविताओं का उदाहरण देते हैं। जिनमें से एक बानगी के रूप में पेश है—

''काश कोई ऐसा दिन आये
जो धरती का दर्द मिटाये
धनपतियों के महल—दोमहले
निर्धन को रोटी के लाले
पौ बारह है आज उन्हीं की
करते हैं जो धन्धे काले।''[20]

श्रीकृष्ण तिवारी की विशेषताओं को बताते हुए वशिष्ठ जी कहते है कि वर्तमान समाज अनगिनत विसंगतियों, दोहरेपन आदि से भरा हुआ है जिसको गीतों के रूप में पिरोने का कार्य किया है श्रीकृष्ण तिवारी जी ने। जैसे—

''बाहर से हंसते हैं लोग
अन्दर से रोते हैं लोग
जाने कैसी आबोहवा
जाने ये कैसे हैं लोग''[21]

अनूप जी ने 276 पेजों में गीतकारों की जिन विशेषताओं को बताया हैं उनमें बहुत सी विशेषताएं अन्य गीतकारों जैसे माहेश्वर तिवारी, गुलाब सिंह, शान्ति सुमन, नचिकेता, यश मालीय, सुधांशु उपाध्याय बुद्धिनाथ मिश्र आदि गीतकरों में भी मिल जाते हैं। सभी गीतकारों ने गांव—देहात से जुड़ी समस्याओं, कोमल संबंधों और प्रकृति पर दिल को छू लेने वाले अनेकों गीत लिखें हैं। विशेष बात यह है कि विषय के अनुरूप इनके शब्द और भाव बदल जाते हैं। जिसे नचिकेता के दो गीतों से समझा जा सकता है—

पहली कोमलता से जुड़ी—

''गर्म रोटी की मीठी महक गीत है
आंख में जिन्दगी की झलक गीत है''[22]

दूसरी राजनीति से जुड़ी कविता—

"आपस में सिर जोड़ चुके हैं / तीनों बंदर बापू के..."[23]

प्रेम की बहुत सुन्दर कविताएं प्रकृति के सहारे इन गीतकारों ने लिखी है–

"देह हुई फागुन तो क्या हुआ
रे मितवा ! मनवा तो सावन – सावन रहा !
हमको तो सदा प्रेम – मंदिर का
हर रजकन चंदन–चंदन रहा।"[24]

संक्षेप में कहें तो ये गीतकार अपने समय और परिवेश पर पैनी नजर रखते हैं। जो कवि जिस नगर–गांव से जुड़ा है उसकी विशेषता और बदलाव को अपने गीतों में पिरोया है। काशी निवासी महेश्वर तिवारी का 'काशी' पर आधारित गीत दृष्टव्य है–

"पढ़ने लिखने का काशी में
नहीं रिवाज रहा।
उजड़ चुकी संगीत सभाएं ठहरे हैं संवाद
लोग–बाग मिलते आपस में कई दिनों के बाद
गंगा सूख रही लहरों का टूटा साज रहा।"[25]

गरीब किसान, दलित, मजदूर, स्त्रियां और बूढ़े–बच्चों की जिन्दगी इस पूँजीवादी उपभोक्तावादी संस्कृति में कितनी बेजार होती जा रही है इसे बाद के सभी गीतकारों ने केन्द्रीय विषयवस्तु के रूप में गीतों को पिरोया है। वशिष्ठ अनूप जी ने अपनी किताब गीत का आकाश में इसके बेहतरीन उदाहरण दिये हैं। जैसे उमाशंकर तिवारी का यह गीत–

"बाप मर गया, बेटे बांसुरी बजावें।
कितनी जहरीली हैं, शहर की हवायें।
किसको फुर्सत, पूछे हालत क्यों बदतर है?
बहुओं की खातिर तो वह दाखिल दफ्तर है
कभी गर पुकार हुई, सभी काट खायें।"[26]

यश मालवीय जी की यह कविता–

"घूमता है झूठ मोटर कार में
सच न मिलता धूप के अखबार में"[27]

गीत का आकाश में शामिल एक मात्र महिला रचनाकार अरुणा दुबे जी ने भी इस सामाजिक–राजनैतिक परिवर्तन को अपने गीतों में समेटा है–

"कच्ची पीली माटी गेरू से लिपी
बखरी अब सरपंच की क्वाटर बनी।"[28]

लेकिन सभी गीतकारों ने केवल शोषण नहीं बल्कि उसके प्रतिकार का हौसला भी दिया है। अरुणा जी की ही एक कविता है–

"ओरे! बंधुआ मजदूर / कुर्सी पर बैठे / इन रंगे सियारों को
अब तो पहचान ले / मरने या मारने की ठान ले।"[29]

इन गीतकारों के गीतों में जो विशेषरूप से गौरतलब है वह यह कि समय और समाज के बढ़ते क्रम में गीतकारों के गीतों से गांव–समाज और प्रकृति के सुन्दर चित्र और कोमल अनुभव कम होते गयें। उसका स्थान गांव की सूखती प्रकृति, बिलखती जिन्दगी और छीजते गीत–संगीत, पर्व–त्यौहार और नृत्य लेते गयें। उपभोक्तावादी संस्कृति और पूंजीवादी समाज में यह टूटन और बिखराव और बढ़ा परिणामस्वरूप गांवों में भी आपसी भाई–चारा कम हुआ, परिवार–समाज के विघटन से इंसान अकेला पड़ता निःसहाय होता गया। यह बदलाव बाद के गीतों के केन्द्रीय विषय बने जिन्हें, नचिकेता, गोरख पांडेय, बुद्धिनाम मिश्र, अरुणा दुबे, यश मालवीय ओम धीरज आदि की रचनाओं में साफ देखा जा सकता है–

गोरख पाण्डेय की प्रसिद्ध कविता है–

''हमरे सुगना के ले गइल बुखार सजना
नाहीं दवा–दारू नाहीं उपचार सजना
तोर मेहनत–मजूरी सब बेकार सजना
....
अब्बो गांव–गांव रहे जमींदार सजनी।
जइसे रहरी में रहेला हुड़ार सजनी।''[30]
'पैसे की बांहें हजार अजी पैसे की।'

लेकिन आस भी बनाये हैं– 'समाजवाद बबुआ धीरे–धीरे आई'

फिर भी जीवन का उल्लास, प्रेम और प्रकृति का सौन्दर्य, कोमल भावनाओं के अहसास का दामन नवगीतकारों ने कभी नहीं छोड़ा। बुद्धिनाथ मिश्र जी का गीत है–

''काल लेता है परीक्षा, तू न घबराना
घास की रोटी अभी तेरे लिए राणा।''[31]

यह है नवगीतकारों का जीवन के प्रति लगाव जिसे वशिष्ठ अनूप जी अपनी किताब के अन्त में लिखते हैं कि ''इन गीतों की एक बात जो ज्यादा अच्छी लगती है वह यह है कि कवि हर हाल में आशावादी है और अंधकार के विरुद्ध प्रकाश की तलाश करता है– 'चल अंधेरे में, ढूढ़े अंजोर/आज कहता है मन का चकोर।' वह 'नये रिश्ते बनाने', 'सूखते अधरों पर हास खिलाने', नयी–नयी कल्पनाएं बोने– 'पतझड़ के पीले पत्तों पर जीवन का अनुप्रास' लिखने, 'विग्रह और विच्छेद की जगह सन्धि और समास' लिखने और हर प्रकार के आतंक का सत्यानाश करके एक 'उज्ज्वल आकाश' लिखने तथा एक बेहतर समाज बनाने के लिए प्रयासरत है।''[32]

वशिष्ठ अनूप जी की इस किताब का यह महत्व है कि आप गीतकारों की पूरी परंपरा को मात्र 273 पृष्ठों को पढ़कर जान सकते हैं। गीतों के उदाहरणों से इन्होंने गीतकारों के विश्लेषण को बहुत ही सरल और सहज भाषा में पूरी प्रमाणिकता से रखा है। सभी गीतकारों का क्रमवार पूरी समग्रगता में उनके गीतों का विश्लेषण इस किताब की महत्वपूर्ण विशेषता है। पूरे हिन्दी साहित्य के इतिहास में जब इन गीतकारों को उपेक्षित किया जा रहा हो तो ऐसे में इस तरह की किताबें हिन्दी साहित्य की उपेक्षित धारा को इतिहास के दायरे में लाने का प्रयास करती हैं और हिन्दी साहित्येतिहास को संपूर्णता प्रदान करती हैं। सम्पूर्णता की एक कड़ी के रूप में वशिष्ठ अनूप जी की इस किताब 'गीत का आकाश' को देखा–पढ़ा जा सकता है।

संदर्भ सूची :–

1. गीत का आकाश, वशिष्ठ अनूप, कवर पेज, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, 2010।
2. गीत का आकाश, वशिष्ठ अनूप, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, 2010, पेज नं.14।
3. उपरोक्त, पेज नं.25।
4. उपरोक्त, पेज नं.40।
5. उपरोक्त, पेज नं. 52।
6. उपरोक्त, पेज नं. 53
7. उपरोक्त, पेज नं. 56।
8. उपरोक्त, पेज नं. 66।
9. उपरोक्त, पेज नं. 60।
10. उपरोक्त, पेज नं. 62।
11. उपरोक्त, पेज नं. 70।
12. उपरोक्त, पेज नं. 71।
13. उपरोक्त, पेज नं. 72।
14. उपरोक्त, पेज नं. 75।
15. उपरोक्त, पेज नं. 75।
16. उपरोक्त, पेज नं. 78।
17. उपरोक्त, पेज नं. 82।
18. उपरोक्त, पेज नं. 88।
19. उपरोक्त, पेज नं. 102–103।
20. उपरोक्त, पेज नं. 146।
21. उपरोक्त, पेज नं. 147।
22. उपरोक्त, पेज नं. 153।
23. उपरोक्त, पेज नं. 164।
24. उपरोक्त, पेज नं. 213।
25. उपरोक्त, पेज नं. 218।
26. उपरोक्त, पेज नं. 218।
27. उपरोक्त, पेज नं. 171।
28. उपरोक्त, पेज नं. 196।
29. उपरोक्त, पेज नं. 265।
30. उपरोक्त, पेज नं. 253।
31. उपरोक्त, पेज नं. 255।
32. उपरोक्त, पेज नं. 227।
33. उपरोक्त, पेज नं. 237।
34. उपरोक्त, पेज नं. 276।

ஐ★ଓ

हर तरह के जज़्बात का एलान हैं आँखें

डॉ. मुंकेश कुमार शुक्ल

आँखें मानवीय बोध के सम्प्रेषण का एक जीवंत माध्यम है मसलन– आँखें बिछाना, आँख उठाना, आँख दिखाना, आँखें फेरना, आँखें लड़ना, आँखें तरेरना, आँख में खटकना, आँखों की किरकिरी, आँखों का तारा, आँखें सेंकना, आँख खुलना, आँख आना, आँख गड़ना, आँख गड़ाना, आँख चुराना, आँख लगना, आँखें लगाना, आँख मारना, आँखें चमकाना, आँखें हरी होना, आँखें लाल–पीली होना, आँखों में बसाना, आँखों में बसना, आँख का काँटा, आँख पर पर्दा, आँखें खुलना इत्यादि चेतना और संप्रेषण के अन्यान्य पर्याय आँखों के इर्द–गिर्द व्याख्या हेतु शरणागत होते हैं। ऐसी ही एक रचना जिसका शीर्षक है **'तेरी आँखें बहुत बोलती हैं'** जो एक ग़ज़ल संग्रह है। इसके कहनकार डॉ0 वशिष्ठ द्विवेदी हैं जो वशिष्ठ 'अनूप' उपनाम से ख्यातिलब्ध हैं। इस ग़ज़ल संग्रह का शीर्षक ही सामाजिक अभिव्यंजना की व्यंजना से परिपूर्ण है जो सर्वथा उपयुक्त है। इसमें 90 ग़ज़लों का संकलन–संग्रह है जिसमें तेरी, मेरी नहीं बल्कि 'उसकी' बात पर अधिक ज़ोर दिया गया है। वशिष्ठ अनूप के ग़ज़लों का केन्द्र बिन्दु यहीं अन्य पुरुष है और उसमें 'उसकी' बात को गज़लकार बड़ी मार्मिकता से उभारते हैं। अशोक रावत का एक शेर है–

"साँप ने काटा जिसे उसकी तरफ कोई नहीं।
लोग साँपों की तरफ हैं या सपेरों की तरफ।"

वशिष्ठ अनूप एक संवेदनशील व्यक्ति के तौर पर भी और एक रचनाकार के तौर पर भी उस व्यक्ति की तरफ हैं जिसे साँप ने काटा है इसीलिए वे उसकी आँखों की कातरता की भाषा पढ़ते हैं और उसे अपनी रचनाओं में आवाज़ देते हैं। क्योंकि आँखों की भाषा पढ़ना, उसके मर्म तक पहुँचना किसी कला के क्षेत्र में नहीं बल्कि मानवता के प्रति प्रतिबद्धता के रूप में चिन्हित किया जाता है ये गुण प्रकृति ने केवल सृजनकर्ता में अभिहित किया है अब चाहे वो सृष्टि हो, माँ हो या रचनाकार। जिसने जन्म दिया है वह जीवन की पीड़ा को जितनी गहराई से महसूस करता है उतना सतह पर बैठा हुआ आदमी कभी महसूस नहीं कर सकता। क्योंकि आजकल तो–

"हम सुसंस्कृत हो गए जबसे/रोज़ इक चेहरा बदलते हैं।" –शिव ओम अंबर

हमारा सभ्य होना ही हमारे मानव होने में बाधा बनकर खड़ा है। वशिष्ठ अनूप इन बाधाओं से मुक्त हैं और ऐसे ही समाज का स्वप्न देखते हैं जिसमें विकास के नाम पर विनाश का क्रूर खेल न खेला जाता हो वे कहते हैं–

"यह रथ प्रगति का जा रहा किस ओर है मियाँ
अँधियारा सारे देश में घनघोर है मियाँ
पढ़–लिख के अभी सभ्य कहाँ हो सके हैं हम
हर बात पे अब भी तो तोर–मोर है मियाँ।"

वर्तमान समय में सांप्रदायिका का विकास हुआ, विभाजन बढ़ा, असहिष्णुता बढ़ी, भौतिक विकास के साथ आत्मिक विघटन की इस निर्मम प्रक्रिया के प्रति उदासीन पक्ष के लिए कहते हैं–

वह हाथ जो गढ़ता है हुकूमत के नाक–नक़्श
वह हाथ क्यों लगता बहुत कमज़ोर है मियाँ।

तार्किक बात है कि जब हुकूमत के हाथ कमज़ोर होंगे, वे स्वार्थवश किसी खास वर्ग के लए अपनी नीतियाँ और प्रशासन को अधिक सुलभ बनाएंगे ऐसे में उस तीसरे व्यक्ति का क्या होगा जो राष्ट्र प्रेम में भूखे पेट रहकर भी भारत का झण्डा पकड़ कर राष्ट्र गीत गाता है। कौन सोचेगा उस निरीह के लिए जो फटा सुथन्ना पहने हुए भी निरन्तर देश और मानव हित के लिए जूझ रहा है। अभाव में भर कर भी, रोटी पर नमक तेल रखकर खाकर भी आशावान बना हुआ है। कौन उसके हित की सोचेगा? कौन उसके अभाव को संज्ञान में लेगा? इस प्रकार कवि की चिन्ता उन कातर आँखों में तैरते स्वप्न के प्रति भी है जिसके बारे में सभी जिम्मेदारों ने आँखें फेर ली हैं। कवि कहते हैं–

लूट व्यभिचार क्यों दिखता नहीं है
ये भ्रष्टाचार क्यों दिखता नहीं है
गुमटियों की तलाशी में लगे हो
बड़ा व्यापार क्यों दिखता नहीं है
अपहरण, तस्करी, हत्या बढ़ी है
ये कारोबार क्यों दिखता नहीं है
तुम्हारे ही हैं सब चेले–चपाटी
ये बंटाधार क्यों दिखता नहीं है।

जब सत्ता धृतराष्ट्र रहेगी और आँखों पर स्वार्थ की पट्टी बंधी होगी तो शासन के शकुनी अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु सारी गोटियों पर अपनी ही चाल चलेंगे। जिसमें चित्त भी उनकी होती है और पट भी उनका। ऐसी स्थिति में धर्म युद्ध की तो बात ही छोड़ दीजिए अन्याय का विरोध करने, शासन के विरुद्ध जाने का साहस जुटाना भी बड़ी प्रतिक्रियात्मक बात होती है। लेकिन जैसी आबो हवा है उसमें तो नज़्मानिगार अनूप को स्थितियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं वे कहते हैं–

किसे फुर्सत है सोचे इस चमन की
तरक्की आँकड़ों में है वतन की
कमाई कुछ घरानों की बढ़ी है
किसे चिन्ता पड़ी है आम जन की।

एक पुराना देशभक्ति गीत याद आ रहा है– ''वतन के नाम पे वतन के नौजवाँ शहीद हो.....। और समय क्या चल रहा है...? वतन के नाम पे यहाँ पे लूट और खसोट हो।'' राष्ट्र के विकास के नाम पर जो लूटमार मची है, जो घोटाले और भ्रष्टाचार रोज़ रोज सामने आ रहे हैं उसे देश का हर नागरिक बक़ायदा वाकिफ़ है। महंगाई, रोज़गार, शिक्षा, स्वास्थ जैसी मूलभूत सुविधाओं और समस्याओं का निराकरण करने में प्रशासन को कोई दिलचस्पी नहीं है। कवि नेता जी का मुसद्दी लाल के साथ गठजोड़ को भली–भाँति समझ रहा है इसलिए कहता है कि तरक्की केवल आँकड़ों के गिना भर दी जाती है ज़मीनी स्तर पर हक़ीकत को छुपाया जाता है क्योंकि ख़ास वर्ग को लाभ देने की तरफ अधिक रूझान रहता है।

कहीं पर फूल–तितली रंग झंकारों की बातें हैं
कहीं पर भूख, रोटी, दर्द, अंगारों की बातें हैं
गरीबों की उजड़ती झोंपड़ी की फिक्र किसको
वहाँ तो गगन चुम्बी भवन मीनारों की बातें हैं।
यहाँ जम्हूरियत है सिर्फ कागज़ और भाषण में
हक़ीकत में डकैतों और सरदारों की बातें हैं।

सागर सिद्दकी के शब्दों में–

'ऐ हुस्न–ए–लाला–फ़ाम! ज़रा आँख तो मिला'

शासन के द्वारा भ्रष्टाचार, परिवारवाद, सांप्रदायिकता इत्यादि विचारधारा को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से बढ़ावा दिए जाने के कारण भी कवि क्षुब्ध नज़र आते हैं। उनके भीतर का ये क्षोभ विभिन्न रूपों में उनकी ग़ज़लों में दिखाई देता है। वे कहते हैं–

शातिराना शराफ़त नहीं चाहिए
दुश्मनों की इनायत नहीं चाहिए
प्यार से दिल धड़कते न हों जिस जगह
ऐसी बेशर्म ज़ीनत नहीं चाहिए
हम पसीने के दम पर उगाते खुशी
भीख में कोई दौलत नहीं चाहिए
वक्त के साथ बनती नई राह है
जंग खाई हुई रवायत नहीं चाहिए

एक दरवेश की ज़िन्दगी ठीक है
ख़ूँ–रँगी बादशाहत नहीं चाहिए।

या यूँ कहिए कि–

अब उठाओ नक़ाब आँखों से– साबिर दत्त

कवि वक्त के साथ नई राहों के हिमायती हैं उन्हें जंग लगी पुरानी रवायतों वाली राह नहीं चाहिए। कहा भी गया है कि–

लीक–लीक गाड़ी चलै/लीके चलै कपूत
लीक छाड़ि तीनों चलै/सायर सेर सपूत।

ये शायर, ग़ज़लकार अपनी राह चुनते हैं भले ही उसमें अभिव्यक्ति के खतरे उठाने हों और मठों और गढ़ों के विरूद्ध जाना पड़े। उन्हें दुश्मनों की इनायत से कोई सरोकार नहीं है। अपने पुरुषार्थ पर कवि को इतना भरोसा है कि स्वाभिमान में भर के कहते हैं कि भीख में मिली खैरात नहीं चाहिए। नज़्मनिगार 'अनूप' स्वयं को कबीर, तुलसी की संत परंपरा का वारिस मानते हैं। ग़ज़ल संग्रह का पहला शेर ही है।

तुलसी के, जायसी के, रसखान के वारिस हैं
कविता में हम कबीर के ऐलान के वारिस हैं।

ये शेर ग़ज़लकार की अपनी साहित्यिक परंपरा के प्रतिबद्धता का सूचक है। यह प्रतिबद्धता, ये जिम्मेदारी कवि की आत्मा में समायी हुई है वह केवल कहने के लिए नहीं कहते, लिखने के लिए नहीं लिखते क्योंकि यदि वे ऐसी कृत्रिमता ओढ़ कर रचना में प्रवृत्त होते तो सीकरी के आगे सर उठाने की हनक उनमें नहीं होती। रचनाकार की दृढ़ता का पता ही इस बात से चलता है कि वे सीधे सीधे ऐलान करते हैं। वे कहते हैं–

हम शब्द–सारथी हैं हर वक्त इक समर में
हम पाश व सफ़दर के अरमान के वारिस हैं।

जिसे अपने कर्तव्य का बोध हो उसमें आत्मविश्वास की कोई कमी नहीं दिखाई देती और जो आत्मविश्वास से भरा हो वह स्वाभिमानी ही होगा और स्वतंत्रता की भावना से भरा हुआ क्रांतिकारी होगा। कवि कहते हैं–

सीने में दिल हमारे आज़ाद का धड़कता
हम वीर भगत सिंह के बलिदान के वारिस हैं।

यदि हम उपर्युक्त तीनों उद्धरण की व्याख्या साहिर के शब्दों में करें तो– **'हर तरह के जज़्बात का एलान है आँखें'**

जो स्वयं को क्रांतिकारियों का वारिस स्वीकार करता है वह अपने रचनाओं में, कर्म में, सृजन में कितना ईमानदार और सजग है ये बताने की आवश्यकता नहीं क्योंकि उसकी सृजनशीलता उसके विषय, उसके द्वारा चयनित शब्द उसके भावों को बड़ी सहजता से उसकी आन्तरिक बेचैनी को अभिव्यक्ति दे देते हैं।

90 ग़ज़लों का यह संग्रह जीवन के कई उतार–चढ़ावों से गुज़रता हुआ आगे बढ़ता है। जिसमें सत्ता के प्रति आक्रोश है, तो पर्यावरण की चिंता भी है। उत्तर आधुनिकता के दौर में उपभोक्ता बने मनुष्य की चिंता भी है। बदलते जलवायु के कारण मनुष्य को होने वाली समस्याओं का ज़िक्र है तो बाज़ार बने सपनों की विडम्बना भी है इन्हीं के बीच कवि को सौन्दर्य और प्रेम स्वतंत्रता और स्वाभाविकता, सहज सृजनशीलता की उर्वर भूमि भी दिखाई दे जाती है। जिस पर कवि का अटूट विश्वास है।

इनकी ग़ज़लों में प्रेम और सौन्दर्य का चित्रण मर्म को स्पर्श करने वाला है यह सौन्दर्यबोध उथले शारीरिक आकर्षण का नहीं बल्कि अन्तरात्मा को प्रक्षालित कर उसे प्रकाशमान करने वाला प्रेम है।

कोई एहसास दिल में एक–ब–एक प्यारा सा होता है
तुम्हें जब सोचता हूं मन में उजियारा सा होता है।

ये पंक्तियाँ 'राम की शक्तिपूजा' के उस पंक्ति की याद दिलाती हैं जिसमें रावण से युद्ध करके लौटे श्रमित राम को जब सीता की याद आती है तो उनके भीतर बिजली की त्वरा उत्पन्न हो जाती है और युद्ध में किया गया सारा श्रम भूल जाता है।

''ऐसे क्षण अंधकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी–तनया–कुमारिका–छवि,
अच्युत देखते हुए निष्पलक, याद आया
उपवन विदेह का– प्रथम स्नेह का
लतान्तराल मिलन।
नयनों का नयनों से गोपन–प्रिय संभाषण।''

भीषण युद्ध के बीच, सीता की स्मृति का आना राम सीता के परस्पर प्रेम और उस प्रेम से उपजे प्रकाश का प्रतीक है जिसके आलोक में राम इस अमानिशा और घनघोर अंधकार में भी प्रकाश पाते हैं। यह प्रेम अद्भुत है, दिव्य है। जो चेतनामय बना दे। जो छन्दमुक्त कर दे। आगे कवि कहते हैं कि–

नई उम्मीद जगती है, नई आशा जनम लेती
मनोबल फिर प्रबल हो जाता जो हारा सा होता है।

निस्वार्थ एवं निश्छल प्रेम की ये पहचान होती है कि वह ऊर्ध्वाकार होता है और उसके ताकत के बल पर मनुष्य के भीतर से सारे विकार नष्ट हो जाते हैं तथा वह सभी क्षुद्र वासनाओं को छोड़कर प्रेम की विराटता का दर्शन करके अपनी क्षुद्रता से मुक्ति पा जाता है। वस्तुतः संतों द्वारा इसे ही मोक्ष कहा गया है।

तुम्हें ख़्वाबों में पाकर ख़्वाब मेरे धन्य हो जाते
ठिकाना मन को मिल जाता जो बंजारा सा होता है।

जीवन में धन्यता का अनुभव तभी होता है जब हम एकनिष्ठ और निष्काम प्रेम पा जाते हैं वहीं सच्ची भक्ति और जीवन का वास्तविक आनन्द है। जहाँ दुनिया–जहाँ के भटकन से मुक्ति मिल जाती है। क्योंकि प्रेम में पगा हुआ व्यक्ति सांसारिक मोह से अछूता हो जाता है उसके लिए सुख–दुख दोनों एक बराबर हो जाते हैं।

हर तरफ फूल–फूल खिल जाते/ इक हसीं कायनात होती है।
आपसे जब भी बात होती है/ खूबसूरत हयात होती है।

कवि के ग़ज़लों से यह प्रकट होता है प्यार उनके लिए बाज़ार में बिकने वाली कोई वस्तु नहीं है उसे प्राप्त करने के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करना होता है। जैसे कबीर कहते हैं– ''कबीरा यह घर प्रेम का खाला का घर नाहि'' यहाँ अपना सर कटाकर प्रवेश करना पड़ता है तब प्रवेश मिलता है। अर्थात् प्रेम करना और प्रेम निभाना कोई हँसी खेल नहीं है यह जोखिम भरा काम है इसीलिए वशिष्ठ अनूप भी कहते हैं–

प्यार करना इबादत है मेरी/इसमें कोई बुराई नहीं है
जान देकर मिली है मुहब्बत / मुफ्त में यह कमाई नहीं है।

प्यार की गंभीरता और उसकी जिम्मेदारी को समझने वाला व्यक्ति ही इतनी गहरी बात कह सकता है।

आज के दौर में जब व्यक्ति का स्वभाव शेयर बाज़ार की तरह उतरता–चढ़ता है ऐसे में मनुष्य की विश्वसनीयता पर अविश्वास बढ़ा है। उसकी स्वाभाविक वृत्ति प्रेम, दया, त्याग, करुणा, परोपकार का ह्रास हुआ है। ग़ज़लकार इस क्षरण से आन्तरिक रूप में आहत हैं और वे अपनी लेखनी की ज़बान से इसे अभिव्यक्त भी करने का पुरजोर प्रयास करते हैं– इस प्रयास में एक स्वाभिमान भी झलकता है जो उनके साहित्य कर्म में दिखाई दे जाता है–

ये ग़ज़ल ग़ज़ालचश्मों से गुफ़्तगू नहीं है
यह है मेरे अहद के ज़ख्मों की तर्जुमानी

यही बात दुष्यंत कुमार भी कहते हैं–

मैं जिसे ओढ़ता–बिछाता हूँ /वो ग़ज़ल आपको सुनाता हूँ

उनकी ग़ज़लें उनकी मार्मिक चेतना की गवाह हैं जो बिल्कुल निडर होकर प्रत्यक्ष होती हैं वे कहते हैं–

मेरी कविता बग़ावत बिगुल है/ निर्बलों की दुहाई नहीं है।

अपनी कविता को अपनी ताकत समझते हैं कवि। यहाँ पर सफदर हाशमी अनायास ही याद आ जाते हैं– 'अ, आ, इ, ई, को हथियार बनाकर लड़ना सीखो' शब्दों को भाषा में पिरोकर उसे विरूद्धों के बीच सामंजस्य बनाने के लिए लड़ने की प्रेरणा देने वाली ग़ज़लें वशिष्ठ अनूप की हैं।

मेरा हर शब्द है सच बयानी/ कल्पना की बनाई नहीं है।

इन सारी बातों के बीच कवि ये बताना नहीं भूलते कि ये सारी अभिव्यक्तियों की छोटी–छोटी पोटलियों में झूठ या कल्पना नहीं है बल्कि कवि की अनुभवजन्य चेतना से उपजी हुई काव्य शृंखला है।

इस ग़ज़ल संग्रह में 8 से लेकर 20 शेरों वाली ग़ज़लें हैं जिनकी ख़ासियत है कि प्रत्येक शेर अपनी बात पूरी करते हुए मुकम्मल लगता है। इनके ग़ज़लों की सबसे बड़ी विशेषता मुझे यह लगी कि इसमें वक्रोक्ति का बड़ा सुन्दर प्रयोग किया गया है। कविताओं में जहाँ हम बिम्ब या प्रतीक निर्मिति पर अधिक जोर देते हैं, शेर में वक्रोक्ति की योजना ही उसमें अधिक मारक क्षमता का समावेश करती है।

हर ओर द्रोपदी के क्रन्दन भरे हुए हैं
फिर चुप है हस्तिनापुर, फिर है वही कहानी
इक्कीसवीं सदी के मानव के आचरण पर
ग़मगीन है सुयोधन रावण है पानी–पानी।

वक्रोक्ति के साथ व्यंग्य की शानदार और मार्मिक योजना भी इस ग़ज़ल संग्रह को बहुत आकर्षक और पठनीय बनाता है–

भूख डायन–सी झपट्टे मारती, गुर्रा रही है
एक औरत बुझ–रही सी आग को सुलगा रही है।
भूख से बेहाल बच्चा है ज़मीं पर लोटता
वह उसे चंदा दिखाकर देर से बहला रही है।

यथार्थ बोध को स्वप्नलोक से निकालकर ग़ज़ल में पिरोने वाले रचनाकार वशिष्ठ अनूप के इस रचना को पूरा पढ़कर अमीक़ हनफ़ी का एक शेर बरबस याद आता है–

उन आँखों में डालकर जब आँखें उस रात
मैं डूबा तो मिल गए डूबे हुए जहाज़ सारे।

कोई भी रचना मकान नहीं होती उसकी व्याख्याकार या आलोचक उसे महान बनाते हैं। आलोचन दृष्टि का यह विशेषांक वशिष्ठ अनूप के रचना कर्म–संसार को उनकी नज़र करके रचनाकार की दुश्वरियाँ दूर करता है। रश्मिरेखा के शब्दों में–

क्या कभी मुमकिन है
अपनी नज़र को अपने ही चश्मे से देखना

वास्तव में यह सम्भव ही नहीं होता सो इस चश्मे बद्दूर विशेषांक की सम्पादक मण्डल को बधाई और साधुवाद।

समग्र रूप से मानवीय संवेदनाओं को जगाता हुआ वशिष्ठ अनूप का यह ग़ज़ल संग्रह अपने समय का एक जरूरी पठनीय पुस्तक के रूप में हमारे समय और साहित्यिक समाज के लिए एक उपलब्धि के रूप में उपस्थित है। यदि मैं राहत इन्दौरी की मदद लूं तो इस ग़ज़ल संग्रह के लिए कहा जा सकता है कि–

उसकी कत्थई आँखों में है, जादू मंतर सब,
चक्कू, वक्कू, छुरियाँ, वुरियाँ, खंजर, वंजर सब।

✶

समकालीन समय में साहित्य एवं ग़ज़ल की महनीयता

प्रो. वशिष्ठ अनूप से **उपेन्द्र कुमार मिश्र** की बातचीत

प्रश्न : 1. ***आज ग़ज़ल हिंदी काव्य की मुख्य विधा के रूप में स्थापित होने की ओर अग्रसर है, जबकि कहा जाता है कि आलोचकों ने हिंदी ग़ज़ल की सदैव उपेक्षा की है। क्या आप इस बात से सहमत हैं? यदि हाँ, तो उपेक्षा के बावजूद ऐसा कैसे संभव हो पा रहा है?***

उत्तर : यह बिल्कुल सही है कि हिंदी ग़ज़ल मुख्य विधा के रूप में स्थापित हो रही है और कविता के केंद्र में आ रही है, लेकिन यह अपनी ताकत से आ रही है। हिंदी ग़ज़ल की यथार्थ और जीवंत अंतर्वस्तु, तथा बेबाक और धारदार अभिव्यक्ति–शैली पाठकों और श्रोताओं को पसंद आ रही है। हिंदी ग़ज़ल में अपने घर–परिवार की बातें, जीवन–संघर्ष और इसकी संप्रेषणीयता के कारण इसे स्वीकृति मिल रही है। यह जनता से सीधे संवाद कर रही है। इसके लिए आलोचक जैसे सेतु या माध्यम की ज़रूरत नहीं है। कोई भी रचना आलोचना से महत्वपूर्ण नहीं हो जाती। ग़ज़ल पर लिखने के लिए उसके अनुशासनों और शास्त्रीय पक्ष का ज्ञान भी आवश्यक है, लेकिन कविता के तमाम आलोचकों को उसकी जानकारी नहीं है। गद्यात्मक कविता पर लिखना आसान होता है। एक सुखद बात और हुई है कि ग़ज़ल के कारण कविता फिर से पहले की तरह सुनी जाने लगी है।

प्रश्न : 2. ***आजकल ग़ज़ल बहुतायत में लिखी जा रही है। सोशल मीडिया पर ग़ज़लकारों की बाढ़–सी आ गई है। ग़ज़ल के जानकार इसे लेकर चिंतित दिखाई देते हैं। उनका मानना है कि जो कुछ लिखा जा रहा है, उनमें से अधिकांश को ग़ज़ल नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वे ग़ज़ल की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। अंततः इससे ग़ज़ल को ही नुकसान होगा। इसके बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?***

उत्तर : बिल्कुल, यह एकदम सही है। कोई भी विधा जब लोकप्रिय होती है, तो उसके प्रति रचनाकारों का रुझान बढ़ जाता है। सोशल मीडिया पर तो कुछ भी लिखकर पोस्ट कर दिया जा रहा है। कुछ गीतकार, कथाकार और मुक्तछंद के कवि भी कुछ ग़ज़लनुमा जोड़ने लगे हैं। गीतकारों को तो छंदों की जानकारी है, लेकिन अन्य विधाओं के लोगों की ग़ज़लों में न छंद दुरुस्त होता है न काफ़िया–रदीफ। ऐसे लोगों को हम रोक नहीं सकते। उन्हें समय ही रोकेगा। मेरे पास व्यक्तिगत रूप से लोग ऐसी ग़ज़लें भेज देते हैं। यहां तक कि एक मिसरा अलग बहर (बह्र) में होता है और दूसरा अलग बहर में। शेर भी अलग–अलग छंदों में होते हैं। नए लोगों को तो समझाया जा सकता है। वे मान भी जाते हैं। लेकिन वरिष्ठ कथाकार और कवि समझाने पर बातचीत बंद कर दे रहे हैं। पाठक ऐसे लोगों की नोटिस नहीं लेते। वक्त इन्हें बाहर कर देगा। मुक्त छंद की कविता में भी तो बनावटी कवियों की भरमार है। इससे ग़ज़ल का नुकसान नहीं होगा। टिकेगा वही जिसकी अंतर्वस्तु और शिल्प दोनों बेहतर होंगे। जो प्रतिभा और ईमानदारी से रचेगा, वही बचेगा।

प्रश्न : 3. ***इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि ग़ज़ल लेखन में ग़ज़ल के नियमों का पालन होना चाहिए, लेकिन शिल्प के कठोर अनुशासन के चक्कर में निष्प्राण ग़ज़ल लिखना कहाँ तक उचित है? सामान्य पाठक या श्रोता, जब किसी ग़ज़ल को पढ़कर या सुनकर वाह–वाह कहता है, तो ऐसा वह किस आधार पर करता है? जबकि उसी ग़ज़ल को ग़ज़ल के जानकार उसमें शिल्पगत दोष निकालकर उसे ग़ज़ल मानने तक से इंकार कर देते हैं।***

उत्तर : आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। नियमों और अनुशासन के पालन के चक्कर में निष्प्राण ग़ज़लें नहीं लिखी जानी चाहिए। ग़ज़ल या कविता में कथ्य ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है। कथ्य की प्रस्तुति के लिए शिल्प सहयोगी होता है। कोशिश यह होनी चाहिए कि अंतर्वस्तु और रूप अर्थात् विषय–वस्तु और छंद, काफिया, रदीफ, अंदाज–ए–बयां और शब्द–संयोजन सब दुरुस्त हों, लेकिन कभी–कभी कथ्य की रक्षा के लिए शिल्प को दरकिनार देना पड़े तो चलेगा। मैं तो ऐसा ही सोचता और करता हूँ। शिल्प के लिए कथ्य की कुर्बानी नहीं दी जा सकती। जूते के लिए पैर नहीं कटवाया जा सकता। कुछ चमत्कारी और कलावादी लोगों का ध्यान सिर्फ शिल्प पर होता है। वे ग़ज़ल का बढ़िया ताबूत बनाकर मुर्दा कथ्य भर रहे हैं। जिन्हें पाठक या श्रोता स्वीकार नहीं करते। ऐसी कलाकारी उन्हें ही मुबारक हो। मैं तो किसानों, मजदूरों और आम आदमी का प्रवक्ता हूँ। इसीलिए भावों के आवेग में कहीं शिल्प में तोड़–फोड़ हो जाए तो चलेगा। ऐसा दुष्यन्त कुमार, अदम गोंडवी और बल्ली सिंह चीमा आदि समर्थ ग़ज़लकारों ने भी किया है। मैं तो उन्हीं की परंपरा में चल रहा हूँ।

प्रश्न : 4. ***कहा जाता है कि कवि की असली पहचान उसकी कविता होती है। साहित्यकार अपने साहित्य के द्वारा ही पहचाना जाता है। फिर लोग आलोचकों या बड़े साहित्यकारों की परिक्रमा क्यों लगाते हैं? क्या उन्हें अपने साहित्य पर भरोसा नहीं होता? बीते कुछ दशकों में इस धारणा को बल मिला है कि आलोचकों या बड़े साहित्यकारों की अनुकंपा प्राप्त कर साहित्य के क्षेत्र में स्थापित हुआ जा सकता है। कुछ लोग कई उदाहरण भी देते हैं। आपका क्या मानना है?***

उत्तर : यह निर्विवाद सत्य है कि कवि की पहचान उसकी कविता ही होती है और अंततः वही बचती है। इसमें मैं यह भी जोड़ना चाहता हूँ कि लंबे समय तक वही कविता बचती है जो लोक के हृदय और कंठ से बस जाती है। आलोचक किसी को स्थापित नहीं कर सकते। वैसे इस समय कोई निष्पक्ष, महत्त्वपूर्ण और ईमानदार आलोचक है भी नहीं। कुछ वरिष्ठ लोग हैं जिन्होंने पढ़ना–लिखना बंद या बहुत कम कर दिया है। जिनकी कविता कमजोर होती है और जिन्हें अपनी कविता पर भरोसा नहीं होता, वही आलोचना की बैसाखी तलाशते हैं। पिछले समय में कुछ आलोचकों ने कुछ ऐसे ही कवियों को डिठौना लगाकर उन्हें गोद में लिया था और कंधे पर बिठाकर उछाला भी था, लेकिन बाद में उनका पता नहीं चला। ऐसे आलोचकों की विश्वसनीयता भी समाप्त हो जाती है। मैं ऐसे कई नाम गिना सकता हूँ जिन कवियों पर आलोचकों ने कुछ नहीं लिखा, लेकिन वह जनता के बीच जीवित हैं। हरेराम समीप, पंकज गौतम, ज़हीर कुरेशी, अनिरुद्ध सिन्हा, श्रीधर मिश्र, भावना, मधु खराटे और कमलेश भट्ट कमल आदि ग़ज़लों पर ईमानदारी से आलोचनाएँ लिख रहे हैं।

प्रश्न : 5. ***इसी से जुड़ा एक सवाल और – साहित्य के क्षेत्र में बढ़ते मठ और गिरोह के बारे में। पहले विचारधारा के नाम पर साहित्यिक संघ बने और आगे चलकर वे भी मठ और गिरोह में तब्दील हो गए। उनका अपना–अपना साहित्य है और अपने–अपने साहित्यकार। वे दूसरे गुट के साहित्य को न तो पढ़ते हैं और न तो उनके साहित्यकार को साहित्यकार मानते हैं। उससे भी बड़ी चिंता की बात है, उनके द्वारा पाठकों को भी गुट या गिरोह में बांटने की कोशिश। इस साहित्यिक असहिष्णुता के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे? क्या ग़ज़ल के क्षेत्र में यह सब नहीं हो रहा है?***

उत्तर : आपकी बात शत–प्रतिशत सही है। संगठन, गिरोह, मठ सब बनते रहे हैं और इस समय भी हैं। हालांकि संगठनों में विचारों का ताप अब नहीं रहा। इधर विमर्शों के नाम पर जातियों के गुट बने हैं जो साहित्य के नाम पर गाली–गलौज कर रहे हैं। उन्हें यह नहीं पता है कि गालियां और धमकियां साहित्य नहीं होतीं। कोई संगठन किसी को साहित्यकार नहीं बना सकता। रचनात्मक प्रतिभा के बिना कोई कवि नहीं हो सकता। आज बहुत सारे कवि अपने अलावा किसी की भी कविता नहीं पढ़ते, अपने गुट के लोगों की भी नहीं। गिरोह बनाने की गंदगी ग़ज़ल में भी फैल रही है लेकिन इनकी संख्या कम है। चार–पाँच स्तरहीन ग़ज़लकार आनन–फानन में तुरन्त स्थापित होना चाहते हैं और सुना है कि उनमें से एक ने तो अपने नाम से ग़ज़ल युग की घोषणा भी कर दी है। ये सब बचकानी और हास्यास्पद बातें हैं। कुछ साझा संग्रहों में भी गुटबंदी की प्रवृत्ति दिखी। पिछले दिनों एक पुरानी पत्रिका का ग़ज़ल विशेषांक आया जिसमें आलोचकों के पास चार–पाँच ग़ज़लकारों के संग्रह भेजकर उन्हीं को आधार बनाकर लेख लिखने को कहा गया। जिन्हें कोई नहीं पूछता, उन लोगों ने लिखा भी। मेरे पास तो बुजुर्ग संपादक महोदय ने अपने तमाम शेर अलग से भेज दिये थे और उनके आधार पर 'हिन्दी ग़ज़ल में मिथक' विषय पर लिखने को कहा था। जब मैंने वैसा न लिखकर दूसरा लेख लिखकर भेज दिया तो उन्होंने उसे नहीं छापा। उन लोगों ने जिंदगी से जुड़ा ऐसा कोई शेर नहीं कहा है कि पाठक उनकी चर्चा करें। हिन्दी के युवा पाठक बहुत प्रतिभाशाली और समझदार हैं। वे सब जानते हैं। यह छल–छद्म ज्यादा दिन नहीं चलने वाला। असफल, अयोग्य और हताश लोग षड्यंत्र करते हैं। जो लोग सचमुच पढ़–लिख और रच रहे हैं, वे गुटबंदी क्यों करेंगे?

प्रश्न : 6. ***आजकल हिंदी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल के नाम पर भी विवाद पैदा करने की कोशिश की जा रही है। ग़ज़लकारों को भी इन दो खेमों में बाँटा जा रहा है। अब तो यहाँ तक कहा जाने लगा है कि हिंदी ग़ज़ल ही समकालीन यथार्थ को सशक्त रूप से व्यक्त कर रही है। यह कहने के पीछे आशय शायद उर्दू ग़ज़ल की तुलना में हिंदी ग़ज़ल के महत्त्व और श्रेष्ठता को रेखांकित करना है। क्या आप इस बात से सहमत हैं? क्या हिंदी ग़ज़ल को पूर्णतया उर्दू ग़ज़ल से अलग कर देखा जा सकता है?***

उत्तर : हिन्दी और उर्दू ग़ज़ल के आदि पुरुष अमीर खुसरो हैं। मध्यकाल में हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा बहुत विरल है। आधुनिक काल में भारतेन्दु से यह परम्परा फिर एक लय पकड़ती है जो छायावाद और उसके बाद क्रमशः सशक्त होती जाती है और दुष्यन्त कुमार उसे एक आन्दोलन की शक्ल दे देते हैं। उर्दू में मध्यकाल में बेहतरीन ग़ज़लें लिखी गईं लेकिन उनकी केन्द्रीय प्रवृत्ति श्रृंगारिक ही रही। आगे वह अन्य विषयों से भी जुड़ी किन्तु प्रेम और सौन्दर्य की अपनी मूल प्रवृत्ति से मुक्त नहीं हो पाई। हिन्दी ग़ज़ल का मूल चरित्र हमेशा से यथार्थवादी और प्रतिरोधी रहा है। यह फर्क कमोवेश आज भी बना हुआ है। हालांकि उर्दू के भी कई ग़ज़लगो जीवन–यथार्थ को व्यक्त कर रहे हैं पर उनके यहां रोमान अधिक है। जीवन–संघर्ष को पूरे ताप और तेवर के साथ अभिव्यक्त करना हिन्दी ग़ज़ल का मूल स्वभाव है। ये दोनों अलग भाषाएं हैं और दोनों की सांस्कृतिक परम्परा व जातीय चरित्र हैं। उनके कुछ साझे और बहुत सारे अपने जातीय मिथक, बिम्ब, प्रतीक और उपमान हैं जो उन्हें अलग करते हैं। अच्छे ग़ज़लकार दोनों जगह हैं।

प्रश्न : 7. ***पाठकों के बारे में भी थोड़ी बात कर ली जाए। साहित्य से पाठकों के मोहभंग का एक मुख्य कारण साहित्य में गेयता और लयात्मकता के अभाव को भी माना जाता है। कहा जाता है कि जबसे कविता मुक्त छंद में लिखी***

जाने लगी और छांदस कविताओं को दोयम दर्जे का माना जाने लगा, तबसे पाठक साहित्य से दूर होता चला गया। इधर कुछ वर्षों से गीत, ग़ज़ल, दोहे लिखने का चलन बढ़ रहा है। इससे उम्मीद की जा रही है कि एक बार फिर पाठक साहित्य की ओर लौटेगा। आपका क्या मानना है? आप इसमें ग़ज़ल की भूमिका को किस रूप में देखते हैं?

उत्तर : इस संदर्भ में आपकी बात अक्षरशः सत्य है। एक सप्ताह पहले डॉ. वन्दना मिश्र और डॉ. मनीष कुमार के साथ एक साक्षात्कार के क्रम में मैं यही कह रहा था। हुआ यह कि निराला से प्रेरणा लेकर जो मुक्त छंद की कविता आगे बढ़ी, उसके आरंभिक सभी कवियों को छंदों और लय का ज्ञान था और उन लोगों ने पहले छंदों में कविता लिखी थी, बाद में मुक्त छंद में लिखी। इसलिए उनकी कविताओं में काव्यात्मकता थी और लय सुरक्षित थी। बाद में मुक्त छंद को छंदमुक्त मान लिया गया और कविता के आकार में एकदम गद्य और लघुकथा लिखी जाने लगी। कुछ लोग सीधे–सीधे आड़े–तिरछे गद्यांश लिखकर उसे कविता कहने लगे। जैसे–जैसे समय आगे बढ़ा, यह अराजकता बढ़ती गई। कविता जैसी अराजक स्थिति किसी भी विधा में नहीं है। आज हर व्यक्ति कुछ भी लिखकर कहता है कि यह कविता है। कविता जैसे सार्वजनिक पार्क हो, जो चाहे तफरीह कर ले। आप छोटी–सी डिग्री लेने के लिए रात–दिन तैयारी करते हैं तब कविता लिखने से पहले थोड़ी–सी शास्त्रीय परंपरा, रस, छंद, अलंकार, लय, गति, यति की जानकारी प्राप्त कर लेने में क्या हर्ज़ है? कवि–कर्म जैसा बड़ा दायित्व निभाने जा रहे हैं लेकिन खाला के घर जाने के अंदाज में। पिछले सत्तर–अस्सी सालों में लिखी जाने वाली लय और छंद विहीन कविता को पाठकों ने और समूची जनता ने नकार दिया। कविता और गद्य के अंतर को स्पष्ट करना होगा और यह बताना पड़ेगा कि कोई चीज कविता है तो आखिर क्यों? तथाकथित कवि–समुदाय आत्म निरीक्षण और आत्मालोचन करने के बजाय पाठकों को ही नासमझ कहने लगा। यह समझना होगा कि लय और छंद के बिना कविता में काव्यात्मकता और गेयता नहीं आती। लय से कविता स्मरणीय और दीर्घजीवी हो जाती है। साथ ही वह कविता वक्त पर हमारा संबल बनती है और हमारे साथ खड़ी होती है। गद्यांश कविता से ऊबे और कटे पाठक आज ग़ज़ल, गीत और दोहों–मुक्तकों का स्वागत कर रहे हैं, यह साहित्य–जगत के लिए सुखद है। छांदस कविता पर यह आरोप बिल्कुल बेबुनियाद है कि उसमें आज के जीवन की जटिलताओं की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती, मैं इस बात को सोदाहरण प्रमाणित कर सकता हूँ। यहाँ यह भी कहना जरूरी है कि सिर्फ छंद में होने से ही कोई कविता अच्छी नहीं हो जाती। उसके लिए विषयवस्तु की जीवंतता और काव्यात्मकता भी ज़रूरी होती है। कविता से पाठकों के कटने के सामाजिक कारण भी हैं। जीवन की मुश्किलें और रोजी–रोटी की चिंता भी है।

प्रश्न : 8. *पहले बड़ा साहित्यकार बनने के लिए लंबी साहित्य–साधना करनी पड़ती थी। अब लोग अपनी पहली रचना से ही बड़े साहित्यकार होने का भ्रम पाल लेते हैं। कुछ लोग साहित्य के उत्पादन में नित नए रिकॉर्ड स्थापित कर रहे हैं। उन्हें गुणवत्ता से कुछ लेना–देना नहीं है। प्रचार और छपास ही उनकी प्राथमिकता है। इसके बारे में आप क्या कहना चाहेंगे? लेखक की आत्ममुग्धता को आप किस रूप में देखते हैं?*

उत्तर : आत्ममुग्धता और मूढ़ता में बहुत फर्क नहीं होता। अज्ञान से ही आत्ममुग्धता आती है। जब हमें ज्ञात होता है कि और लोगों ने कितना बेहतरीन लिखा है, तब हम ज़मीन पर रहते हैं। इसके अभाव में लेखन और व्यवहार में हल्कापन आता है। लोगों को तुरंत सब कुछ चाहिए। अज्ञेय जी की एक कविता है–'जितना तुम्हारा सच है', उसमें उन्होंने लिखा है – 'आकांक्षा इतनी है, साधना भी लाए हो?' पहले लोग लंबी साधना करते थे, फिर कुछ मिलता था और सहज ढंग से मिलता था। अध्ययन, ज्ञान, निरंतर परिश्रम और अविराम साधना। फिर मान–सम्मान और पुरस्कार व प्रतिष्ठा। वह भी मिले, न मिले बहुत परवाह नहीं करते थे। अब लोग 'साधना' के बजाय 'साधने' में लगे हैं। सारी क्षमता रचनात्मकता में न लगाकर तिकड़म और परिक्रमा में लगा रहे हैं। कुछ लोग सोशल मीडिया पर रोज एक–दो कविता डाल रहे हैं। यह एक प्रकार का मनोरोग है। इससे भ्रम व अराजकता का वातावरण बनता है। ऐसे लोगों की उपेक्षा करनी चाहिए और इस प्रवृत्ति को हतोत्साहित करना चाहिए।

प्रश्न : 9. *जब हम जन–साहित्य की बात करते हैं, तो हमें इस पर भी विचार करना चाहिए कि क्या वह जनता तक पहुँच रहा है? आज साहित्य केवल पाठ्यपुस्तकों, पुस्तकालयों और शोधार्थियों तक सिमट कर रह गया है। विद्यार्थी भी अपनी पाठ्यपुस्तक से इतर किताबें बहुत कम पढ़ते हैं। इसके बारे में आप क्या कहना चाहेंगे? क्या ग़ज़ल को इसका अपवाद माना जा सकता है?*

उत्तर : यह एक बहुत वाजिब सवाल है। प्रकाशक किताबों की कीमत बहुत ज्यादा रख रहे हैं और उन्हें सरकारी खरीद में खपा रहे हैं। किताबें सामान्यतया दुकानों पर उपलब्ध नहीं होतीं। होती हैं तो इतना अधिक मूल्य होता है कि सामान्य व्यक्ति उन्हें खरीदने की हिम्मत नहीं कर पाता। जिसे हम आम जनता कहते हैं वह महंगाई के कारण आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जूझ रही है। उसके लिए पेपर बैक और साधारण संस्करणों की ज़रूरत होती है। प्रकाशक सस्ता संस्करण बहुत बाद में उपलब्ध कराते हैं।

पहले के सभी कवि अपनी सस्ती पुस्तकें छपवाते थे और उन्हें लेकर जनता के बीच जाते थे। उनके बीच काव्य–पाठ भी करते थे। अब वह परम्परा नहीं रही। कवि–गोष्ठियों और लोकप्रिय कविता को गद्यांश लिखने वाला समुदाय हिकारत की नज़र से देखता है। लेकिन जनता से जुड़ने के लिए नुक्क्ड़ काव्य–गोष्ठियों की बहुत ज़रूरत है। ग़ज़लकार और गीतकार ऐसा कर सकते हैं। इस दिशा में मैं खुद पहल कर रहा हूँ। ग़ज़लों के संग्रह बिक रहे हैं और ग़ज़लें पढ़ी जा रही हैं। साहित्य के अध्यापकों को भी पाठ्य–पुस्तकों से बाहर की अन्य अच्छी कविताओं की चर्चा करके उनके प्रति रुचि पैदा करनी चाहिए।

प्रश्न : 10 – ***आधुनिक चेतना, प्रतिरोध तथा जनाकांक्षा की संवाहिका बनकर ग़ज़ल ने अपनी लोकप्रियता और प्रभाव दोनों में वृद्धि की है। ग़ज़ल की इस उपलब्धि को आप किस रूप में देखते हैं? लोकप्रियता के साथ चुनौतियाँ भी जुड़ी होती हैं। ग़ज़ल के सामने वे चुनौतियाँ क्या हैं ?***

उत्तर : बिल्कुल, रचना–विरोधी समय और छन्द–विरोधी साहित्यिक वातावरण में ग़ज़ल की यह लोकप्रियता आश्वस्तिकारी है। ग़ज़ल के सामने चुनौती दुहराव से बचने की भी है, नए विषयोंकृस्त्री, पर्यावरण, शोषित–वंचित समाज, बच्चों–बच्चियों, वृद्धों, दिव्यांगों एवं किन्नरों आदि की समस्याओं, नव साम्राज्यवाद एवं बाजारवाद की चुनौतियों आदि से जुड़ने की भी है। तगज्जुल, ग़ज़लियत, काव्यात्मकता और ग़ज़ल के अनुशासनों के साथ इस उत्तरदायित्व का निर्वाह एक बड़ी चुनौती है।

प्रश्न : 11. ***अभी मैंने लेखक की आत्ममुग्धता के बारे में आप से पूछा था। आजकल कोई अपनी आलोचना सुनने को तैयार नहीं है। पहले के साहित्यकार अपनी आलोचना करने वालों के प्रति भी आदर का भाव रखते थे। नए लेखकों में ऐसी उदारता दिखाई क्यों नहीं देती? क्या इसके बिना साहित्य में कोई सार्थक विमर्श हो सकता है? आप अपनी आलोचना को किस रूप में लेते हैं?***

उत्तर : अपनी आलोचना सुनना सबके वश की बात नहीं है। इसके लिए साहस, विनम्रता और धैर्य की ज़रूरत होती है। दुर्भाग्य से इसकी कमी है। सही बात कह देने पर आजकल तमाम लोग संबंध समाप्त कर लेते हैं। मैं अपनी आलोचना सुनता हूँ और उचित सुझावों को स्वीकार करके स्वयं में संशोधन भी करता हूँ। आगे बढ़ने के लिए यह ज़रूरी है। कुछ लोग पूर्वाग्रह–प्रेरित होकर कुछ कहते हैं, उनकी बातों पर ध्यान देने की ज़रूरत नहीं होती।

प्रश्न : 12. ***आज का युवा लेखक ही साहित्य के भविष्य की दिशा तय करेगा। इसे लेकर आप कितने आश्वस्त हैं? आप के लेखन को गंभीरता से लिया जाता है। उस दिशा को तय करने में अपने योगदान को लेकर आप क्या सोचते हैं?***

उत्तर : इस समय सोशल मीडिया और अन्य सुविधाओं के कारण युवा लेखकों की भीड़ उमड़ आई है, लेकिन इनमें कई बहुत प्रतिभाशाली हैं। वे नया सोच रहे हैं और नया रचने की कोशिश कर रहे हैं। जो लोग धैर्य के साथ रचेंगे, वे ही बचेंगे और साहित्य की मूल्यवान परंपरा को आगे ले जाएंगे। मैं लगभग चालीस वर्षों से कई विधाओं में लिख रहा हूँ। लेखन–सम्पादन सब मिलाकर इक्यावन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। गीतों के दो और ग़ज़लों के आठ संग्रह हैं। मैं लगातार नए विषयों से जुड़ने, उन्हें समझने, आत्मसात करने, उन्हें अनुभूति में ढालने और कलात्मकता के साथ नए अंदाज में व्यक्त करने की कोशिश कर रहा हूँ– ग़ज़ल और गीत में भी और अन्य शैलियों में भी।

प्रश्न :13. ***कवि, गीतकार, ग़ज़लकार, आलोचक और नाट्यकर्मी वशिष्ठ अनूप अपने को मुख्यतः क्या मानते हैं? अपनी आगे की योजनाओं के बारे में कुछ बताएंगे?***

उत्तर–13 : मैं अपनी सोच और अनुभूति को कई विधाओं में व्यक्त करता हूँ। जो विषय जिस विधा के लिए उपयुक्त होता है, उसे उसी में लिखता हूँ। मेरी आरम्भिक पहचान तो गीतों से ही बनी। 'इसलिए राह संघर्ष की हम चुनें', 'जिन्दगी आँसुओं में नहाई हो..', 'पयाम भेजा है गोलियों का, कहा जो तुमने वही करेंगे', 'वक़्त ने फिर पुकारा है अहले वतन...', 'रउरे हर बेर करीले करार नेता जी...' इत्यादि गीत बहुत चर्चित हुए लेकिन अब तो ग़ज़लकार की छवि ही महत्त्वपूर्ण हो गई है। सम्पादक अब ग़ज़लें ही माँगते हैं और श्रोता भी ग़ज़ल ही सुनाने को कहते हैं। इस समय ग़ज़ल पर दो आलोचना की किताबों पर काम कर रहा हूँ–'हिन्दी के अग्रज ग़ज़लकार' और 'समकालीन हिन्दी ग़ज़ल'। इनमें तीस–तीस ग़ज़लकारों पर आलेख होंगे। लगभग दो महीने में यह काम पूरा हो जाएगा। बहुत दिनों से कहानियाँ नहीं लिखीं। कुछ कहानियों और एक उपन्यास का प्लॉट है मन में, जब समय मिलेगा तब लिखूँगा। अपने गाँव में कुछ साहित्यिक–सांस्कृतिक कार्यक्रमों का सिलसिला चलाना चाहता हूँ। गाँव को जगाना और सकारात्मक दिशा में प्रेरित करना ज़रूरी है। यह हम लोगों का दायित्व भी है।

✯

वरीवर्ति लोके वशिष्ठो द्विवेदी

प्रो. शरदिन्दुकुमारः त्रिपाठी

वदनं प्रसादसदनं, सदयं ह्वदयं सुधामुचो वाचः।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः।।

इति पद्यस्य प्रत्यादेशभूतः, ज्ञानदानमहापथस्य, प्रखरप्रहरी, हिन्दीसाहित्यपरम्परायाः संवाहकः, भारतीयसंस्कृतेः विग्रहरूपः, हिन्दीसमाजस्य सर्जकः, प्रवर्तकः, संरक्षकः, अध्ययन–मनन–चिन्तनस्य चरमबिन्दुः, जीवनसंघर्षस्य निकषोपलः, वन्दनीयः, अनुकरणीयः अविस्मरणीयश्च प्रो० वशिष्ठ द्विवेदी अनूपः आधुनिकहिन्दीजगतः तादृशः सशक्तहस्ताक्षरः विद्यते यस्य विषये किञ्चित् कथनम् "वृथा दीपो दिनाय" इतिवत्वर्तते।

गोरक्षपुरजनपदे गृहीत्जन्मा सम्प्रति च काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य हिन्दीविभागस्य अध्यक्षपदं विभूषयन् अनेकानि महत्वपूर्णानि प्रशासनिकपदानि च स्वीकुर्वन् प्रो. द्विवेदिमहोदयः हिन्दीसाहित्यसमृद्धिपरम्परायां सदैव कामपि नूतनां श्रृखलां संयोजयति। बहूनि पुस्तकानि बहूनि च गीतानि बहव्यश्च कविताः गजलपदवाच्यानि च गीतानि प्रणीय हिन्दीजगति किञ्चित् विशिष्टमेव स्थानमावहति द्विवेदिवर्यः।

मया प्रो० वशिष्ठद्विवेदिवर्यस्य पुस्तकद्वयं आद्योपान्तमवलोकितम्। प्रथमं तावत् "इसलिए" इति नाम्ना प्रकाशितम् हिन्दी गीतानां संकलनम्। द्वितीयं च 'गर्म रोटी के ऊपर नमक–तेल था' इति शीर्षकेण प्रकाशितं गजलपदवाच्यानां संकलनम्।

"इसलिए" इति पुस्तके गीतेषु ये मार्मिकाः उद्गाराः प्रकटीकृताः सन्ति ते नूनं सहृदयानां ह्वदये कामपि नूतनां प्रेरणां, नूनतावेगम्, नूतनांश्च विचारान् जनयित्वा भारतीयसमाजस्य परिवर्तने नवनिर्माणे च मार्गदर्शकाः भवितुमर्हन्ति। तत्र 'बहुत मुश्किल में है खेतिहर'

सहारा था जो सबका, आजकल वो बेसहारा है,
बहुत मुश्किल में है खेतिहर, बहुत आफत का मारा है।
वो हर पल जोड़कर तिनके, तमन्नाएँ सजाता है
मगर पहले ही सच होने के, सपना टूट जाता है,
भँवर में है पड़ी कष्ती, नहीं दिखता किनारा है।..........हो पाता गुज़ारा है।

गीतेऽस्मिन् कवेः ह्वदये राष्ट्रस्य कृषकान् प्रति यः मार्मिकभावः या च वेदना यच्च कष्टं समजनि तस्य प्रतिविम्बः अत्र उपस्थापितः। कृषकः राष्ट्रस्य अन्नदाता अस्माकं जीवने अन्नस्य कियत् महत्वं कियती च उपयोगिता इति विषये विशेषनिरुपणस्य आवश्यकता नास्ति। उपनिषत्सु "अन्नं वै ब्रह्म" इति प्रतिपादितम्। तस्य अनस्य प्रदाता यस्मिन् राष्ट्रे सम्मानभाक् न भवति तदविषये किं निरुपणीयम्? अत्र कवेः चिन्ता स्वाभाविकी एव। एवमेव नैकासु कवितासु वर्तमानभारतीये समाजे विभिन्नजात्युपजातिप्रभृतीनि यानि राष्ट्रैकतायाः विघातकानि तत्वानि वर्तन्ते यदा–कदा च स्वकीयं विकरालं स्वरूपं प्रदर्शयन्ति, ध्वंसयन्ति च भारतीयबन्धुतायाः सुदृढ़ानाधरस्तम्भान्। द्विवेदिमहोदयः तादृशेऽभ्यपि तत्वेभ्यः असावधानः उदासीनः निश्चिन्तः वा न विद्यते स एव भावस्तस्य 'हमारा वतन'

जाति–धर्मों में इसको न बाँटे कोई, प्रेम की पाठशाला हमारा वतन।
इसके जैसा नहीं है कोई दूसरा, सारे जग से निराला हमारा वतन।.... जाति–धर्मों में
सृष्टि सोई हुई जब थी अज्ञान में, सभ्यता ने यहीं आके खोले नयन,
सूर्य ने सबसे पहले जगाया इसे, चहचहाई यहीं पर सृजन की किरन;
सारी ऋतुएँ हैं सजकर उतरती यहीं, बाँटता है उजाला हमारा वतन।.... जाति–धर्मों में

इति गीते सुस्पष्टरूपेण प्रतिध्वनितोऽस्ति। यस्य देशस्य संस्कृतेः वसुधैव कुटुम्बकम् इत्यादर्शो घोषितः स्यात् तत्र भारतमेव कुटुम्बं इत्येतावदपि रूपं विचारे व्यवहारे वा दृष्टिपथं नावतरति तर्हि किमतः परम दुर्भाग्यम्? अतः इमानि गीतानि यदि जने–जने प्रचारितानि **भवेयुश्चेत् महत्कल्याणं** सम्पद्येत।

एवमेव 'सत्ता के चरणों में' इयं क्रान्तिकारिणी कविताऽपि कवेः रचनायां स्थानं लभते। एतादृशीनां साहसपराणां कवितानां निर्माणं परमावश्यकं वर्तते। अत्र वर्तमानराजनीतेः विडम्बना एकत्र चर्चिता यां पठित्वा एकतः हासमुपजायते अपरतश्च दयनीयां सत्ताव्यवस्थां दृष्ट्वा कष्टमपि बहु सञ्जायते परन्तु लोकरक्षायै लोकशिक्षणाय च महाकवेः क्षेमेन्द्रस्य सरणिमनुसृत्य आधुनिकैः कविभिरपि निःसंकोचं निर्भयं च समाजे प्रचलन्तीनां दुर्व्यवस्थानां निवारणाय स्वप्रतिभायाः उपयोगः कर्तव्यः इत्यावश्यकं प्रतिभाति। अस्मिन् प्रसङ्गे प्रो० द्विवेदिमहोदयस्य व्यङ्गयोक्तयोपि अन्यकवीनां कृते मार्गदर्शनक्षमा भविष्यन्तीति दृढ़ं विश्वसिमि।

प्रो० द्विवेदिमहोदयानां द्वितीयं यत् गजलपुस्तकं वर्तते। तच्च नानाविषयसंवलितम्, लालित्यलावण्यलीलावनम्, चित्ताह्लादकम् मनसश्च रसायनमिति वक्तुं शक्यते। सरससुकोमलपदबन्धेषु नैसर्गिकं सौष्ठवं अनवरत–अनुभूयमान–विषयवल्लरीषु दृष्टमेव चेतो विकासयति, मनः मोहयति, समाश्वादितं मदयति सर्वमिदं एकत्रीभूय राराजते प्रो० वशिष्ठद्विवेदिमहोदयस्य गजलगीतेषु। तत्र – 'हमेशा रंग बदलने की कलाकारी नहीं आती', 'अगर कहना बहुत हो तो बहुत–सा छूट जाता है', 'दरवाजे के पीपल जैसे सब सहते थे बाबूजी', 'महलों में बैठकर वह आमजन की बात करता है', 'अक्षर–अक्षर तिनका–तिनका चुनना पड़ता है', 'जमीं से आसमाँ तक हर नजारा भूल जाता हूँ', 'बनारस में माना मसाइल बहुत हैं', 'जलाते हैं अपने पड़ोसी के घर को', 'राजमहलों में पाला गया था इसे', 'आज है झोपड़ी की दुलारी गजल', 'कभी यह चार पैसे की कमाई मार देती है', 'अपने अस्तित्व को मत भुलाया करो', 'फज़ा हँसती है मंज़र बोलता है'।

इत्यादीनि गीतानि कस्य सहृदयस्य मनांसि न मोहयन्ति चित्तानि वा नानुरञ्जयन्ति। इमानि गीतानि पठित्वा महाकवेः त्रिविक्रमभट्टस्य पद्यमिदं स्मृतिपथमायाति –

किं कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः।
परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः ।।

इमानि च सर्वाणि गीतानि उपर्युक्तस्य पद्यस्य प्रत्यादेशभूतानि सन्ति। प्रो० वशिष्ठद्विवेदि अनूपमहोदयः अन्यानपि विषयानाधारीकृत्य रचनां कृतवानस्ति तत्पाठकाः स्वयमेव पठित्वा आस्वादयन्ति चेत् सविशेषं रसपानमुग्धाः भवितुमर्हन्ति। "न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते" अत्र इदमेव निवेदनं पाठकान् प्रति यत् –

सरस–मधुर–नवकाव्यसुधारसपानपरमरमणीये।
रसिकजना इह सदयदृगञ्चलमञ्चत चिरकमनीये।।

कियत् कथयामः। द्विवेदिमहोदयानां समस्तरचनासु अधुना शोधकार्यं जायमानमस्ति तत्र विस्तृतरूपेण प्रत्येकं वर्गे नूतनाः–नूतनाः विचारा उपस्थाप्यन्ते पाठकैः। अहं च संक्षेपेण किंचिदत्र निगदितवान् अन्ते च कैश्चित् मंगलपद्यैः अभिनन्दनपद्यैः वा द्विवेदिमहोदयं सभाजयन् आत्मनो वाचमवसाययामि

वाचा कोमलया सुधामधुरया सम्बोधयन् सर्वदा /शिष्यान् मित्रजनान् प्रियान् बहुविधान् लोकेषु सम्मानितः।
विद्यावान् विनयी नितान्तसरलः सौन्दर्यरत्नाकरः /जीव्याद्वर्षशतं कुटुम्बसहितो मान्यः वशिष्ठो बुधः।।
कारुण्यं पटुता सदैव शुचिता मान्ये जने नम्रता / सारल्यं समता प्रमाणपरता सेवा सदाचारता।
दीने द्रव्यपतौ च पूर्णसमता नित्यं गुणग्राहिता/ पूज्यं चन्द्रयुतं वशिष्ठचरणं चुम्बन्ति सर्वे गुणाः।।
शिष्याणां हितचिन्तको बुधवरो विद्वत्प्रियो धार्मिकः / नीतिज्ञो मतिमान् विशिष्टपुरुषो विद्यावतामग्रणीः।
नानाशास्त्रविचारचिन्तनरतो विज्ञेषु बद्धादरः/ जीव्याद्वर्षशतं सुशिष्यवलितः श्रीमान् वशिष्ठो सुधीः।।
शिष्या यस्य सहस्त्रशोऽपि सुलभाः राष्ट्रे समस्तेऽधुना /बंगे चोत्तरवासिनष्च बहवो क्षेत्रेष्वनेके तथा।
शास्त्रज्ञा विबुधाः प्रकाण्डविदुषो गायन्ति गीतं गुरोः /सोऽयं दिव्यचरित्रचित्रितबुधो राराजते साम्प्रतम्।।
विज्ञाय स्नेहरूपाय साहित्यरसिकाय च।/गीतिकाव्यप्रवीणाय वशिष्ठाय नमोऽस्तु ते।।

ဢ★ ဂ

कविवशिष्ठाभ्युदयम्

राजेशसरकारः

हिन्दीगज्जलिकाक्षेत्रे कृतभूरिपरिश्रमाः चिरस्मरणीया आचार्यवसिष्ठद्विवेदिमहाभागाः विविधसाहित्यविद्यासु विहितरुचयो न कस्याप्यपरिचिताः। आजीवनं स्वाध्यायप्रवचनात्मकं श्रममनुतिष्ठन्त इमे अनेकेषां काव्यग्रन्थानां निबन्धानामितिहासग्रन्थानां च रचयितारः सम्पादकाश्च इति विदन्त्येव सर्वेपि। हिन्दीगज्जलिकाक्षेत्रे इमे पारङ्गताः। पद्य–गद्यानुवादकरणेऽपि अप्रतिहतगतयः सन्ति एते। तैः सुविलिखितः 'हिन्दी साहित्य का अभिनव इतिहास' ग्रन्थः स्थालीपुलाकन्यायेन मयाऽवलोकितः। एतत्कार्यावलोकनेन इदन्तु सहजतया ज्ञातुं शक्यते यत् एषां साहित्यविषयिणी दृष्टिः विश्वव्यापिनी विचारशीला तर्कयुक्ता च वर्तते। पुस्तकमिदं न केवल छात्रेभ्यः प्रत्युत उच्चाध्ययनपरेभ्यः अत्युपयोगि वर्तते। एभिः सुकविवर्यैः पञ्चाशताधिकाः ग्रन्था विरचिताः। तेषु महत्त्वपूर्णानां पुस्तकानां नामानि सन्ति–

काव्यसंग्रहाः

स्वप्न के बाद, बंजारे नयन, रोशनी खतरे में है, बेटियों के पक्ष में, रोशनी की कोपलें, अच्छा लगता है, मशालें फिर जलाने का समय है, तेरी आँखे बहुत बोलती हैं, इसलिए, घरों पर गिद्ध मड़ाने लगे, गर्म रोटी के ऊपर नमक–तेल था, बारूद के विस्तर पर, छन्द तेरी हँसी का इत्यादयः।

आलोचनाग्रन्थः 'समकालीन कविता के प्रतिमान'

अन्यानि हिन्दी–उर्दू–पुस्तकानि–

आधुनिक हिन्दी कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि और सृजन, हिन्दी कविता के प्रमुख विमर्श, कविता के जनवादी स्वर, जगदीश गुप्त का काव्य–संसार, हिन्दी ग़ज़ल का स्वरूप और महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर, हिन्दी ग़ज़ल की प्रवृत्तियाँ इत्यादयः।

कविशिरोमणीनां तत्रभवतां श्रीमतां श्रीवसिष्ठद्विवेदिवर्याणां कवित्वशक्तिः अप्रतिहता सहृदयहृदयाह्लादिनी च। कवित्वशक्तिः जगति दुर्लभा, उक्तं च अग्निपुराणे–

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।।

एषां महोदयानां चरित्रे काव्यशक्तिः सर्वातिशायिनी वर्तते । एते कविश्रेष्ठाः आलोचकाः तथापि एतेषां समीक्षणदृष्टिः अतीव सूक्ष्मदर्शिनी निष्पक्षभावयुक्ता श्लाघ्या च। आचार्यजयन्तमिश्रेण आलोचकविषये अधोलिखितं पद्यमिदं एतेषां विषये समग्रतया घटते–

रविरपि यत्र न गच्छति गच्छति तत्रापि शक्तिमान् सुकविः।
कविरपि यत्र न गच्छति प्रविशत्यालोचकस्तत्र।।

वाराणस्यां स्थितौ काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्थे हिन्दीविभागे बहुकालादारभ्याद्यावधिपर्यन्तं सेवारतैः एभिः न केवलं हिन्दीजगति अपितु उर्दूसाहित्यजगत्यपि आकाशचुम्बिनी कीर्तिः लब्धा। एभिः सम्पादितः सङ्कलितश्च 'उर्दू के प्रतिनिधि शायर और शायरी' इति पुस्तकं विश्वविद्यालयस्य पाठ्यक्रमे निर्धारितमस्ति। हिन्दीछात्रवर्गेषु अतुलनीया लोकप्रियताऽस्य पुस्तकस्य। अद्यापि महाभागाः सारस्वतोपासनाकार्ये संलग्नाः। एतादृशेषु सारस्वतकार्यव्यापारेषु सर्वदा सोत्साहं स्वयमग्रेसरन्तः स्वीयांश्चोत्साहयन्तोऽस्मदीयाः आचार्यवर्या महाकवयः द्विवेदिश्रीवशिष्ठवर्याः कैः शब्दैर्महनीया इति न जानीमहे। भगवतो विश्वनाथस्यानुकम्पाऽहर्निशं भूयाद्भवदुपरीति भृशं प्रार्थयामहे।

Ghazal Writer Prof. Vashisht Anoop's Social, and Political Sensitivity

(In the context of 'Garm Roti ke Upar Namak Tel Tha')

Dr. Sunil Kumar Manas

Prof. Vashisht Anoop is a renowned Hindi critic, poet, and ghazal writer, whose writings show a unique amalgamation of progressive consciousness and social sensitivity. His poetry presents the complex and odd aspects of life from a deep perspective. His ghazals and songs clearly depict the pain and inequalities of the exploited, deprived, and struggling sections of society. Through ghazal, he not only expresses personal feelings and love-sensitivities but also sheds light on those aspects of society with which the common man is struggling- like farmers, laborers, the poor, and exploited classes. By highlighting the problems of these classes, he talks about the need for social change and awakens the power of resistance. On the other hand, his works also show deep sensitivity towards love, beauty, and the sweetness of relationships. He believes that through love and beauty, possibilities of change and prosperity can arise in society. His poetry expresses deep human sentiments at both social and personal levels.

Vashisht Anoop believes that his ghazals are not just the result of his personal thoughts but are a compilation of the wider experiences and sentiments of society. The voice of the exploited, oppressed, and common people of society is included in his ghazals. He accepts that his work is to present these feelings and thoughts by molding them in a special rhythm, rhyme, and language. His aim is to express the realities of society in a strong form through ghazals, so that he can make society aware. His attachment to the village is very deep, for example:

Gaanv ghar ka najaara to achchha laga, /Sabako jee bhar nihaara to achchha laga.
Garm rotee ke oopar namak tel tha, /Man ne hans kar dulaara to achchha laga."

Now see in this creation, how much the creator is connected to the common people and the environment, he talks about looking at everyone, and this looking is never for others. We look only at our own people. The tradition of looking at has been very long and rich here. The one whom we look at, we take some support from them and this support is not for ourselves, it is only for our own people. And the one from whom we take support, is also our own... and mother is such a thing in front of whom we forget everything, from a grown man we become a child and feel most secure. Only mother has the place to feel like this and then whatever she feeds, it becomes like nectar. And that affection of his, in front of which all the wealth of the world seems worthless. And salt and oil on hot roti, refreshes the memories of our childhood days related to rural life. The system of eating roti with butter in the morning has disappeared. Krishna also used to eat buttered roti, i.e. buttered roti. And where does one get such roti now.

The biggest characteristic of Vashisht Anoop is that while having deep devotion towards tradition and culture, he confronts the contemporary inconsistencies fearlessly. He writes on these subjects fearlessly and fearlessly. This fearlessness makes him distinct from other writers. Because where there is fearlessness, there is a lack of deep understanding of tradition and culture. Where there is understanding of tradition and culture, there is no strength to confront the contemporary inconsistencies. From this point of view, Vashisht Anoop is such a writer, who, while going through the present circumstances, suggests a dreamy path for the future. This vision makes him a true professor, a true litterateur and a true critic.

Vashisht Anoop criticizes the changing forms of time and society through his ghazals. He does not support the imitative or opportunistic forms of society. For him, it is important to follow truth and honesty. This line reflects his self-reliant and firm hero approach, which maintains its purity in the era of change.

"Hamesha rang badalne ki kalaakari nahin aati,
Badalte daur ki mujhako adaakari nahin aati."[1]

There is deep self-analysis in the writings of Vashisht Anoop. Despite the limitlessness of words in his writings, he is not able to express personal feelings completely, because the creator always dives into the ocean of thoughts, as Muktibodh had written:**"Mujhe qadam-qadam par chaurahae milte hain, baahen phailae!! Ek pair rakhta hoon ki sau raahen phootateen, aur main un sab par se guzarna chaahata hoon."**[2] This expresses his sensitivity and deep thinking.

Agar kehna bahut ho to bahut-sa chhoot jaata hai,
Main thoda bolata hoon aur jyaada chhoot jaata hai.[3]

In the works of Vashisht Anoop, the nature of parents has been portrayed in a very simple and accurate manner. His portrayal reflects the family structure and the traditional structure of society very well. While the nature of mothers is more open and emotional, the nature of fathers is restrained and reserved. They never express their pain or troubles, no matter how many difficulties they are facing. This silence of the father reflects his responsibility and patience. Vashisht Anoop has expressed the deep understanding of this traditional masculinity very accurately in his works, which describes the idealistic fatherhood role in society.

The nature of parents has been well highlighted in the works of Vashisht Anoop. Mothers often express their feelings, but fathers never open their mouths, no matter how many problems they have to face. Vashisht has depicted the role of the father in this traditional family social system in very simple words.

Amma to kah bhee detee theen, kabhee-kabhee man kee baatein,
Kam khaate the, gam khaate the, chup rahate the baaboojee.[4]

There are deep shades of love in the works of Vashisht Anoop. I feel that there is no such corner of love on which his keen eye has not gone. If I say that he has looked into every corner of love, then perhaps it will not be an exaggeration. Sometimes he talks about the shyness and hesitation of a heroine, her laughter and nervousness, and sometimes he presents such a picture of love, the mere remembrance of which makes a person completely speechless, as if he has drowned in the pain of some deep love, from which he cannot come out easily.

Ajab yah raag hai jisako zamaana pyaar kahata hai,
Teree aavaaz sunakar har taraana bhool jaata hoon.[5]

Vashisht Anoop has a modest and familial form of love, in which there are such colours of affection, which keep expressing their emotional expression even when the tongue is closed. Like Bihari Lal has written, "Kahat, Natat, Rejhat, Khijhat" — Vashisht Anoop writes something similar. It can be taken as the various expressions of the eyes of the heroine or should I say the lover. He asks, "Did you teach these eyes in any madrasa?" and reveals all the secrets of the heart, and without saying anything, they say a lot.

Hoth tere bhale band hon par, man ka har bhed ye kholatee hain,
Kis madarase mein inako padhaaya, teree aankhen bahut bolatee hain.[6]

Along with social and family problems, political problems are also prevalent in Vashisht Anoop's works. He often raises these issues in his ghazals. Perhaps there is no such ghazal collection of his which does not have some or the other thought on social or political problems. Today, insensitive people have reached politics, who keep doing whatever they want. They work only with the intention of earning profit and are ready to do whatever comes to their mind. They do not care about society, country, nation, or future, due to which the virtuous person who was in the tradition going on for centuries is continuously getting dusted and polluted in these colourful moods. A big problem is that those who used to be self-respecting people, today they have started working with a market and profit-oriented mentality. Those who were capable of toppling the political power with their creations, now stand with their heads bowed on the orders of politicians. Vashisht Anoop has written about this problem in a very sensitive manner-

Din ba din rangeen hota ja raha sansaar yoon,
In dinon sadiyon saraahee saadagee khatare mein hai.[7]

Sirph shabdon tak simatakar rah gayee sanvedana,
Gum rahe pashu-pakshiyon ka, boliyon ka prashn hai.[8]

Khuddaaree ke deevaane ja baithe hain baazaaron mein,
Agnircha likhane vaale natamastak hain darabaaron mein.[9]

The changes that have come in social and political life due to capitalist mentality have also changed the family mentality in our society today. The parents who nurture and educate their children,

the same children abandon them in their old age, leaving them helpless. Today in our society, the entire police department dances to the tunes of the political parties. Political goons make them do the work they want, due to which innocent people always become guilty, and these goons keep demonstrating their brutality on the streets.

Raha ta-umra ghar-parivaar kee khushiyaan jutaata jo,
Budhaape mein use hamane bahut laachaar dekha hai.[10]

Ye manzar dekhakar har shakhs hairaanee mein rahata hai,
Pulis ka mahakama gundon kee nigaraanee mein rahata hai.[11]

Vashisht Anoop's social sensitivity is so outspoken that the political truth is completely exposed. Perhaps today there is no political person who has any honesty left. Every political person who is in the central government of India is actually a social criminal. Vashisht Anoop has made a sharp and tremendous satire with deep sensitivity towards all these problems, which is needed by society. Thus, he can be called a pioneer creator.

Jo muzarim hain vahee sab ban ke paharedaar baithe hain,
Vahaan Dillee mein kitane desh ke gaddaar baithe hain.[12]

Vashisht Anoop constantly guides the people who are frustrated with the contemporary political and social system. Despite the problems, he prepares a path for the common people, accepts destiny, and suggests a way to change it on the basis of hard work. He suggests this path on the basis of various elements of nature. Sometimes a bird appears in his creations, sometimes fire, and sometimes he inspires people to work standing ahead of destiny itself, as it is written in the Gita: "Karmanyewadhikaraste ma phaleshu kadachan." The following are examples of such creations.

Tapa detee hai sone ko, paka detee hai rotee ko,
Hamesha aag ko hee dosh ham bekaar dete hain.[13]

Hamesha karm se banatee hai qismat hai pata mujhako,
Main apana kaam karata hoon mukaddar bhool jaata hoon.[14]

Yahaan-vahaan se, kahaan-kahaan se, tinake laatee hai,
Kaee dinon se ek baya ghonsala banaatee hai.[15]

Bagaavat ke bigul phoonkegee ik din dekh lena tum,
Jo peedhee har ghadee apamaan ka vishapaan karatee hai.[16]

In this way, Prof. Vashisht Anoop has not only enriched the traditions of Hindi Ghazal but has also connected them to modern social and political contexts. His Ghazals not only reflect love and personal emotions but also provide a deep social and political view on various aspects of society. Vashisht Anoop's Ghazals highlight complexities at the personal and social level, and his words have the unique ability to express the truths of contemporary society. His Ghazals have a mixture of sensitivity and satire, which not only inspires readers to think deeply but also makes them aware. Through his works, he raises his voice against the inequalities, corruption, and injustice prevalent in society. His writings are highly influential not only from a literary point of view but also from a social point of view.

Prof. Vashisht Anoop's writing teaches us that the medium of Ghazal can be as effective in expressing the problems of society and politics as it is in expressing love and beauty. Thus, his literature bears a deep commitment and a powerful message towards society.

References :-

1. 'Garm Roti ke Upar Namak Tel Tha' - Vashisht Anoop, Anany Prakashan, Varanasi, P.N.- 9.
2. 'Chand ka Munh Teda Hai' - Gajanan Madhav Muktibodh, Bhartiya Gyanpeeth Prakashan, Delhi, P.N.- 91.
3. 'Garm Roti ke Upar Namak Tel Tha' P.N.- 10.
4. Ibit P.N.- 17.
5. Ibit, P.N.- 55.
6. Ibit, P.N.- 68.
7. Ibit, P.N.- 63.
8. Ibit, P.N.- 103.
9. Ibit, P.N.- 62.
10. Ibit, P.N.- 50.
11. Ibit, P.N.- 44.
12. Ibit, P.N.- 27.
13. Ibit, P.N.- 108.
14. Ibit, P.N.- 106.
15. Ibit, P.N.- 66.
16. Ibit, P.N.-81.

ഇ★ര

प्रो. वशिष्ठ अनूप : एक संक्षिप्त परिचय

डॉ. सुधीर कुमार तिवारी

प्रो. वशिष्ठ अनूप का जन्म 1 जनवरी 1962 को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के ग्राम सहड़ौली, पोस्ट–फरसाड़ (बड़हलगंज) में हुआ। वे स्व. श्री लीलाधर द्विवेदी एवं स्व. श्रीमती परमज्योति द्विवेदी के सुपुत्र हैं। वर्तमान में उनका स्थायी पता– फ्लैट नं–214, राजेन्द्र अपार्टमेंट, रोहित नगर, नरिया–वाराणसी (उत्तर प्रदेश)–221005 है।

शैक्षिक योग्यता : प्रो. वशिष्ठ अनूप ने हिंदी साहित्य में अपनी शिक्षा प्राप्त की और उच्च शैक्षिक योग्यताएं हासिल की। उनकी शैक्षिक योग्यता इस प्रकार हैः

- एम.ए. (हिन्दी),1983
- पी–एच.डी. (हिंदी), 1988
- डी. लिट्. (हिंदी), 2004

शोध निर्देशन कार्य : प्रो. वशिष्ठ अनूप का योगदान केवल शिक्षा तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उन्होंने कई शोधार्थियों को मार्गदर्शन भी दिया। उनके निर्देशन में अब तक 57 पी–एच.डी. शोध कार्य पूर्ण हो चुके हैं। इसके साथ ही उन्होंने 17 लघु शोध प्रबंधों, 1 पी.डी.एफ. शोधार्थी के शोध कार्य को पूर्ण कराया है और इस समय 8 शोधार्थी उनके मार्गदर्शन में शोध कार्य कर रहे हैं। उनका कार्य क्षेत्र हिंदी साहित्य और शिक्षा में महत्वपूर्ण है, और वे इस क्षेत्र में एक सम्मानित और प्रतिष्ठित व्यक्तित्व के रूप में उभरे हैं। उनके प्रयासों से साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान हुआ है।

प्रकाशित पुस्तकें और शोध कार्य : प्रो. वशिष्ठ अनूप का साहित्यिक योगदान अत्यधिक समृद्ध है। उनके नाम 60 पुस्तकें प्रकाशित हैं और 202 से अधिक शोध–पत्र विभिन्न शोध पत्रिकाओं और सम्मेलनों में प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त, उन्होंने 240 से अधिक शोध संगठनों और कार्यशालाओं में अध्यक्ष, मुख्य अतिथि एवं वक्ता के रूप में सहभागिता की है। उनके साहित्य पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में 6 शोध कार्य किए गए हैं। उनकी कविताएँ– दिल्ली विश्वविद्यालय, अवध विश्वविद्यालय अयोध्या, संत बाबा गाडसे विश्वविद्यालय, अमरावती, और राज्य शैक्षिक अनुसंधान परिषद, उत्तर प्रदेश जैसे प्रमुख संस्थानों के पाठ्यक्रमों में शामिल की गई हैं।

प्रशासनिक अनुभव : प्रो. वशिष्ठ अनूप का प्रशासनिक अनुभव भी बहुत समृद्ध हैः

- वे वर्तमान में 01 जुलाई 2023 से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के **विभागाध्यक्ष** हैं।
- भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी की योजना के अंतर्गत, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा 27 मई 2015 से क्षेत्र के नोडल अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया है।
- वे 2007 से 29 अक्टूबर 2027तक राजा श्रीकृष्णदत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर के हिन्दी विभागाध्यक्ष रहे।
- इसके साथ ही, उन्होंने 2000 से 2003 तक राजा श्रीकृष्णदत्त महाविद्यालय, जौनपुर में चीफ प्रॉक्टर के रूप में भी कार्य किया।

प्राध्यापकीय अनुभवः प्रो. वशिष्ठ अनूप का अध्यापन कार्य 1988 से अनवरत रूप से जारी है। वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में 30 अक्टूबर 2007 से प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। 2018 में वे वरिष्ठ प्रोफेसर (लेवल 15) के पद पर प्रोन्नत हुए। उनका योगदान केवल साहित्य और शिक्षा तक ही सीमित नहीं है, वे एक कुशल प्रशासक, प्रेरक और शोध क्षेत्र में महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनके कार्यों ने न केवल हिंदी साहित्य को समृद्ध किया, बल्कि शिक्षा जगत में भी नए आयाम स्थापित किए हैं।

प्रो. वशिष्ठ अनूप द्वारा प्राप्त पुरस्कार एवं सम्मान

प्रो. वशिष्ठ अनूप के साहित्यिक और शैक्षिक योगदान के लिए उन्हें अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों और सम्मानों से नवाजा गया है। इनमें प्रमुख हैंः

- **प्रेमचंद सम्मान,** संस्कृति विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लमही, वाराणसी, 31—7—2024.
- **हिन्दी रत्न सम्मान** (मैथिल समाज उत्तर प्रदेश, पराडकर भवन, वाराणसी, 25 नवम्बर 2023)
- **डॉ. शान्ति कुमारी स्मृति ग़ज़ल सम्मान** (डॉ. शान्ति कुमारी सेवा संस्थान, मुजफ्फरपुर, बिहार, 10 जुलाई 2023)
- **एकेडेमी सम्मान** (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयागराज, 29 मार्च 2023)
- **पं. अवधनारायण तिवारी जीवन गौरव सम्मान 2023** (डॉ. राधेश्याम अवधनारायण तिवारी फाउंडेशन, मुंबई, धीरपुर, जौनपुर, 23 फरवरी 2023)
- **संगम शिखर राष्ट्रीय सम्मान 2022** (संगम साहित्यिक सांस्कृतिक संस्था, गोरखपुर, 22 नवम्बर 2022)
- **महाकवि विद्यापति सम्मान** (वैदिक विज्ञान केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 10जुलाई 2022)
- **पेशवा माधवराव स्मृति सम्मान 2020** (संस्कृति भारती, आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, वाराणसी, 12 दिसम्बर 2020)
- **हिन्दी वैभव सम्मान** (विश्व शोध संवर्धन अकादमी, 21 मार्च 2021)
- **पं. विद्यानिवास मिश्र स्मृति लोक—कवि सम्मान** (विद्याश्री न्यास, वाराणसी, 14 जनवरी 2019)
- **कृति सम्मान** (गोरखपुर महोत्सव, 11 जनवरी 2019)
- **साहित्य चेतना सम्मान 2017** (गाजीपुर, उत्तर प्रदेश, 2017)
- **डॉ. जगदीश गुप्त अकादमिक सम्मान** (लखनऊ, 2016)
- **श्रीमती प्रमिला मिश्रा रत्न अलंकरण** (एकेडमी ऑफ इंडियन क्लासिकल म्यूजिक, वाराणसी, 2016)
- **हल्दी घाटी सम्मान 2016** (मऊनाथ भंजन, उत्तर प्रदेश)
- **उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा विश्वविद्यालय स्तरीय सम्मान** (2015)
- **संगम सृजन सम्मान 2014** (गोरखपुर)
- **कर्मयोगी सम्मान** (भोजपुरी स्पीकिंग यूनियन, मॉरीशस, अंतरराष्ट्रीय सम्मान, 5 नवम्बर 2014
- **साहित्य उन्नयन सम्मान 2014** (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)
- **नागरी रत्न सम्मान 2012**(नागरी प्रचारिणी सभा, देवरिया, 14 सितम्बर 2012)
- **रोटरी सम्मान 2011** (रोटरी क्लब, वाराणसी)
- **सरयूरत्न सम्मान 2010** (सरयू महोत्सव, बड़हलगंज, गोरखपुर)
- **पं. श्यामनारायण पाण्डेय स्मृति सम्मान** 2010 (मऊ)
- **अमृत कलश सम्मान 1999** (गोरखपुर)

प्रो. वशिष्ठ अनूप को मिले ये सम्मान उनके साहित्यिक, शैक्षिक और सामाजिक योगदान के प्रति सम्मान और सराहना का प्रतीक हैं। इन सम्मानों ने उन्हें साहित्य, शिक्षा और समाज सेवा में अपनी प्रतिबद्धता और उत्कृष्टता के लिए मान्यता प्रदान की है।

प्रो. वशिष्ठ अनूप की प्रकाशित पुस्तकें

प्रो. वशिष्ठ अनूप ने अपने साहित्यिक जीवन में कई महत्वपूर्ण पुस्तकों का योगदान दिया है, जो उनके ग़ज़ल, गीत और कविता के प्रति गहरी प्रतिबद्धता को दर्शाती हैं। उनकी प्रकाशित प्रमुख पुस्तकों में शामिल हैंः

1. **सुंदर बिहान होई** (भोजपुरी—गजल संग्रह), अनन्य प्रकाशन, ई—17, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली—110032, ISBN: 978—81—977667—1—8, प्रथम संस्करण—2024।
2. **बारूद के बिस्तर पर**, प्रलेक प्रकाशन, 702, जे—50, ग्लोबल सिटी, मुम्बई, संस्करण—2024, ISBN : 978—93—5677—058—4, संस्करण—2024।
3. **छन्द तेरी हँसी का,** वाणी प्रकाशन, 4695, 21—ए. दरियागंज, नई दिल्ली—110002, प्रथम संस्करण—2023।
4. **गर्भ रोटी के ऊपर नमक तेल था** (ग़ज़ल संग्रह), अनन्य प्रकाशन, वाराणसी, 121, विद्याविहार कॉलोनी, परिवार ब्रेड फैक्ट्री के सामने, महोली भुलपुर, वाराणसी—221108, ISBN : 978—81—951153—8—9, 2021
5. **घरों पर गिद्ध मडराने लगे हैं** (ग़ज़ल संग्रह), साहित्य भंडार प्रकाशन, 50 चाहचंदा (जीरो रोड), इलाहाबाद, ISBN : 978—17—779—65—94, 2019

6. **इसलिए** (गीत संग्रह), साहित्य भंडार, 50 चाहचंदा (जीरो रोड), इलाहाबाद, ISBN : 978–17–779–65–94, 2019
7. **तेरी आँखें बहुत बोलती हैं** (ग़ज़ल–संग्रह), विजया बुक्स, 1/10753 सुभाष पार्क, गली नं. 3, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032, प्रथम संस्करण–2014, ISBN : 978–93–81480–63–2।
8. **मशाले फिर जलाने का समय है** (ग़ज़ल संग्रह), राजसूर्य प्रकाशन, बी–33/2238, पहला पुस्ता, सोनिया बिहार, दिल्ली–110094, प्र.सं. 2013, ISBN : 81–8136–022–2।
9. **अच्छा लगता है,** शब्दार्थ प्रकाशन, वाराणसी, 2012।
10. **रोशनी की कोपलें,** उद्भा वना प्रकाशन, दिल्ली, 2010।
11. **बेटियों के पक्ष में** (गीत ग़ज़ल), भारत ज्ञान विज्ञान समिति, नई दिल्ली, 2007।
12. **रोशनी खतरे में है**, उद्भा वना प्रकाशन, दिल्ली, 2007।
13. **बंजारे नयन,** उद्भा वना प्रकाशन, दिल्ली, 2000।
14. **स्वप्न के बाद,** चतुर्वेदी प्रकाशन, बक्शीपुर, गोरखपुर, 1984

प्रो. वशिष्ठ अनूप की ये पुस्तकें साहित्य की विविध विधाओं में उनकी प्रगति और गहरी समझ को प्रदर्शित करती हैं और साहित्यिक जगत में विशिष्ट स्थान को भी।

प्रो. वशिष्ठ अनूप की आलोचनात्मक पुस्तकें

प्रो. वशिष्ठ अनूप ने हिन्दी साहित्य और कविता पर गहरी विचारधारा और आलोचनात्मक दृष्टिकोण से कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं। उनकी आलोचनात्मक रचनाओं में प्रमुख हैः

1. **हिन्दी गजल का संक्षिप्त इतिहास,** वाणी प्रकाशन, 4695, 21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–2024।
2. **हिन्दी गजल के निकष,** वाणी प्रकाशन, 4695, 21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–2024
3. **हिन्दी गजल का परिप्रेक्ष्य,** वाणी प्रकाशन, 4695, 21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली–110002, प्रथम सस्करण–2024
4. **हिन्दी कविता के प्रमुख विमर्श,** प्रलेक प्रकाशन, 702, जे–50, ग्लोबल सिटी, विरार (वेस्ट), मुंबई, महाराष्ट्र–401303, प्रथम संस्करण–2023, ISBN : 978–93–5677–04–92।
5. **आधुनिक हिन्दी कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि और सृजन,** साहित्य भंडार, 50 चाहचंदा (जीरो रोड), इलाहाबाद, 2019, ISBN : 978–17–7779–634–6।
6. **समकालीन कविता के प्रतिमान,** साहित्य भंडार, 50 चाहचंदा (जीरो रोड), इलाहाबाद, 2019।
7. **कविता के जनवादी स्वर,** अनंग प्रकाशन, बी–107/1, गली मंदिर वाली, समीप रबर फैक्ट्री, उत्तरी घोण्डा, दिल्ली–110053, प्रथम संस्करण 2019 ISBN : 978–81–937886–6–0।
8. **लोक साहित्य का मर्म,** प्रकाशकः विश्वभारती अनुसंधान परिषद, ज्ञानपुर (भदोही), प्रथम संस्करण–2014, ISBN : 978–81–852–56–7।
9. **उर्दू के प्रतिनिधि शायर और उनकी शायरी,** विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, प्रथम संस्करण–2013, ISBN : 978–81–7124–954–1।
10. **व्यावहारिक एवं प्रयोजनमूलक हिन्दी तथा साहित्यशास्त्र,** प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, संस्करण–2003।
11. **हिन्दी भाषा, लिपि एवं साहित्य का इतिहास तथा काव्यांग विवेचन,** ज्ञानभारती प्रकाशन, सी–27/65, जगतगंज, वाराणसी, प्र.सं. 2013–14, ISBN : 978–81–926151–5–8।
12. **हिन्दी साहित्य का अभिनय इतिहास,** चतुर्थ सं., विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2012, ISBN : 978–81–7124–761–5।
13. **अँधेरे में : एक पुनर्विचार,** विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010, ISBN : (बिना)।
14. **असाध्यवीणा की साधना,** विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010, ISBN : 987–81–7124–733–2।
15. **रीतिकाव्य और काव्यांग विवेचन,** विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010, ISBN : 987–81–7124–759–2।
16. **भक्ति काव्यधारा,** विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010, ISBN : 798–81–7124–761–5।

17. **गीत का आकाश,** प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, 2010।
18. **हिन्दी गीत का विकास और प्रमुख गीतकार,** प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, 2007।
19. **प्रयोजनमूलक हिन्दी,** प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ–226020, 2006।
20. **हिन्दी ग़ज़ल की प्रवृत्तियाँ** (आलोचना), उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2006।
21. **हिन्दी ग़ज़ल का स्वरूप और महत्वपूर्ण हस्ताक्षर** (आलोचना), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006, ISBN : 81–7124–496–3।
22. **जगदीश गुप्त का काव्य–संसार** (आलोचना), उद्भा वना प्रकाशन, ए–21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, जी०टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली–95, प्र.सं. 2005
23. **हिन्दी भाषा, साहित्य एवं पत्रकारिता का इतिहास,** प्रकाशन केन्द्र, निकट डालीगंज रेलवे क्रॉसिंग, सीतापुर रोड, लखनऊ, प्र.सं. 2003।
24. **स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गीत–संग्रह,** नीलकमल प्रकाशन, 119, आवास विकास कॉलोनी, शाहपुर, गोरखपुर, प्र.सं. 2003।
25. **हिन्दी की जनवादी कविता** (आलोचना), राधा पब्लिकेशन्स, 4378/4 बी, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994, ISBN : 81–85484–91–0।
26. **हिन्दी साहित्य का इतिहास** (सं.), विद्यार्थी साहित्य भंडार, बक्शीपुर, गोरखपुर, प्र.सं. 1995

इन पुस्तकों ने हिन्दी साहित्य, कविता और आलोचना में अपने योगदान से महत्वपूर्ण स्थान बनाया है।

प्रो. वशिष्ठ अनूप द्वारा सम्पादित काव्य–संग्रह

प्रो. वशिष्ठ अनूप ने कई काव्य–संग्रहों का सम्पादन किया है, जो हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करते हैं। उनके सम्पादित काव्य–संग्रहों में निम्नलिखित शामिल हैं:

1. **अनुनाद,** कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2024।
2. **उल्लास,** कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2023।
3. **मधुमास**, कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2022।
4. **उमंग,** कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2021।
5. **सरयू के स्वर,** अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2021।
6. **अभिलाषा,** कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2020।
7. **इनायत,** कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2019।
8. **सिलसिला,** कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2018।
9. **मंजिल,** कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2017।
10. **तलाश,** कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2016।
11. **मंजर,** कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2015।
12. **तरकश,** कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2014।
13. **आरजू,** कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2013।
14. **ख्वाहिश,** कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2012।
15. **कशिश,** कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2011।
16. **अन्दाज़,** कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2010।
17. **एहसास,** कोशिश प्रकाशन, जौनपुर, 1 जनवरी 2009।
18. **तेरे जैसा चाँद नहीं,** कोशिश प्रकाशन, 1 जनवरी 2005।
19. **गोमती के स्वर**, कोशिश प्रकाशन, 1 जनवरी 2004।
20. **अग्नि संभव** (कवि सुरेन्द्र काले), सर्वेश प्रकाशन, इलाहाबाद–211003, संस्करण–2000

अस्तु कह सकते है कि प्रो. वशिष्ठ अनूप ने अपनी लेखनी से साहित्य जगत में अपार योगदान दिया है। उनकी कविताओं और आलोचनाओं में सामाजिक मुद्दों, मानवीय संवेदनाओं और मानवीय मूल्यों की गहरी समझ देखने को मिलती है। वे न केवल कवि, बल्कि साहित्यिक विमर्श के एक प्रखर वक्ता भी हैं, जिन्होंने हिंदी साहित्य को नए दृष्टिकोण से समृद्ध किया है। उनका कार्य साहित्य के विविध आयामों को उजागर करता है।

लेखक-परिचय

1. **प्रो. चित्तरंजन मिश्र,** पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष– हिंदी विभाग, पं. दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर वि.वि., गोरखपुर।
2. **पंकज गौतम,** संपादक– सबके दावेदार, आजमगढ़, उत्तर प्रदेश।
3. **डॉ. रामसुधार सिंह,** पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, यूपी कॉलेज, वाराणसी।
4. **ओम प्रकाश मिश्र,** बैंकर्स कॉलोनी, परमानतपुर, जौनपुर, उत्तर प्रदेश।
5. **प्रकाश उदय,** श्री बलदेव पीजी कॉलेज, बड़ागाँव, वाराणसी।
6. **प्रो. अनिल कुमार राय,** हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।
7. **डॉ. बलभद्र,** ओक –607, आपनो घर, डाकघर– के.जी. आश्रम, जिला– धनबाद – 828109, झारखंड।
8. **डॉ. सतीश पांडेय,** संपादक 'समीचीन' बी–2/304, लॉर्ड शिवा पैराडाइज, निकट वेगास रेसीडेंसी, कल्याण पश्चिम–421301
9. **प्रो. रामदरश मिश्र,** आर–38, वाणी विहार, उत्तम नगर, नयी दिल्ली–100059।
10. **श्रीधर मिश्र,** एलआईजी, डी–40, राप्ती नगर–4 पोस्ट–चारगावाँ, गोरखपुर–273013।
11. **ओम धीरज,** 'अभिज्ञान शकुंतलम' स–14 बाते 96/55 सारंगनाथ कॉलोनी, सारनाथ, वाराणसी–07।
12. **प्रो. अमरनाथ,** ई.ई.–164/402, सेक्टर–2, साल्टलेक, कोलकाता–700091।
13. **डॉ. सुधाकर मिश्र, बी**/301, न्यू सेवा व्यू, न्यू रविराज कंपलेक्स परिसर, जेसल पार्क, भयेन्दर–ए, थाने–401105।
14. **डॉ. विनम्र सेन सिंह,** सहायक आचार्य– हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)।
15. **राजदेव सिन्हा,** ६, गाँधी रोड, टाटा फाउण्ड्री कॉलोनी, विद्यापतिनगर, बारीडीह, जमशेदपुर–८३१०१७।
16. **प्रो. चंद्रभान सिंह यादव** प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, के.जी.के. पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद (उ.प्र.) 244001।
17. **डॉ. कमलेश राय,** सं० शब्दिता, सर्जना, २५८/ई–१, सहादतपुरा, मऊनाथ भंजन, मऊ–२७५१०१।
18. **डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट** अध्यक्ष, हिन्दी विभाग रामनारायण रुइया स्वायत्त महाविद्यालय माटुँगा, मुम्बई–400019।
19. **डॉ. देवेन्द्र उपाध्याय,** अध्यक्ष (निवर्तमान), हिन्दी विभाग, आर०एस०के०डी०पी०जी० कॉलेज, जौनपुर।
20. **डॉ. दिनेश पाठक,** सहायक आचार्य व अध्यक्ष– हिंदी विभाग, एस.आइ.ई.एस. कला, विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय, सायन (पश्चिम) मुंबई–४०० ०२२।
21. **डॉ. मीनाक्षी दुबे,** ५७ फाइन एवेन्यू, फेस–२, संस्कार उपवन के पीछे, कोलार रोड, भोपाल ४६२०४२।
22. **डॉ. सत्यवती चौबे,** अध्यक्ष, हिंदी–विभाग, विल्सन कॉलेज, गिरगाँव चौपाटी, मुंबई।
23. **डॉ. कुमारी अश्विनी,** 33, प्रेम पथ, कैंट झाँसी–284001।
24. **प्रो. रामचन्द्र तिवारी,** सरस्वती सदन, बेतिया हाटा, गोरखपुर (उ०प्र०)।
25. **डॉ. जगदम्बाप्रसाद दुबे,** एसो0 प्रो0, हिन्दी–विभाग, डी0ए0वी0पी0जी0 कॉलेज, आजमगढ़।
26. **डॉ. प्रभात कुमार मिश्र,** सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
27. **डॉ. किंगसन सिंह पटेल,** एसोसिएट प्रोफेसर,, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
28. **डॉ. मुंकेश कुमार शुक्ल** आई.सी.एस.एस.आर., पोस्ट डॉक्टोरल फेलो,
29. **उपेन्द्र कुमार मिश्र** (समकालीन अभिव्यक्ति के संपादक)।
30. **प्रो. शरदिन्दुकुमारः त्रिपाठी** संस्कृतविभागः, कलासंकायः, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी।
31. **राजेशसरकारः सहायकाचार्यः–** संस्कृतविभागः, कलासङ्कायः, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसीः।
32. **Dr. Sunil Kumar Manas,** HOD : Hindi, Government Arts College , Becharaji.
33. **डॉ. सुधीर कुमार तिवारी,** सहायक आचार्य, डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर मुक्त विश्वविद्यालय, अहमदाबाद,, गुजरात –382481।

डॉ. शान्तिकुमारी स्मृति ग़ज़ल सम्मान, मुजफ्फरपुर-बिहार-2023

'हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी' के स्वागत समारोह 2023 में - उद्घाटन करते हुए

'संगीत एवं मंचकला संकाय, का. हि. वि.वि., में मुख्य अतिथि के रूप में सहभागिता (15 जुलाई 2023)

राष्ट्रीय परिसंवाद -2023 के अवसर पर अहमदाबाद में डॉ. मफतलाल एवं अनारबेन के साथ

30 जून 2023, 'हिन्दी विभागाध्यक्ष' (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी) का कार्यभार संभालते हुए

आलोचन दृष्टि,
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद-फतेहपुर, उ0प्र0-212635
ई-मेल : aalochan.p@gmail.com
वेबसाइट : https://aalochandrishti.org/

Website QR Code